"जवाहरलाल नेहरू का स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
से इतिहास विषय में
डॉक्टर ऑफ फिलासफी
उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध — प्रबन्ध

सन् 2004

निर्देशक
डॉ० आई०एस० सक्सेना
पूर्व विभागाध्यक्ष (इतिहास)
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय
उरई (जालौन) उ०प्र०

शोधकर्ता
सैय्यद शाह आलम
एम०ए० (इतिहास)

समर्पण

मेरे प्रिय दादा जी स्व0 श्री सैय्यद मुहम्मद जफर (पूर्व राजस्व अधिकारी) ने दिवंगत होकर मुझ में प्रेरणा का संचार किया, के प्रति विनम्र श्रद्धांज्जली अर्पित करता हूँ। उन्हीं की मूल प्रेरणा से यह शोध कार्य सम्पन्न हुआ, की स्मृति में यह शोध–ग्रन्थ सादर समर्पित है।

सैय्यद शाह आलम

शोधार्थी

डॉ० आई० एस० सक्सेना
पूर्व विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय
उरई, उ०प्र०

निवास:
733, रामनगर
उरई– 285 001
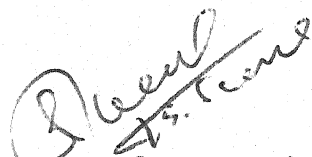
प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री सैय्यद शाह आलम पुत्र श्री सैय्यद अनीस आलम द्वारा इतिहास विषय के अन्तर्गत **"जवाहरलाल नेहरू के स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान"** शीर्षक पर पी–एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालय के अध्यादेश ग्यारह की समस्त शर्तों को पूर्ण करते हुये मेरे मार्ग दर्शन में पूर्ण किया है, यह उनके स्वयं का मौलिक प्रयास है। अध्यादेश 11 – 8 में उल्लिखित प्रावधान के अनुसार इन्होंने उपस्थिति भी पूर्ण की है।

विषय सामग्री, लेखन, भाषादि की दृष्टि से यह प्रबन्ध पी–एच0डी0 उपाधि के स्तर का है एवं परीक्षकों के मूल्यांकन हेतु भेजने योग्य है।

दिनाँक– 27.12.04

स्थान– उरई

(डॉ0 आई0एस0 सक्सेना)

शोध निदेशक

घोषणा - पत्र

मैं सैय्यद शाह आलम पुत्र श्री सैय्यद अनीस आलम घोषणा करता हूँ कि पी–एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध जिसका शीर्षक– **''जवाहरलाल नेहरू का स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान''** मेरे स्वयं के प्रयासों का परिणाम है। यह एक मौलिक प्रस्तुति है जो सामग्री जिन स्रोतों से प्राप्त की गई है उसका उल्लेख उचित स्थान पर किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध भाषा के दृष्टिकोंण से और साथ ही साथ विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण के संदर्भ में भी सन्तोषप्रद है मैने निर्देशन प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने शोध पर्यवेक्षक के साथ दो सौ दिन व्यतीत किये हैं।

मेरे ज्ञान और विश्वास में उक्त विषय पर किसी भी अन्य शैक्षणिक संस्था में शोधकार्य नहीं किया गया है।

Alam

दिनाँक–27-12-04

स्थान– उरई

सैय्यद शाह आलम

शोधार्थी

एम0 ए0 (इतिहास)

प्राक्कथन

आधुनिक भारत का इतिहास राष्ट्रवाद एवं ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बीच होने वाले संघर्ष का इतिहास है। इस संघर्ष में शनैः शनैः राष्ट्रवादी शक्तियाँ प्रबल होती गईं और साम्राज्यवादी शक्तियाँ शिथिल। भारत में ब्रिटिश शासन दमन एवं अत्याचार का प्रतीक था – जिसकी समाप्ति के लिये विविध राष्ट्रवादी शक्तियाँ, भिन्न भिन्न प्रकार से सक्रिय तथा संघर्षरत थीं। प्रत्येक राष्ट्र में स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले महापुरुषों के विचार और ऐतिहासिककार आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये सदैव प्रेरणा के स्रोत होते हैं। इन महापुरुषों के विचार और स्वतंत्रता संघर्ष के संदर्भ में उनके कार्यों का अध्ययन न केवल ऐतिहासिक प्रत्युत प्रत्येक पहलू से परम्वांछनीय है।

इनमें जवाहरलाल नेहरू भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणीय योद्धाओं में से एक हैं। उन्होंने आधुनिक भारत के निर्माण और विकास के अत्यन्त संकटपूर्ण काल में अत्यधिक साहस के साथ मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये राजसी सुखों और वैभव का परित्याग कर एक विद्रोही सेनानी की भूमिका का निर्वहन किया था। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में उनका योगदान बहुमुखी है। उन्होंने एक कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में अपनी राजनीतिक यात्रा प्रारम्भ की। ब्रिटिश शिक्षा और पाश्चात्य परम्पराओं से वे अत्यधिक प्रभावित थे और गाँधी जी के व्यक्तित्व का जवाहरलाल पर गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने श्रीमती ऐनीवेसेन्ट द्वारा संचालित होमरूल लीग आन्दोलन में डटकर भाग लिया। जलियांवाला के वर्वर काण्ड का उन पर गहरा मानसिक तथा नैतिक प्रभाव पड़ा– और वे ब्रिटिश साम्राज्य के कटु आलोचक बन गये और उन्होंने किसान आन्दोलन में भाग लेकर किसानों की समस्याओं को भली–भाँति समझा।

जब गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया तो जवाहरलाल ने उसमें डटकर भाग लिया। परन्तु चौरी–चौरा काण्ड के कारण जब असहयोग आन्दोलन बीच में ही स्थगित कर दिया गया गया तो उन्होंने उसकी कटु आलोचना की। 1923 में कांग्रेस महामंत्री और इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने अपने कार्यों

का कुशलता पूर्वक निर्वाहन किया। 1928 में जब उनके पिता मोतीलाल ने ''नेहरू रिपोर्ट'' की रचना की तो उसके कुछ प्राविधानों को लेकर पिता—पुत्र में मतभेद हो गयाऔर अन्ततः गाँधी जी के हस्तक्षेप के बाद यह नेहरू रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई। जवाहरलाल नेहरू सन् 1929 में लाहौर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। यहीं पर उन्होंने ऐतिहासिक भाषण दिया और स्वाधीनता की प्रतिज्ञा ली।

जब गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया तो जवाहरलाल नेहरू ने बढ़चढ़ कर भाग लिया परन्तु जब गाँधी इरविन समझौते द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया तो जवाहरलाल ने भारी मन से इसे स्वीकार किया। इसी समझौते के परिणाम स्वरूप गाँधी जी ने कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि के रूप में द्वितीय गोलमेज परिषद में भाग लिया। यहाँ पर नौकरियों में आरक्षण के प्रश्न पर परिषद को उलझा दिया गया और यह परिषद बिना कोई निर्णय लिये समाप्त हो गई। सन् 1936 में जवाहरलाल नेहरू दूसरी बार लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये तथा सन् 1937 के निर्वाचन में जवाहरलाल नेहरू ने भाग लिया और कांग्रेस को अभूतपूर्व सफलता दिलाई। सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध की ज्वाला भड़क उठी और अंग्रेजों ने भारत को उसकी इच्छा के विरुद्ध युद्धरत देश घोषित कर दिया जिसका जवाहरलाल नेहरू ने विरोध किया। इसके फलस्वरूप कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने अपना त्यागपत्र दे दिया।

सन् 1940 में गाँधी जी के आह्वान पर व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। जवाहरलाल नेहरू ने एक सत्याग्रही के रूप में अपना कार्य कुशलता पूर्वक किया इसके फलस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। किन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात उन्हें छोड़ दिया गया क्योंकि अंग्रेज सरकार युद्ध में फसी हुई थी। वह कांग्रेस से संघर्ष नहीं सहयोग चाहती थी इसीलिये उसने क्रिप्स मिशन को भारत भेजा मगर क्रिप्स मिशन भी असफल रहा और इसी के कारण 8 अगस्त, 1942 को बम्बई में भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव पारित हो गया। अंग्रेज सरकार ने अपना दमन चक्र चला कर जवाहरलाल नेहरू सहित प्रमुख कांग्रेसियों को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। सन् 1944 में गाँधी जी को एवं 1945

में जवाहरलाल नेहरू को युद्ध प्रयत्न में सहयोग प्राप्त करने तथा गतिरोध को दूर करने के उद्देश्य से रिहा कर दिया गया। गवर्नर जनरल वेवेल ने व्यापक विचार विमर्श कर अपनी योजना प्रस्तुत की इसी के अनुरूप शिमला में सर्वदलीय सम्मेलन हुआ जोकि असफल रहा। सन् 1945 में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान मण्डलों के चुनाव में कांग्रेस ने जवाहरलाल नेहरू के कुशल नेतृत्व में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की और इसके बाद आजाद हिन्द फौज के अफसरों का मुकदमा लड़कर तथा उनको रिहा कराकर जवाहरलाल नेहरू ने अपने कुशल कानूनी ज्ञान का परिचय दिया।

सन् 1946 में कैविनेट मिशन योजना को रद्द करवा कर तथा संविधान सभा के निर्वाचन में भाग लेकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। 16 अगस्त सन् 1946 ''डायरेक्ट एक्शन डे'' को न मनाने के लिये जवाहरलाल नेहरू ने जिन्ना से बात की मगर उसमें उनको सफलता नहीं मिल सकी और सितम्बर 1946 में अन्तरिम सरकार बनाकर तथा जनता के कल्याण के लिये काम करके उन्होंने जन सेवा की भावना को व्यक्त किया। एक प्रखर संविधानवादी के रूप में जवाहरलाल नेहरू द्वारा 13 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत कर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक न्याय की बात कही तथा नये वाइसराय लार्ड लुई माउण्टवेटन के साथ मिलकर राजनीतिक हल ढूंढ़ने का प्रयास किया और 3 जून, 1947 को भारत विभाजन के प्रस्ताव को भारी मन से स्वीकार करके तथा विभाजन के बाद विविध प्रकार से अपनी शक्तियों का प्रयोग कर मातृभूमि की सेवा की।

यद्यपि इनका जन्म शताब्दी समारोह 1989 में मनाया जा चुका है और कई ग्रन्थों का प्रकाशन भी हो चुका है किन्तु आज भी उनके विचारों और स्वतंत्रता आन्दोलन में उनकी भूमिका और योगदान का किसी भी ग्रन्थ में पूर्णरूपेण विश्लेषणात्मक विवेचन नहीं हो पाया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में जवाहरलाल नेहरू की गतिविधियों और उनके ऐतिहासिक योगदान को निरूपित करने का प्रयास किया गया है। शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है– प्रथम अध्याय में जवाहरलाल की वंश परम्परायें, बचपन का जीवन, शिक्षा, युवा राष्ट्रवादी, वकालत का व्यवसाय और राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव का उल्लेख

किया गया है। दूसरा अध्याय मुख्यतः राजनीति की ओर नेहरू का आकर्षण, नेहरू के राजनीतिक जीवन में गाँधी का आविर्भाव, गाँधी जी का प्रभाव, जलियांवाला हत्याकाण्ड, कांग्रेस का अमृतसर अधिवेशन (1919), किसान आन्दोलन, विदेशी वस्त्रों का वहिष्कार, 1923 में कांग्रेस महामंत्री तथा इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में, 1928 में नेहरू विज्ञप्ति और जवाहरलाल का असन्तोष और लाहौर कांग्रेस (1929) में उनका अध्यक्षता तक का काल लिया गया है। तीसरे अध्याय में– 1 जनवरी, 1930 स्वाधीनता की शपथ, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, गाँधी इरविन समझौता, द्वितीय गोलमेज परिषद, मेकडॉनल्ड का साम्प्रदायिक पंचाट, कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन, 1937 का निर्वाचन, 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध कांग्रेस मंत्रिमण्डलों का त्यागपत्र, 1940–41 का व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन आदि के विश्लेषण का प्रयास किया गया है। चौथा अध्याय– विश्व युद्ध की गम्भीर परिस्थिति, क्रिप्स मिशन (1942), भारत छोड़ो आन्दोलन(1942) तथा अगस्त 1942 में कार्य समिति के सदस्यों के साथ गिरफ्तारी तक का उल्लेख किया गया है। पांचवे अध्याय में– 1944 में गाँधी जी की जेल से रिहाई, वावेल योजना, शिमला सम्मेलन, आम निर्वाचन, आजाद हिन्द फौज के अफसरों का मुकदमा, कैबिनेट मिशन (1946), संविधान सभा के लिये निर्वाचन में उनके योगदान को निरूपित करने का प्रयास किया गया है। छठवें अध्याय में– लीग के द्वारा उत्पन्न परिस्थितियां, अन्तरिम सरकार का गठन, 13 दिसम्बर, 1946, संविधान सभा में उद्‌देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत करते, लार्ड लुई माउण्टवेटन के साथ राजनीतिक हल के लिये प्रयत्न, भारत विभाजन का प्रस्ताव, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, देश का विभाजन–भारत व पाकिस्तान के रूप में उनके कार्यों को प्रतिविम्बित करने का प्रयास किया गया है।

इस भाँति प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में जवाहरलाल नेहरू के स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान का कोई पक्ष या पहलू ऐसा नहीं है– जिसकी चर्चा न की गई हो इसके साथ ही साथ तत्कालीन भारतीय इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। जवाहरलाल नेहरू के विचारों को स्थापित करने हेतु उनके सैकड़ों भाषणों– जो उन्होंने दिये, का अत्यन्त सावधानीपूर्वक अध्ययन किया गया है। मुख्यतः उनके दो अध्यक्षीय भाषणों जो

उन्होंने लाहौर कांग्रेस (1929) एवं लखनऊ कांग्रेस (1936) में दिये थे उनके विचारों को समझने में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुये हैं।

शोध सम्बन्धी अधिकांश साहित्य अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध होने के कारण हिन्दी में कार्य करना कठिन था लेकिन मेरे गुरूदेव एवं शोध निदेशक जी की प्रबल इच्छा थी कि यह कार्य राष्ट्रभाषा के माध्यम से ही सम्पन्न होना चाहिये। राष्ट्रभाषा में शोध ग्रन्थों का नितान्त अभाव है। कारण यह भ्रान्ति प्रचलित है कि उच्च स्तर का शोधकार्य हिन्दी भाषा के माध्यम से सम्भव नहीं है। इस धारणा के निराकरण, अपने गुरूदेव की इच्छा को व्यवहारिक रूप देने की आकांक्षा तथा हिन्दी को समृद्ध बनाने का संकल्प लेकर ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से किया गया है।

मैं अपने गुरूदेव एवं शोध निदेशक डॉ0 आई0एस0 सक्सेना (पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग) दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन में से मुझे न केवल उदारतापूर्वक समय ही दिया वरन् अपने बहुमूल्य सुझाव और महत्वपूर्ण विचारों से भी अवगत कराया। जिनके अभाव में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का पूर्ण होना असम्भव होता।

मैं अपने गुरूदेव डॉ0 एम0एल0 श्रीवास्तव (पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग) दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपने उपयोगी सुझावों से मुझे लाभान्वित किया।

मैं डॉ0 अजय सक्सेना (रीडर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग) गाँधी महाविद्यालय, उरई एवं डॉ0 पूनम श्रीवास्तव (इतिहास विभाग) राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर ने मुझे निरन्तर प्रोत्साहित किया ताकि शोधकार्य निर्धारित समय में ही पूरा हो सके। मैं इन लोगों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

मैं श्री हरिश्चन्द्र जी (एम0ए0, बी0लिब0 एस0सी0) पुस्तकालय अध्यक्ष, राजकीय जिला पुस्तकालय, उरई का सहयोग करने के लिये सदैव हृदय से आभारी रहूँगा।

मैं अपने ताऊ श्री मु0 हामिद, श्री नसीम आलम (प्रधानाचार्य) व शमसुल इस्लाम, (प्राध्यापक), काजी जमील उद्दीन सिद्दीकी (समाज सेवी), श्री नूर उद्दीन सिद्दीकी (एडवोकेट) एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सफीना वेगम एवं श्रीमती वहीदन निशा और काजी सईद उल्ला के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ क्योंकि प्रस्तुत शोधकार्य करने हेतु आपने मेरा निरन्तर उत्साहवर्द्धन किया जिससे कि मैं अपना शोध कार्य सम्पन्न कर सका।

मैं अपनी प्रेरणा स्रोत परमआदरणी दादी जी स्व0 श्रीमती अमीर फातिमा (पूर्व जमींदार) एवं अपने नाना स्व0 श्री काजी कदीर उद्दीन सिद्दीकी जी एवं स्व0 धर्मगुरू मौलाना वशीर अहमद कादरी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ क्योंकि आपकी प्रबल इच्छा थी मैं यह कार्य सम्पन्न करूँ। अपनी दादी जी, नाना जी एवं धर्मगुरू मौलाना साहब की इच्छा को व्यवहारिक रूप देने की कोशिश मैने की है।

मैं अपने प्रिय पिता सैय्यद अनीस आलम, वरिष्ठ अधिवक्ता (सदस्य किशोर न्याय वोर्ड, जनपद—जालौन) एवं अपनी ममतामयी माता श्रीमती रुकसाना आलम, एम0ए0 (समाजशास्त्र) का भी कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे निरन्त सहानुभूति और सहयोग मिलता रहा।

मैं अपनी बुआ सुश्री रफीक फातिमा, एम0ए0 (उर्दू) का भी हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अपने मूल्यवान विचारों से लाभान्वित किया। मैं अपने अनुज सैय्यद नफीस आलम, राशिद आलम, खलीक आलम (मीनू) का भी आभारी हूँ जिन्होंने अत्यन्त योग्यतापूर्वक मेरे शोध प्रबन्ध में निरन्त सहयोग किया है।

मैं अपने प्रिय मित्र मनोज कौशल व राहुल गोस्वामी का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर अत्यन्त योग्यतापूर्वक मेरे शोधप्रबन्ध को परिष्कृत किया।

सैय्यद शाह आलम

शोधार्थी

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

1. नेहरू जी की वंश परम्परायें
2. नेहरू जी का बचपन का जीवन
3. नेहरू जी की शिक्षा
4. नेहरू एक युवा राष्ट्रवादी
5. नेहरू और वकालत का व्यवसाय
6. भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों का नेहरू पर प्रभाव

9. नेहरू जी की वंश परम्परायें

नेहरू परिवार मूलतः कश्मीर की घाटियों का निवासी था। कश्मीर अपने अद्भुत प्राकृतिक सौन्दर्य, ऊँचे पहाड़ों, फूलों से भरी चारागाहों और नाचते हुये चश्मों के लिये अत्यधिक प्रसिद्ध है। 18वीं शती के आरम्भ में अपने विद्वानों के लिये भी कश्मीर अत्यधिक प्रसिद्ध था। सन् 1716 के लगभग जब मुगल बादशाह फर्रूखसियर कश्मीर आया तो उसकी नजर कश्मीर के विद्वानों में एक पं० राजकौल की ओर आकृष्ट हुई। फर्रूखसियर ने उन्हें दिल्ली में स्थाई रूप से निवास करने हेतु राजी कर लिया।[1] दिल्ली में उन्हें उस समय शहर के बीच से गुजरने वाली एक नहर के किनारे मकान दे दिया गया। नहर के किनारे रहने वाली पं० राजकौल की सन्तानें कश्मीरियों के बीच "कौल–नेहरू" के रूप में जानी जाने लगी। नेहरू शब्द सम्भवतः नहर से उत्पन्न हुआ। आगे चल कर "कौल" शब्द भी सामान्य व्यवहार में लुप्त हो गया और केवल नेहरू बच रह गया।[2] मुगल सम्राट फर्रूखसियर से पं० राजकौल को जागीर के रूप में कुछ गाँव मिले थे, परन्तु आगे के वर्षों में सम्राट की मृत्यु हो जाने से, और राज–तन्त्रीय अधिकारों के पतन के साथ–साथ पं० राजकौल की जागीर भी घटती गई और अन्त में यह कुछ जमीन पर जमींदारी अधिकारों तक ही सीमित होकर रह गई। पं० राजकौल के पौत्र मौसाराम कौल एवं साहबराम कौल इन अधिकारों का प्रयोग करने वाले अन्तिम भोक्ता थे। मौसाराम के पुत्र लक्ष्मीनारायण मुगल दरबार में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रथम वकील बने। लक्ष्मी नारायण के पुत्र गंगाधर जो 1857 के विद्रोह के समय दिल्ली में पुलिस अधिकारी (कोतवाल) थे। पं० मोतीलाल नेहरू के पिता थे।

1857 की उथल–पुथल ने भारतीय राजनीति पर अत्यधिक प्रभाव डाला। अनेक रियासतों के राजे महाराजों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के वर्चस्व के विरुद्ध विद्रोह का झंडा बुलन्द कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध स्वाधीनता के इस प्रथम संग्राम

---

1. Nehru, J.L.: An autobiography, P - 1.
2. यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इस परिवार के अनेक सम्बन्धी और रिश्तेदार आज भी अपने आपको "कौल" ही लिखते हैं।

में जिन अनेक क्रान्तिवीरों का नाम आदर के साथ लिया जाता है – उनमें दिल्ली के बूढ़े और वीर सम्राट बहादुरशाह ज़फर और झाँसी की युवा महारानी लक्ष्मीबाई का नाम अत्यधिक सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है। 1857 की इस उथल–पुथल ने गंगाधर को दिल्ली से उखाड़ दिया, जहाँ पिछले डेढ़ सौ वर्षों से उनके पूर्वज निवास करते रहे थे। गंगाधर सौभाग्यशाली थे कि अपने परिवार सहित सकुशल बच कर जा सके, पर नौकरी और उनकी लगभग समस्त चल व अचल सम्पत्ति उनके हाथ से जाती रही। दिल्ली से आकर उन्होंने आगरा में रहना आरम्भ किया। गंगाधर के दिल्ली से आगरा जाते समय रास्ते में एक उल्लेखनीय रोचक घटना घटी। गंगाधर अपनी पत्नी जिओरानी, दो पुत्रों बंशीधर, नन्दलाल एवं दो पुत्रियों पटरानी और महारानी के साथ दिल्ली से आगरा जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें कुछ अंग्रेज सैनिक मिले। अंग्रेज सैनिकों ने इस काफिले में उनकी पुत्रियों में से एक को, जो अत्यधिक गौरवर्ण की थी, अंग्रेजी लड़की समझा। अंग्रेज सैनिकों ने समझा कि सम्भवतः यह भारतीय किसी अंग्रेज बच्ची का अपहरणकर ले जा रहे हैं। उन दिनों किसी भारतीय को पकड़ कर दण्डित करना कुछ मिनटों की बात हुआ करती थी परन्तु गंगाधर के पुत्रों के अंग्रेजी भाषा के ज्ञान में प्रवीणता ने विवाद को कुछ समय तक खींचा। इसी बीच उनको जानने वाला कोई व्यक्ति वहाँ से निकला जिसने बीच में पड़कर विवाद को किसी दुर्भाग्यपूर्ण रूप में अन्त हो जाने से पहले ही समाप्त करवा दिया।[1]

आगरा में पं० गंगाधर अपने भाग्य को निर्मित करने के पुनर्प्रयत्न में लग गये परन्तु उन्हें अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहना था। 34 वर्ष की अल्प आयु में सन् 1861 के आरम्भ में उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के तीन महीने बाद 6 मई 1861 को उनकी पत्नी जिओरानी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिन्हें मोतीलाल नेहरू के नाम से जाना गया।

जिओरानी के लिये और अवश्य ही सम्पूर्ण परिवार के लिये पं० गंगाधर की मृत्यु एक जबर्दस्त आघात थी। सौभाग्यवश उनके बेटे वंशीधर और नन्दलाल बड़े दिलेर लड़के थे। वे अपने प्रयत्नों द्वारा अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ हो सके। बंशीधर ने

---

1. Nehru, J.L.: An autobiography, P - 2

आगरा की सदर दीवानी अदालत में "फैसला लेखक" का पद प्राप्त कर लिया। वे उन्नति करते हुये "सवार्डिनेट जज" के पद तक पहुँच गए। चूँकि वंशीधर सरकारी नौकरी में थे और उनके स्थानान्तरण की सम्भावना प्रायः रहा करती थी इसलिये दूसरे भाई नन्दलाल ने मोतीलाल का पालन पोषण किया। इस सबसे नन्दलाल और मोतीलाल में अत्यधिक स्नेह—बन्धन स्थापित हो गया। इस प्रेम में पितृवात्सल्य और भाईचारे का वह सुखद समन्वय था जिसका संयुक्त हिन्दू परिवार श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत करता है।

नन्दलाल को राजस्थान की खेतड़ी रियासत में अध्यापक की नौकरी मिल गई। बाद में वे राजा फतह सिंह के निजी सचिव और अन्ततः दीवान "मुख्यमंत्री" बने। नन्दलाल एक सुयोग्य प्रशासक सिद्ध हुए और 1870 के अन्त तक खेतड़ी में नौकरी करते रहे। 30 नवम्बर, 1870 को राजा फतह सिंह की मृत्यु हो गई, नन्दलाल ने भी नौकरी छोड़ दी। वे वापस आगरा लौट आये, कानून का अध्ययन किया और आगरा में वकालत आरम्भ की। जब हाई कोर्ट आगरा से इलाहाबाद स्थानान्तरित हो गया तो नन्दलाल भी इलाहाबाद चले आये।

इसी बीच मोतीलाल एक वीर और जिन्दादिल बच्चे की तरह बढ़ते जा रहे थे। खेतड़ी में जहाँ उनके भाई नन्दलाल दीवान थे, मोतीलाल को राजा फतह सिंह के अध्यापक काजी सदरुद्दीन ने पढ़ाया था। 12 वर्ष की आयु तक तत्कालीन प्रथाओं के अनुसार उन्होंने केवल अरबी और फारसी पढ़ी थी। फारसी में पं0 मोतीलाल नेहरू की योग्यता इतनी विशिष्ट थी कि उम्र में उनसे बड़े लोग भी इसके लिये उनकी प्रशंसा और आदर करते थे। मोतीलाल ने कानपुर में एक हाईस्कूल में पढ़ना आरम्भ किया जहाँ उनके भाई बंशीधर नियुक्त थे। स्कूली शिक्षा में भी मोतीलाल एक योग्य और आत्म विश्वासी छात्र सिद्ध हुये। मोतीलाल किताबी कीड़ा बनने से बहुत दूर एक व्यायामशील, विशेषकर कुश्ती के शौकीन और कभी न सन्तुष्ट होने वाली जिज्ञासा से परिपूर्ण थे। मोतीलाल ने घर से बाहर खेल के मैदानों और मनोरंजनों के स्थानों को उत्साह के साथ अपनाया पर वे अपने विद्यालयी अध्ययन के प्रति भी सतर्क बने रहे।

इलाहाबाद के म्यौर कॉलेज में यद्यपि उनका छात्र जीवन किसी शैक्षणिक दृष्टि से विशिष्ट नहीं था पर कई बार उनकी हाजिर जबाबी, स्पष्टवादिता और

तेज मिज़ाजी ने उन्हें बहुत सी मुश्किलों में डाला और जिनसे वह प्रिन्सिपल हैरीसन और अंग्रेज सहयोगियों के कारण ही बच पाये। हैरीसन इस बुद्धिमान, जिन्दादिल और शान्त कश्मीरी युवक को अत्यधिक पसन्द करते थे। उन दिनों भी अनेक अंग्रेज अध्यापकों और भारतीय छात्रों के बीच बहुधा सहानुभूति, पारस्परिक समझ और यहाँ तक कि मित्रता के सम्बन्ध भी रहते थे। प्रिन्सिपल हैरीसन भी ऐसे ही अंग्रेज अध्यापकों में से एक थे और मोतीलाल पर उनकी स्नेह भरी चिन्ता का गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ा था। मोतीलाल पर अपने अंग्रेज अध्यापकों के साथ सम्पर्क का जबर्दस्त निर्माणकारी प्रभाव पड़ा था। इसी कारण उनमें जिन्दगी के प्रति एक विवेकपूर्ण, तार्किक, संशयवादी तथा अंग्रेजी, संस्कृति और संस्थाओं के प्रति गहरी प्रशंसा का भाव उत्पन्न हुआ था। विश्वविद्यालयी शिक्षा ने मोतीलाल पर पश्चिम की फैली हुई दुनियां का झरोखा खोलने में उन्हें सहायता प्रदान की थी। मोतीलाल की विश्वविद्यालयी शिक्षा उल्लेखनीय ढंग से समाप्त हुई। वे डिग्री परीक्षा के लिये बैठे पर यह सोच कर कि उनका पहला पर्चा बिगड़ गया है, वह शेष परीक्षाओं में नहीं बैठे लेकिन बाद में मालूम हुआ कि उन्होंने पहला पर्चा पर्याप्त सन्तोषजनक किया था।[1] एक ऐसे नौजवान भारतीय के लिए जिसे उत्तराधिकार में न धन मिला हो और न जायदाद, अपनी पढ़ाई के साथ खिलवाड़ वस्तुतः अपने भविष्य के साथ खिलवाड़ करना था परन्तु सौभाग्य से मोतीलाल ने अपने को यथा समय ही संभाल लिया। उन्होंने कानून के पेशे में जाना निश्चित किया जिसमें उनके बड़े भाई नन्दलाल पहले ही कार्यरत थे और साधारण सफलता भी प्राप्त कर चुके थे। मोतीलाल ने कठिन परिश्रम किया। सम्भवतः डिग्री परीक्षा में असफल हो जाने से उनके मन में कुछ कर गुजरने की भावना भर गई थी। वकालत की परीक्षा के सफल उम्मीदवारों में उन्होंने सर्वोच्च प्रथम स्थान प्राप्त कर सर्वोच्च परीक्षार्थी के रूप में स्वर्ण पदक प्राप्त किया।[2] उन्होंने अपने परिवार के मित्र और वरिष्ठ वकील पं० पृथ्वीनाथ की छाया में 1883 में कानपुर में वकालत आरम्भ की। कश्मीरी ब्राह्मणों के बीच बाल–विवाह का नियम था। मोतीलाल के बड़े भाई नन्दलाल का विवाह 12 वर्ष की अवस्था में 1857 की उथल–पुथल में हुआ था। मोतीलाल का विवाह भी जल्दी ही हो गया था और 20 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने से पहले

---

1. Nehru, J.L.: An autobiography, P - 3
2. Ibid, P - 4

ही उनके एक पुत्र भी हो गया था। लेकिन इस विवाह का अन्त दुखद ढंग से हुआ। माँ और पुत्र दोनों की मृत्यु हो गई। मोतीलाल का दूसरा विवाह स्वरूपरानी के साथ हुआ। स्वरूपरानी कद में छोटी एवं नाक नक्श एवं रंग रूप में चीनी मिट्टी की गुड़िया के समान थीं। उनकी आँखें शरवती, केश गहरे भूरे तथा हाथ पैर पूर्णतया सुन्दर और सुडौल थे। वे अपने पिता की सबसे छोटी और अपेक्षाकृत दुलारी सन्तान थीं। उनके लिये अपने पति की उस गृहस्थी में अपने को व्यवस्थित करना आसान न था जिसमें सम्बन्धियों की एक पूरी जमात थी और जिस पर एक ऐसी कठोर सास का शासन था जिसका उग्र स्वभाव पूरे नगर में विख्यात था। पर स्वरूपरानी ने धैर्यपूर्वक संयुक्त परिवार के उत्तरदायित्वों को आत्मसात् किया और किंचित ही कोई अन्यथा उदाहरण प्रस्तुत किया। संयुक्त परिवार के बहुमुखी उत्तरदायित्वों ने स्वरूपरानी को धीर, वीर और गम्भीर बनाया जो भावी जीवन में स्वाधीनता संग्राम के हलचल पूर्ण संकट के दिनों में उन्हें स्थायित्व और शांति प्रदान कर सका।

सुन्दर स्वरूप रानी और आकर्षक मोतीलाल की जोड़ी बड़ी ही मनोहर थी। उन दोनों ने कुछ वर्ष खुशी से बिताये। इसके बाद स्वरूप रानी प्रायः अस्वस्थ रहने लगीं जिसने उनके पारिवारिक जीवन पर लम्बी छाया छोड़ी। उनकी पहली सन्तान जो पुत्र था जीवित नहीं रहा। 14 नवम्बर 1889 को उनके दूसरे बच्चे का जन्म हुआ, जिसका नाम जवाहर लाल रखा गया। हिन्दू परिवार में पुत्र का जन्म अत्यधिक उल्लास का विषय माना जाता है। पहले विवाह और पहले पुत्र के दुखद अन्त के कारण मोतीलाल और सम्पूर्ण परिवार के लिये यह प्रसन्नता का विशेष अवसर था।

२. नेहरू जी का बचपन का जीवन

जवाहरलाल नेहरू सम्पन्न पिता पं0 मोतीलाल नेहरू की इकलौती सन्तान थे और जीवन के ग्यारह वर्ष तक घर में एक मात्र बालक, उनका हम उम्र घर में कोई नहीं था। परिवार के लाड़ले होने के कारण उन्हें बहुत स्नेह मिला और ऐश्वर्य का सुख भी उन्होंने खूब उठाया। नेहरू परिवार भरा–पूरा था। चचेरे भाई और आत्मीयजन बहुत थे पर वे सभी जवाहरलाल नेहरू से बड़े थे। वे सभी हाईस्कूल अथवा कॉलेज के छात्र थे। उनकी दृष्टि में जवाहरलाल उनके कार्यों अथवा खेलों में भाग लेने लायक नहीं थे। इस तरह वे परिवार में स्वयं को एकाकी महसूस करने लग गए थे। उनका अधिकांश समय अपने ही विचारों और खेलों में बीतता था। वे अक्सर अपने चचेरे भाइयों की बातें सुनकर समझने का प्रयास किया करते थे। उनकी चर्चा अक्सर अंग्रेज और यूरेशियन की ऐंठू प्रवृत्ति तथा भारतीयों के साथ अपमानजनक व्यवहार के विषय में हुआ करती थीं। उनके दृष्टिकोंण से प्रत्येक भारतीय को सहन न करके सामना करना चाहिये। कभी–कभी अधिकारियों और जनता के बीच टकराव की बातें छिड़ जाया करती थीं। उन दिनों किसी अंग्रेज का किसी हिन्दुस्तानी को कत्ल कर देना ऐसा था जैसे चींटी को हाथ से मसल देना। जूरी के हाथों अंग्रेज कातिल साफ बच जाता था। यह स्थिति भारतीयों को खटका करती थी। ट्रेनों में अंग्रेजों के लिए डिब्बे सुरक्षित रहते थे। खाली पड़े रहने पर भी कोई भारतीय उनमें यात्रा नहीं कर सकता था। असुरक्षित डिब्बों पर भी अक्सर यूरोपियन अपना कब्जा जमा लेते थे और किसी भारतीय को उसमें प्रवेश नहीं करने देते थे। सार्वजनिक उद्यानों की भी यही स्थिति थी। वहाँ पर भी बेंचें अंग्रेजों के लिए सुरक्षित रखी जाती थी। इस स्थिति से जवाहरलाल के मन में विदेशी शासकों के प्रति बड़ा रोष आता था किन्तु किसी अंग्रेज के विरुद्ध उनके मन में कोई कटुता नहीं थी। उनकी अध्यापिका भी एक अंग्रेज महिला थी और उनके पिता के अनेक अंग्रेज मित्र थे। जब कभी किसी भारतीय की अंग्रेज पर वार करने की बात जवाहरलाल के कानों में पड़ती तो जवाहरलाल बहुत खुश होते थे। जब कभी जवाहरलाल के चचेरे भाई या जवाहरलाल के मित्र ऐसे ही किसी विवाद में उलझ जाते तो उसे सुनकर जवाहरलाल भी उत्साहित हो जाते थे। जवाहरलाल के चचेरे भाई काफी दबंग थे और यूरेशियनों

से टकराने का उन्हें शौक था।[1]

संध्या समय जवाहरलाल के पिता के यहाँ अक्सर बैठक लगा करती थी। जवाहरलाल के पिता अपने मित्रों के बीच आराम कुर्सी पर बैठ जाते और दिन भर की कचहरी की थकान हास–परिहास से मिटाया करते थे। जवाहरलाल भी पर्दे की ओट से उनकी बातें सुनने की कोशिश किया करते थे। जब कभी देख लिये जाते तो पकड़ कर पिता की गोद में बैठा दिये जाते थे। जवाहरलाल पिता को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे और जवाहरलाल सोचा करते थे कि वे भी बड़े होकर पिता के समान ही यश के भागी बनें। जवाहरलाल नेहरू के पिता बड़े उग्र स्वभाव के थे। नौकरों के साथ उनका व्यवहार कठोर था जिसे देखकर जवाहरलाल का बाल हृदय भी काँप उठता था। एक दिन जवाहरलाल भी 5–6 वर्ष की अवस्था में पिता के क्रोध का शिकार हो गये। जवाहरलाल ने पिता की मेज पर दो पेन पड़े देखे। उन्हें देखकर जवाहरलाल का मन ललचा उठा। जवाहरलाल ने बाल सुलभ प्रकृति से सोचा कि पिता जी एक साथ दोनों पेनों का क्या करेंगे ? और उनमें से एक पेन जवाहरलाल ने अपनी जेब में डाल लिया। बाद में उस पेन की बड़ी जोरों से खोज हुई कि वह कहाँ चला गया? यह देखकर जवाहरलाल घबरा गये और डर के मारे पेन के विषय में बताया भी नहीं। आखिर पेन मिल गया और जवाहरलाल गुनहगार ठहराये गये। जवाहरलाल नेहरू के पिता बहुत गुस्सा हुये और जवाहरलाल को खूब पीटा। बालक जवाहर दर्द और अपमान से पीड़ित होकर माँ स्वरूप रानी की गोद में जा छिपे। कई दिन तक कमर में दर्द रहा और मरहम तथा क्रीम लगाकर दर्द को कम करने की कोशिश की गई। जवाहर ने जुर्म से अधिक मिली सज़ा के औचित्य को माना। इस बात को लेकर जवाहरलाल के मन में पिता के प्रति कोई दुर्भावना उत्पन्न नहीं हुई।[2] जवाहर माता स्वरूपरानी से बिल्कुल भी नहीं डरते थे। उनकी शरारतों पर भी वे कुछ नहीं कहती थीं। वे अपने इकलौते पुत्र को बहुत अधिक प्यार करती थीं। इस कारण बेटा माँ पर हावी हो गया था। इस आपसी दुलार के कारण जवाहर पिता की अपेक्षा स्वयं को माता के अधिक समीप पाते थे। इस कारण जवाहर प्रत्येक बात माता से बड़े यकीन के साथ

---

1. श्री शरण, – ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 14, 15

2. Ibid, P - 15, 16

कर लिया करते थे। माता के अलावा एक और व्यक्ति जवाहर के बहुत नजदीक थे। जवाहर उस व्यक्ति पर बहुत विश्वास करते थे– वे थे मुंशी मुबारक अली। मुंशी मुबारक अली बच्चों के प्रति विनम्र और सहनशील थे। वे सफेद दाढ़ी रखते थे। कचहरी के बाद का अधिकांश समय बाल जवाहर के साथ ही विताते थे। जवाहर, मुंशी जी के साये में रहकर घंटों अलिफ–लैला की कहानियाँ सुना करते थे। इनके अलावा वे जवाहर को महाक्रांति की बातें भी सुनाया करते थे। माता और चाचियों के मुख से जवाहर ने पुराणों, रामायण और महाभारत सम्बन्धी अनेक कहानियाँ सुनी थीं, जिसके कारण जवाहर इन पौराणिक कथाओं और महाकाव्यों से बहुत अच्छी तरह परिचित हो गये थे। जवाहर समझते थे कि धर्म स्त्रियों के लिये है। जवाहर देखते थे कि परिवार की महिलायें अनेक पूजा–पाठ करतीं और तीज–त्योहार तथा व्रत रखती थीं। उन सब में जवाहर को विशेष खुशी मिलती थी जबकि चचेरे भाइयों और पिता के लिये सब आडम्बर ही मात्र था। कभी–कभी जवाहर अपनी माता और चाची के साथ गंगा स्नान को भी जाया करते थे। जवाहर ने इलाहाबाद, वाराणसी तथा अन्य स्थानों के देवालयों के भी दर्शन किये। जवाहर एक ऐसे सन्यासी को भी देखने के लिये गये जो सिद्ध माना जाता था मगर उनमें से किसी का भी प्रभाव जवाहर के हृदय पर नहीं हुआ।[1]

जवाहर के लिये हर त्योहार उल्लास भरा था। रंगों के त्योहार होली में संगी–साथियों और भाइयों के साथ खूब रंग खेलते, दीपावली पर असंख्य दीपकों के प्रकाश से उन्हें आनन्द मिलता। जन्माष्टमी पर व्रत रखना जवाहर के लिये कष्टप्रद हो जाता था। दशहरे पर रामलीला देखने के लिये बड़े चाव से जाते थे। सब बच्चों के साथ जवाहर मुहर्रम के ताजियों को भी देखने जाते थे। ईद के अवसर पर मुंशी मुबारक अली बढ़िया नये कपड़े पहन कर बड़ी मस्जिद में नमाज़ के लिये जाते थे और जवाहर उनके घर पर मीठी सेवैयाँ खाने पहुँच जाते थे। इनके अलावा भैया–दूज और रक्षाबंधन तथा नौ रोज भी बड़ी धूमधाम से मनाते थे। इन सब त्योहारों से अधिक खुशी जवाहर को अपने जन्मोत्सव पर होती थी। इस दिन वे विशेष तरंग में दिखाई देते थे। प्रातः ही जवाहर एक बड़ी तुला में अन्न और अन्य वस्तुओं के थैलों से

---

1. Ibid, P - 16

तोले जाते थे और वे सब चीजें निर्धनों में बाँट दी जाती थी तथा बाद में उन्हें नये परिधानों से सजाकर उपहार दिये जाते थे। संध्या समय प्रीति भोज का आयोजन किया जाता था। इस अवसर पर जवाहर स्वयं को एक राजा के रूप में महसूस किया करते थे। जवाहर को इस बात का दुख रहता था कि यह दिवस वर्ष में एक बार ही क्यों आता है ? जब कभी जवाहर को किसी आत्मीयजन की बारात में बाहर जाने का अवसर हाथ लगता तो जवाहर की खुशी का ठिकाना न रहता था। ऐसे अवसरों पर बच्चों पर लगी पाबन्दियाँ ढीली पड़ जाया करती थीं और वे स्वतन्त्रता से विचरण कर सकते थे। उस समय उन्हें एकाकीपन नहीं महसूस होता था। शरारतों के लिये भी अवसर हाथ आ जाता था पर कभी कभार किन्हीं बूढ़ों की डाँट—फटकार भी अवश्य पड़ जाती थी।

जवाहर घुड़सवारी के शौकीन थे और दिन की तरह जवाहर उस दिन भी घुड़सवारी के लिये गये थे, उनके साथ घुड़सेना का एक सवार रहता था। जवाहर घोड़े से गिर पड़े। घोड़ा अरबी नस्ल का था, वह खाली घर लौट आया। जवाहरलाल के पिता उस समय टेनिस खेल रहे थे। वे खेल को भूल गये। सारे परिवार में घबराहट और हलचल मची हुई थी। वहाँ पर उपस्थित सभी लोग, नौकर—चाकर, जो भी सवारी मिली उसे लेकर बालक जवाहर की खोज में निकल पड़े। जवाहर के पिता उन सबके अगुआ थे। उनका चेहरा चिन्ताओं से घिरा हुआ था। उन्नत ललाट पर चिन्ता की रेखायें स्पष्ट दीख रही थीं। रास्ते में बालक जवाहर को आते देख कर उनका चेहरा खुशी से खिल उठा। उनके ललाट पर पड़ी चिन्ता की रेखायें पानी पर पड़ी काई के समान फटती चली गई। उन्होंने लाड़ले बेटे का इस प्रकार स्वागत किया जैसे वह कोई बड़ी वीरता का कार्य करके वापस लौट रहा हो[1]। इस घटना के कुछ समय बाद जवाहरलाल नेहरू के पिता, बढ़ती हुई आय को देखकर यह महसूस करने लग गये थे कि परिवार के लिये सिविल लाइन्स वाली कोठी छोटी पड़ रही है, उन्होंने ऐसी कोठी को लेने का विचार बनाया जिसमें काफी कमरे हों और पाश्चात्य ढंग की सभी सुविधायें वहाँ उपलब्ध करायी जा सकें। वहाँ का वातावरण स्वच्छ और स्वास्थ्य वर्द्धक हो। सन् 1900 ई0 में उन्हें पता लगा

---

1. श्री शरण, — ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 16, 17

कि भारद्वाज आश्रम के समीप चर्च रोड पर बना भवन बिकने वाला है। इस भवन के अन्दर एक बड़ा उद्यान और तरण ताल भी था। इसका क्षेत्रफल भी काफी था। इसके स्वामी मुरादाबाद के कुँवर परमानन्द थे। उनसे उन्नीस हजार में इस भवन का सौदा हो गया।

इस नये खरीदे गये भवन में नवीनीकरण की आवश्यकता थी। इसके लिये उन्होंने अपनी थैली का मुंह खोल दिया। उसमें खुदाई और चिनाई का काम चलने लगा। इसका नाम उन्होंने "आनन्द भवन" रखा। अब उनका परिवार सिविल लाइन्स को छोड़कर इस विशाल भवन में आ गया था। इसमें कमरों की कमी नहीं थी और सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिये निर्माण कार्य चल रहा था। "आनन्द भवन" में ही जवाहर लाल नेहरू की माँ श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू ने 18 अगस्त, सन् 1900 ई0 में एक सुन्दर सी गुड़िया को जन्म दिया। वह माता के समान चीनी–गुड़िया सी लगती थी। इसलिये उसका नाम स्वरूप कुमारी रखा गया। घरेलू पुकारने का नाम नन्नी था, जिसे यूरोपीय संरक्षिका ने और संक्षिप्त कर "नन" बना दिया। बालक जवाहर नन्हीं को पाकर बहुत खुश थे। उन्हें खेलने के लिए एक गुड़िया मिल गई थी। "आनन्द भवन" में तरण ताल था उसमें तैरने में जवाहर को विशेष आनन्द मिलता था। उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में बोअर संघर्ष छिड़ा हुआ था। उसमें जवाहरलाल नेहरू की दिलचस्पी होने लगी थी। बोअरों की ओर उनकी सहानुभूति थी। इस संघर्ष के विषय में जानने के लिए जवाहरलाल उत्सुक रहा करते थे।[1]

---

1. Ibid, P - 19

३. नेहरू जी की शिक्षा

इसी बीच जवाहरलाल एक वीर और जिन्दादिल बच्चे की तरह बढ़ते जा रहे थे। ग्यारह वर्ष की अवस्था में जवाहरलाल के लिये एक नये घरेलू शिक्षक फर्डिनेंड टी0 ब्रुक्स को रखा। वे तीन वर्ष तक जवाहरलाल नेहरू के साथ रहे। फर्डिनेंड टी0 ब्रुक्स से जवाहरलाल बहुत प्रभावित हुये। उनकी संगति में रहकर जवाहरलाल को पुस्तकें पढ़ने का चाव लग गया। जवाहर लाल ने लैविल कैरोल की पुस्तकें, एलिसा माला रुडियार्ड किपलिंग की जंगल बुक्स, ऐन्थेनी होम का 'प्रिजनर ऑफ जैण्डा' के0 जै रोम का 'थ्री मैन इन ए वोट', ड्रा मैरियर की टिल्वी और पाल एबर्टसन, किम, स्कॉट, डिकिन्स और थैकरे के कई उपन्यास, एच0 जी0वेल्स, मार्क ट्वेन के रोमानी उपन्यास, शरलॉक होम्स की कहानियाँ आदि पढ़ डाली। जवाहरलाल डानक्वि जोट में गुस्तव डोर ने जो रेखा चित्र बनाये थे, वे अच्छे और मनोरंजक लगे। फ्रिडयाफ नेनसन की कृति 'फार्देस्ट नार्थ, ने जवाहरलाल के लिये साहसी कार्य का नया क्षेत्र खोल दिया। उनमें कविता का प्रेम भी जागृत हो गया। इसके अलावा फर्डिनेंड टी0 ब्रुक्स ने विज्ञान के रहस्यों से भी जवाहरलाल नेहरू का परिचय कराया। उन्होंने छोटी–सी प्रयोगशाला भी जुटा दी थी। जवाहरलाल इसमें प्रारम्भिक वस्तु विज्ञान और रसायन शास्त्र के प्रयोगों में घंटों बिता दिया करते थे। उसी समय जवाहरलाल अपनी समझ–बूझ और दृढ़ता से धर्म तथा परलोक के विषयों में सोचने–विचारने लग गये थे। चर्चाओं के आधार पर वे उपनिषद और गीता को अद्भुत ग्रंथ मानने लग गये थे। इनके कारण उनकी दृष्टि में हिन्दू धर्म ऊँचा उठ गया था। किन्तु तीन साल के बाद उनके शिक्षक ब्रुक्स से सम्पर्क टूट गया। वे आनन्द भवन से चले गये। इसी बीच एक अन्य शिक्षक से जवाहरलाल ने हिन्दी, संस्कृत सीखी थी किन्तु व्याकरण के प्रति आकर्षण न होने के कारण उन दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान न हो सका था[1]। इसके बाद सन् 1905 ई0 में जवाहरलाल नेहरू ने 15 वर्ष की अवस्था में हैरो पब्लिक स्कूल में प्रवेश लिया। हैरो स्कूल में जवाहरलाल ने बहुत दिन तक न तो अकेलेपन का अहसास किया और न बहुत दिनों तक घर की याद आई। वास्तव में कुछ हद तक जवाहरलाल नेहरू स्कूल

---

1. श्री शरण, – "महामानव नेहरू", पृष्ठ सं0 21, 22

की जिन्दगी में हिलमिल गये थे और अध्ययन तथा खेलकूद में रहने लग गये थे। फिर भी जवाहरलाल नेहरू का पूरा मेल नहीं बैठा। उनके मन में सदा यही बात कचोटती रही कि वे एक अंग्रेज बालक नहीं हैं। सम्भवतः अंग्रेज बालकों ने भी जवाहरलाल के विषय में ऐसा ही सोचा होगा। कुछ हद तक वे सब से अलग—थलग ही रहे, पर खेलों में पूरा भाग लिया। किसी भी खेल में जवाहरलाल चमक नहीं सके। लैटिन कम आने के कारण आरम्भ में उन्हें नीचे की श्रेणी में रखा गया, पर बाद में जवाहरलाल को तरक्की दे दी गई। सम्भवतः बहुत से विषयों में और विशेषकर सामान्य ज्ञान में वे समवयस्कों से कहीं आगे थे। जवाहरलाल की अर्द्ध—सत्र की आधिकारिक रिपोर्ट बड़ी ही प्रशंसापरक थी। हर विषय में वे सर्वोपरि थे। जवाहरलाल का कक्षा कार्य और आधुनिक भाषायें, विषय 'अति श्रेष्ठ' थे। बीजगणित में उन्हें 'अच्छा' कहा गया था तथा रेखागणित में अत्यधिक रूप से शुद्ध एवं 'मेहनत भरा' बताया गया था। विद्यार्थी के कक्षा कार्य में उनके ट्यूटर की टिप्पणी 'अत्युत्तम' थी। हाउस मास्टर ने निष्कर्ष दिया 'बहुत उत्साह—वर्द्धक'। डा0 जोसेफ बुड ने उसके विषय में लिखा था 'योग्यता विशिष्ट' है।[1]

स्कूल में अच्छा परिणाम दिखलाने के उपलक्ष्य में जवाहरलाल को जी0 एम0 ट्रैवेलियन की गैरी बाल्डी सम्बन्धी एक पुस्तक पुरस्कार में मिली थी। वह पुस्तक जवाहरलाल को इतनी अच्छी लगी कि उन्होंने इस माला की अन्य दो पुस्तकें भी खरीद लीं और इस तरह उन्होंने गैरी बाल्डी की पूरी कहानी बड़ी रुचि से पढ़ी।

हैरो स्कूल में जवाहरलाल के सहपाठी सभी प्रकार के थे। उनमें चार—पाँच भारतीय भी थे। भारतीयों में कुछ युवराज और एक—दो वेमेल प्रकृति के थे। वहाँ कुछ यहूदी भी थे। वे कभी भी यहूदी विरोधी नहीं रहे थे। जवाहरलाल हैरो स्कूल में बहुधा जिमनेजियम में भाग लिया करते थे। जवाहरलाल ने राइफल क्लब और केडेट कोर में भी वहाँ भाग लिया। इस प्रकार जवाहरलाल खेल और अध्ययन में डूबे हुये थे।[2] जवाहरलाल को हैरो स्कूल पसन्द होते हुये भी छोड़ने के लिये तैयार थे क्योंकि जवाहरलाल वहाँ के वातावरण को बौद्धिक रूप से शक्ति वर्द्धक नहीं पा रहे थे। इस प्रकार जवाहरलाल ने दो वर्ष हैरो स्कूल

---

1. श्री शरण, — "महामानव नेहरू", पृष्ठ सं0 23, 24
2. Ibid, P - 26, 27

TRINITY COLLEGE,
CAMBRIDGE.

Oct. 24th 1907

My dear father,

I have just come back from a lecture on "Socialism and the University man", which lasted quite two hours and consequently it is somewhat late now. The lecturer was George Bernard Shaw, about whom you must have heard a good deal. I was more interested in the man than in the subject of the lecture, and that was the reason of my going there. G. B. S. is a very able speaker & he gave a very interesting and instructive lecture.

नेहरू जी के पेपर्स

कैम्ब्रिज से 1907 में भेजा गया पत्र

ट्रिनिटी कालेज,
कैम्ब्रिज
24 अक्तूबर, 1907

प्रिय पिताजी,

मैं अभी-अभी 'समाजवाद तथा विश्वविद्यालय' पर भाषण सुनकर लौटा हूं जो लगभग दो घंटे चला। इसी कारण मुझे कुछ देर हो गई है। वक्ता जार्ज बरनार्ड शा थे जिनके बारे में आप काफी कुछ सुन चुके होंगे। मेरी दिलचस्पी भाषण से ज्यादा वक्ता में थी और मेरे जाने का कारण भी यही था। जार्ज बरनार्ड शा बहुत योग्य वक्ता हैं। उन्होंने बहुत मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद भाषण दिया।

नेहरू जी के पेपर्स

में बिता कर 31 जुलाई 1907 ई0 में वहाँ से विदा ली। तत्पश्चात् अक्टूवर, सन् 1907 ई0 में उन्हें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कॉलेज में प्रवेश मिल गया। यहाँ का वातावरण उन्हें बहुत अच्छा लगा। यहाँ उन्होंने विस्तृत दुनिया का अवलोकन किया।[1]

ट्रिनिटी कॉलेज में जवाहरलाल को बहुत से मित्र मिले उनके साथ मिलकर अध्ययन किया, कुछ खेले और इस तरह उनका मानसिक क्षितिज धीरे–धीरे बढ़ता चला गया। जवाहरलाल ने कॉलेज में प्राकृतिक विज्ञान का विषय लिया था– जिसमें रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र और वनस्पति शास्त्र पढ़ाये जाते थे किन्तु जवाहरलाल की रुचि इन्हीं विषयों तक केन्द्रित नहीं थी। साहित्य और इतिहास के विषय में राजनीति और अर्थशास्त्र के विषय में चर्चा किया करते थे। इन सब विषयों की ऊँची–ऊँची बातों के वातावरण में जवाहरलाल को क्षमता प्राप्त करने में देरी लगी, जिसके सहारे वे दूसरों के सामने टिक सकते, किन्तु शीघ्र ही वे समान स्तर पर आ गये और नीत्शे, बर्नार्ड शॉ की भूमिकाओं तथा लैविस डैकिन्सन की नई पुस्तकों की चर्चा में हिस्सा लेने लग गये।

बीस वर्ष की अवस्था में जवाहरलाल ने कैम्ब्रिज से द्वितीय श्रेणी में ऑनर्स की उपाधि प्राप्त कर ली। उन दिनों भारतीय सिविल सर्विस की नौकरी को अच्छा धंधा समझा जाता था, किन्तु उसे इसलिये अस्वीकार कर दिया गया कि आई0 सी0 एस0 की आयु सीमा उस समय 22 से 24 वर्ष थी। यदि वे उसकी परीक्षा में सफल हो जाते, तो उन्हें एक वर्ष इंग्लैंड में और बिताना पड़ता। परिवार के लोग इतने दिनों तक विदेश में रहने के कारण वैसे ही ऊब गये थे और वे चाहते थे कि जवाहरलाल यथाशीघ्र स्वदेश लौट आयें और माता–पिता के साथ रहें। फलतः पासा पुश्तैनी पेशे के पक्ष में हुआ और जवाहरलाल इनर टैम्पिल में भरती हो गये। 1912 ई0 में जवाहरलाल ने इनर टैम्पिल से बैरिस्ट्री की परीक्षा पास की।[2]

---

1. श्री शरण, – ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 29
2. Ibid, P - 35

४. नेहरू एक युवा राष्ट्रवादी

"जवाहरलाल नेहरू के मन में राष्ट्रवाद, त्याग, बलिदान, साहस की भावना अपने परिवार से एवम् शिक्षा प्राप्ति के द्वारा हुये विभिन्न देशों की स्वतन्त्रता सम्बन्धी घटनाओं से जागृति हुई। जिससे युवा नेहरू के हृदय में राष्ट्रवादी भावना प्रवाहित होने लगी।

"इसी राष्ट्रवादी भावना के कारण ही शायद जवाहरलाल किशोरावस्था में ही राजनीति में आ गये। जवाहरलाल जब हैरो कॉलेज में थे तब जवाहरलाल ने अपने पिता को एक भारतीय समाचार पत्र भेजने को लिखा, लेकिन साथ में यह भी लिखा कि वह 'पायनियर' न हो जिसका स्वामी एक अंग्रेज था।

जवाहरलाल ने इंडियन नैशनल कॉंग्रेस की कार्रवाई ध्यानपूर्वक पढ़कर पिता को भेजे गये अपने पत्रों में स्पष्टतः लिखा कि मेरी सहानुभूति भारतीय उग्रवादियों के साथ है जिनके नेता बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष थे। जवाहरलाल ने आयरलैंड का दौरा करने के बाद सिन–फीन आन्दोलन की प्रशंसा की। जवाहरलाल ने अपने घर भेजे गये एक पत्र में लिखा कि यह बड़ा दिलचस्प आन्दोलन है, जो बहुत – कुछ भारत के तथा–कथित उग्रवादी आन्दोलन के समान है। उनकी नीति कृपा–याचना की न होकर अधिकार छीन लेने की है। आन्दोलनकारी इंग्लैंड से सशस्त्र युद्ध नहीं करना चाहते, उनका उद्देश्य इंग्लैंड की उपेक्षा तथा वहिष्कार करके चुपके से आयरलैंड का प्रशासन अपने हाथ में ले लेना है।"[1]

कैम्ब्रिज में जवाहरलाल की राजनीतिक–विचारधारा में प्रखरता आई। हैरो के विपरीत यहां पर कुछ भारतीय थे, जिनके साथ वह देश के भविष्य के बारे में अपनी आशाओं तथा आशंकाओं पर विचार–विमर्श कर सकते थे। मजलिस भारतीय छात्रों के लिए बड़ा उपयोगी मंच था, सिर्फ संसदीय पद्धति की जानकारी के लिए ही नहीं, बल्कि राजनीतिक मामलों पर गंभीर बातचीत के लिए भी।

---

1. नन्दा, बी0आर0 – जवाहरलाल नेहरू, सचित्र जीवनी, पृष्ठ सं0 10, 11

TRINITY COLLEGE,
CAMBRIDGE.

Nov. 7th 1907

My dear father,

Have you heard of the Sinn Fein in Ireland? It is a most interesting movement and resembles very closely the so-called extremist movement in India. Their policy is not to beg for favours but to wrest them. They do not want to fight England "with arms", but "to ignore her, boycott her, and quietly assume the administration of Irish affairs." They have nothing to do with the Nationalists in fact they would even have boycott of the House of Commons and this does not commend itself to Mr. Redmond and his followers.

नेहरू जी के पेपर्स

1907 में अपने पिता को
लिखे गये पत्र में सिन–फीन
आंदोलन के वारे में जवाहरलाल
की टिप्पणी

ट्रिनिटी कॉलेज
कैम्ब्रिज
9 नवम्बर, 1907

प्रिय पिता जी,

क्या आपको आयरलैंड के 'सिन–फीन' के वारे में जानकारी है ? यह एक बहुत ही दिलचस्प आन्दोलन है जो बहुत कुछ भारत के तथाकथित उग्रवादी आन्दोलन के समान है। इसकी नीति कृपा–याचना न होकर अपने अधिकार छीन लेने की है। वे इंग्लैंड से सशस्त्र युद्ध करना नहीं चाहते। उनका उद्‌देश्य इंग्लैंड की उपेक्षा और वायकाट करके चुपके से आयरलैंड का प्रशासन अपने हाथ में ले लेना है। उन्हें राष्ट्रवादियों से कोई सरोकार नहीं है। वे तो हाऊस आफ कामन्स का भी वायकाट कर दें जो मिस्टर रेड्म और उनके अनुयायियों के लिये शोभनीय नहीं है।

नेहरू जी के पेपर्स

यद्यपि जवाहरलाल ऐसे सम्मेलनों में बोलने के लिए साहस नहीं जुटा पाते थे, फिर भी वहां के भाषणों को विशेष रूप से जब किसी प्रसिद्ध भारतीय नेता का भाषण हो रहा हो– बड़े मनोयोग से सुनते। उसी समय लाजपतराय कैम्ब्रिज गए और 'मजलिस' में भाषण दिया। उन्होंने एक बहुत दिलचस्प निबन्ध पढ़ा। इसके बाद जवाहरलाल ने अपने पिता को लिखा, ''लाला लाजपतराय भारतीयों का इंडियन सिविल सर्विस में जाना या वकालत करना बिल्कुल पसन्द नहीं करते। उन्होंने मुझे बताया कि क्योंकि मैं विज्ञान पढ़ रहा हूं, इसलिए मुझे कुछ वस्तुओं के निर्माण के लिए कारखाना लगाना चाहिये।'' कुछ दिनों बाद विपिन चन्द्र पाल आए जिनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने कैम्ब्रिज की बैठक में दस छात्रों के सामने इस प्रकार दहाड़–दहाड़ कर बोलना शुरू किया जैसे कलकत्ता में दस हजार के जन–समूह को सम्बोधित कर रहे हों। युवक नेहरू को पाल में, जिन्होंने मुसलमानों को कोई महत्व नहीं दिया, हिन्दू पुनरुस्थान तथा संकीर्णता की गंध आई। उन्होंने एक दो बार मुसलमानों की चर्चा की भी तो बहुत प्रशंसनीय ढंग से नहीं।[1]

कैम्ब्रिज से लिखे गये जवाहरलाल के पत्रों में बराबर राष्ट्रीय भावनाएं अभिव्यक्त होती रहीं। इन पत्रों से अंग्रेजों के इरादों के प्रति उनके गहरे अविश्वास तथा ब्रिटिश घोषणाओं के प्रति अत्यधिक कटुता का बोध होता था। जवाहरलाल ने अपने पत्र में पिता को लिखा कि एक सप्ताह पहले 'सेटरडे रिव्यू' नामक समाचार पत्र में प्रसंगवश बड़ी चातुर्यपूर्ण टिप्पणी छपी कि भारतीयों को स्वायत्त–शासन प्राप्त तो अवश्य होगा लेकिन भौगोलिक समय के अनुसार इसमें कई कल्प लग सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यह अवधि लाखों वर्ष से लेकर इतनी लम्बी हो सकती है कि उसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। सबसे बड़ी कठिनाई है– शिक्षा। भारतीयों को औपनिवेशिक स्तर प्राप्त करने के योग्य बनाने में लाखों पीढ़ियां खप जायेंगी। मिण्टो–मार्ले सुधार की घोषणा होने पर जवाहरलाल ने अपने पिता को लिखे पत्र में यह टिप्पणी की थी ''क्या आप नहीं समझते कि मार्ले ने हमारे साथ एक मजाक किया है ?'' जवाहरलाल की दृष्टि में मार्ले राष्ट्रवादी भारत के प्रति ब्रिटेन के गलत इरादे का

---

1. नन्दा, बी0आर0 – जवाहरलाल नेहरू, सचित्र जीवनी, पृष्ठ सं0 11, 13

Jan. 3rd 1908

My dear Father,

We expected lively things at the Surat Congress and our expectations were more than fulfilled. It is, of course, a great pity that such a split should have occurred. But it was sure to come and the sooner we have it the better. You will most probably throw all the blame on Mr. Tilak and the extremists. They may have been to blame for it but the moderates had certainly a lot to

नेहरू जी के पेपर्स

so with it. I do not at all
object R— B. Ghose being president;
but the manner in which he was
declared president in the face of
opposition can hardly be defended
from any point of view. The
moderates may represent part of
the country but they seem to think,
or at any rate try to make others
believe, that they are the "natural
leaders" and representatives of the
whole country. The manner in
which some of them try to ignore totally
all those who differ from them would
be annoying if it was not
ridiculous. I firmly believe that
there will hardly be any so-called
"moderates" left in a very few years
time. By the methods they are
following at present they are simply
hastening the doom of their party.

With love
from your loving son
Jawahar

नेहरू जी के पेपर्स

जवाहर लाल द्वारा 1908 में
अपने पिता को लिखे गये पत्र
में भारत में राजनीतिक घटनाओं
पर विचार।

2 जनवरी, 1908

प्रिय पिता जी,

कांग्रेस का सूरत अधिवेशन हमारी आशा से ज्यादा ही उत्तेजनापूर्ण रहा। पार्टी में ऐसी फूट पड़ जाना बड़े दुख की बात है परन्तु यह फूट अवश्यम्भावी थी और इतनी जल्दी पड़ गई यह भी अच्छा ही हुआ। शायद आप सारा दोष तिलक तथा उग्रवादियों के सिर नहीं मढेंगे। उन्हें भी दोषी ठहराया जा सकता है परन्तु उसकी जिम्मेदीर निश्चित रूप से नरम दल पर है। मुझे अधिवेश में अरविन्द घोष की उपस्थिति पर कोई आपत्ति नहीं, परन्तु विरोध के बावजूद, उन्हें जिस ढंग से अध्यक्ष घोषित किया गया था, उसे किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। संभव है, नरम दल वाले देश के किसी भाग—विशेष का प्रतिनिधित्व करते हों, परन्तु लगता है कि वह यह सोचते हैं या चाहते हैं कि लोग यह विश्वास करें कि वह स्वाभाविक रूप से नेता हैं तथा पूरे देश का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें से कुछ

अपने साथ असहमति प्रकट करने वालों की जिस प्रकार उपेक्षा करते हैं वह यदि हास्यास्पद नहीं तो परेशान करने वाली अवश्य है। मुझे पूरा यकीन है कि अगले कुछ वर्षों में कोई भी तथाकथित नरम दल वाला बचा नहीं रह पाएगा। वह इस समय जो तरीके अपना रहे हैं उनके कारण उनकी पार्टी का बहुत शीघ्र सत्यानाश हो जाएगा।

सस्नेह,

आपका बेटा

जवाहरलाल

प्रतीक था।

जवाहरलाल का यह उग्र साम्राज्यवाद विरोधी रवैया, जिससे मोतीलाल कुछ आशंकित हो गये अभी मात्र बौद्धिक स्तर पर ही था। इंग्लैंड के विश्वविद्यालयों के भारतीय छात्रों के लिये बौद्धिक क्रांति तथा राजनीतिक उग्रता के इस दौर से गुजरना कोई असामान्य बात नहीं थी। लेकिन स्वदेश लौटने पर उच्च सरकारी पद पाने या व्यावसायिक सफलता प्राप्ति के पश्चात् कैम्ब्रिज या आक्सफोर्ड के जीवन की ये दलीलें केवल जवानी के दिनों की धुंधली स्मृति बन कर रह जाती थी।[1]

---

1. नन्दा, बी0आर0 – जवाहरलाल नेहरू, सचित्र जीवनी, पृष्ठ सं0 13

९. नेहरू और वकालत का व्यवसाय

सन् 1912 का अगस्त मास था। श्रीमती स्वरूप रानी परिवार के साथ मसूरी में स्वास्थ्य लाभ कर रही थीं। तभी जवाहरलाल नेहरू इंग्लैंड से बैरिस्टर बन कर परिवार से मिलने के लिये मसूरी पहुँचे। सात वर्ष के लम्बे बिछोह के बाद माता पुत्र को देख कर पुलकित हो उठी। उनका रोग चमत्कारिक ढंग से गायब हो चुका था। पिता पं0 मोतीलाल नेहरू अति प्रसन्न और गौरव अनुभव कर रहे थे। बारह वर्षीया स्वरूप कुमारी भाई के आगमन की खुशी में फूली नहीं समा रही थी। छोटी बहन कृष्णा जो कि अपने भाई के इंग्लैंड प्रवास में जन्मी थी, चकित थी कि धूमधड़ाका किस लिये हो रहा है। इस तरह उनका पारिवारिक पुनर्मिलन विशेष रूप में पर्वतों की रानी मसूरी में हुआ। कुछ सप्ताह बाद पं0 मोतीलाल नेहरू वकालत का काम देखने के लिये अकेले इलाहाबाद लौट आये और शेष परिवार मसूरी में छुट्टी मना रहा था। तभी राव महाराज सिंह नाम मुवक्किल से पं0 मोतीलाल नेहरू को पाँच सौ रुपये का मनीआर्डर मिला, वे युवा नेहरू को अपना वकील निुक्त करना चाहते थे। उस फीस को देख कर पं0 मोतीलाल इतने खुश हुए कि उन्होंने तत्काल अपने पुत्र को पत्र में लिखा,...... पहली फीस जो तुम्हारे पिता को मिली थी, वह केवल पाँच रुपये थी। जाहिर है कि तुम अपने पिता से सौ गुना बेहतर हो। मैं चाहता हूँ कि मैं स्वयं न होकर अपना बेटा होता।..........तुम्हारी माता यह जानकर खुश होंगी कि यह तुम्हारी पहली फीस है। इस प्रकार जिस व्यक्ति ने पाँच रुपये से शुरूआत की हो, उसके लिए यह दोहरी खुशी की बात है[1]........। वहाँ से लौटने के बाद जवाहरलाल नेहरू हाई कोर्ट में वकालत करने लग गये। कुछ सीमा तक उन्हें अपने काम में दिलचस्पी आने लग गई थी। इंग्लैंड से लौटने के बाद आरम्भ के कुछ मास तो आराम और आनन्द से कटे थे। उन्हें आनन्द भवन में आने और पुरानी स्मृतियों को ताज़ा करने की खुशी हुई थी, पर धीरे–धीरे अधिकांश व्यक्तियों के साथ जिस प्रकार का जीवन–यापन करना पड़ता था, उसकी सब ताजगी गायब होने लग गई थी और वे यह महसूस करने लग गए थे कि वे

---

1. श्री शरण, – "महामानव नेहरू", पृष्ठ सं0 36, 37

व्यर्थ और उद्देश्यहीन जीवन की नीरस खानापूर्ति में ही फंस रहे हैं। उनके मन में यहाँ की स्थितियों के प्रति असन्तोष था। इसका कारण बना था सात वर्ष का वह समय जो उन्होंने शिक्षा के लिये विदेश में बिताया था। इस अंतराल में जो आदतें और भावनायें बन गई थीं, वे यहाँ के वातावरण में किसी प्रकार भी मेल नहीं खा रही थीं जबकि आनन्द भवन का वायुमंडल बहुत अनुकूल था और उसके बीच कुछ शांति भी मिलती थी, पर इतना पर्याप्त नहीं था। उसके बाद तो वही बार लाइब्रेरी, वही क्लब और उनमें आने जाने वाले वही लोग जो बहुधा कानून और अदालतों के विषय में ही बातचीत किया करते थे। इस तरह के वातावरण से बुद्धि को कोई गति अथवा स्फूर्ति नहीं मिल पाती थी। "लेकिन वह भारतीय अदालतों की कानूनी बारीकियों तथा क्षुद्रताओं से ऊब गये और वहाँ के घोर स्वार्थ के वातावरण में उनका दम घुटने लगा। तीस वर्ष पहले उनके पिता ने आवश्यकतावश कानून के व्यवसाय को अपनाया था, जिससे पूरी सफलता प्राप्त करने के लिये पूरी तन्मयता की जरूरत होती है। इसके विपरीत जवाहरलाल के अंतरमन में ऐसी रिक्तता थी जो मात्र व्यक्तिगत अथवा व्यावसायिक महत्वाकांक्षा से पूरी नहीं हो सकती थी।"[1] नेहरू जी ने वकील के पेशे को वेश्यावृत्ति से बुरा माना। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में :—

"वकील के पेशे की तरह कुछ दूसरे असामाजिक धंधे भी हैं। दरअसल आज भी हिन्दुस्तान में सबसे ज्यादा इज्जत उन्हीं लोगों को हासिल है जो खुद कुछ नहीं करते, और उनके पुरखे उनके लिये जो कुछ छोड़ गये हैं उसी के सहारे ऐशो इशरत की जिन्दगी वसर करते हैं। हमें इन सारे असामाजिक लोगों का ख्याल नहीं करना चाहिये।"[2]

जवाहरलाल नेहरू तथा भारत के लोगों के बीच अनूठे गठबन्धन तथा गुलाम भारत की अनुभूति के कारण नेहरू जी ने वकालत का व्यवसाय नहीं किया नेहरू जी वकालत के पेशे को निम्न, तुच्छ, धर्म और नैतिकता के अनुरूप नहीं मानते थे। वकालत के पेशे से आने वाले धन को जवाहरलाल अच्छा नहीं समझते थे क्योंकि वकालत जैसे व्यवसाय

---

1. चेलापति राव, एम० — आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ० सं० 14

2. नेहरू, जवाहरलाल — वाङमय खण्ड 6, पृष्ठ सं० 490

में झूठ, धोखा, छल, कपट, बेईमानी, गुमराह करने बाली बातें तथा अपराधी को निर्दोष साबित करना, ये सारी बातें होती हैं परन्तु नेहरू जी ने इन सब चीजों को उचित नहीं माना। नेहरू जी के जीवन में सादगी, सच्चाई और संयम था। नेहरू जी ने जीवन में दया, उदारता और धर्म को विशेष रूप से जाना। इस कारण से नेहरू जी ने वकालत जैसे व्यवसाय को चुनना अपने जीवन का अंग नहीं माना। हालांकि नेहरू जी के पिता मोतीलाल नेहरू ने वकालत के व्यवसाय के द्वारा धन, यश, कीर्ति, गौरव तथा मान सम्मान प्राप्त किया था और वकालत के पेशे से जवाहरलाल नेहरू का जीवन विकसित और शिक्षित हुआ था। जवाहरलाल ने आत्म मंथन कर अपना जीवन वकालत के वजाय राष्ट्र सेवा में अर्पित कर दिया।

६. भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों का नेहरू पर प्रभाव

जवाहरलाल के मन में भारत की दासता पीड़ा पैदा किया करती थी। वे प्रायः अंग्रेजों के अत्याचारों और भारत की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में सोच—विचार किया करते थे। 1912 ई0 में जवाहरलाल ने भारत की राजनीति में एक अद्भुत दृश्य देखा। उन दिनों कांग्रेस में जो लोग थे, वे अंग्रेजी बोलते थे और अंग्रेजी ढंग के कपड़े पहना करते थे।

राजनीति में दो तरह के लोग थे। एक तरह के लोग तो वे थे जो अंग्रेजों के विरुद्ध कड़ी बात बोलते थे। इस तरह के लोग 'गरम दल' के नेता कहे जाते थे। दूसरी तरह के लोग वे थे, जो शासन में सुधार तो चाहते थे पर अंग्रेजों की हां में हां मिलाया करते थे। इस तरह के लोग 'नरम दल' के नेता कहे जाते थे। लोकमान्य तिलक, लाजपतराज और विपिनचन्द पाल गरम दल के नेता थे। गोपाल कृष्ण गोखले और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि नरम दल के नेता थे। मोतीलाल जी का झुकाव नरम दल की ओर था, पर जवाहरलाल जोशीले थे। उनका झुकाव गरम दल की ओर था। जवाहरलाल का मन रह—रहकर राजनीति की ओर खिंच उठता था।

सन् 1912 ई0 में बांकीपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। जवाहरलाल ने उसमें भाग लिया। पर उन्होंने अधिवेशन में जो कुछ देखा उससे उन्हें बड़ी निराशा हुई। अधिवेशन में जितने व्याख्यान हुये थे, अंग्रेजी में ही हुये थे। व्याख्यान देने वाले अंग्रेजों की वेश—भूषा में थे। जवाहरलाल के मन में उस कांग्रेस से विरक्ति हो गई। उन दिनों गोपाल कृष्ण गोखले ने देश के सेवकों के संगठन और सहायता के लिए एक संस्था की स्थापना की थी—सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया सोसायटी। जवाहरलाल उस संस्था की ओर भी झुके, पर उसके सदस्य नहीं हुये, क्योंकि उसके द्वारा कोई ऐसा काम नहीं होता था जो जवाहरलाल जी की रुचि के अनुकूल कहा जाता। जवाहरलाल तो ऐसी संस्था खोज रहे थे, जो अंग्रेजी शासन के विरुद्ध स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ सकती।[1]

---

1. पालीवाल, डा0 नारायण दत्त — आनन्द भवन से संसद तक, पृ0सं0 27

अगस्त सन् 1914 ई0 में विश्वव्यापी प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। भारत की इस विश्वव्यापी युद्ध में कोई रुचि नहीं थी; पर अंग्रेजों ने बिना रजामंदी के उसे इस महायुद्ध में घसीट लिया। इस महायुद्ध के समय राजभक्ति की लम्बी–लम्बी घोषणायें तो की गई; किन्तु विदेशी शासकों के प्रति भारतीयों में कम सहानुभूति थी। जर्मनी के प्रति भी कोई झुकाव नहीं था। जवाहरलाल नेहरू की सहानुभूति फ्रांस के प्रति थी जो अंग्रेजों की ओर था और जिस पर जर्मनी ने आक्रमण किया था। पंजाब में रंगरूटों की जबरन भर्ती होने लग गई थी। विवश होकर भारतीयों ने अंग्रेजों की मदद की; पर वे चाहते थे कि उन्हें अंग्रेजी सत्ता से मुक्ति मिले। धीरे–धीरे देश में राजनीतिक जीवन फिर उभरने लगा। लोकमान्य तिलक बंदीगृह से मुक्त हो गये थे। उन्होंने और श्रीमती एनीबेसेंट ने अंग्रेजी शासन से मुक्ति की माँग करने के लिये होमरूल लीगें स्थापित की। जवाहरलाल नेहरू दोनों लीगों में सम्मिलित हुए; किन्तु उन्होंने विशेष रूप से कार्य श्रीमती ऐनीबेसेंट की लीग के लिए ही किया। उन दिनों श्रीमती ऐनीबेसेंट भारत के राजनैतिक मंच पर छाती जा रही थीं। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में आशा से अधिक उत्साह भर गया था और मुस्लिम लीग कांग्रेस के साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर चलने लग गई थी। इस प्रकार राजनैतिक वातावरण में बिजली–सी दौड़ गई थी और जवाहरलाल नेहरू जैसे तरुणों के हृदय जोश से भर उठे थे। उन्हें निकट भविष्य में बड़ी–बड़ी बातें होने की आशा बंध गई थी। तभी श्रीमती ऐनीबेसेंट को नज़रबंद कर लिया गया। इससे नरम दलीय लोग भी उत्तेजित हो गए। वातावरण में तनाव छा गया। इसने देश भर में होमरूल आन्दोलन में प्राण फूंक दिये। मोतीलाल नेहरू एवं जवाहरलाल नेहरू ने भी इस समय एक दूसरे को प्रभावित किया। पं0 मोतीलाल नेहरू को तर्कों पर यक़ीन था और जवाहरलाल नेहरू भावुक युवक थे। पिता के जीवन का ढंग रईसाना था और पुत्र भारतीय जनता के जीवन का तरीका अपनाना चाहता था। श्रीमती ऐनीबेसेंट की नज़रबंदी से पं0 मोतीलाल नेहरू और शिक्षित नेता होमरूल लीग में सम्मिलित हो गये थे। कुछ मास बाद अधिक शिक्षित नेताओं ने किसी कारणवश लीग से इस्तीफा दे दिया था। पं0 मोतीलाल नेहरू ने सदस्यता नहीं त्यागी और इलाहाबाद शाखा के सभापति भी बन गये।[1]

---

1. श्री शरण, – ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 38, 39

जवाहरलाल नेहरू धीरे—धीरे राजनैतिक गतिविधियों में घुसते चले जा रहे थे। इस प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में उनके राजनैतिक एवं सार्वजनिक कार्य साधारण थे। वे आम सभाओं में भाषण देने से बचे हुये थे। इसका मुख्य कारण था— हिचकिचाहट और हृदय में छाया डर। साथ ही वे यह भी महसूस करते थे, जनता के बीच जो भी भाषण हो, वह हिन्दी में ही हो। पर उन्हें यह विश्वास नहीं था कि वे बहुत देर तक हिन्दुस्तानी में बोल सकेंगे। फिर भी सन् 1915 ई0 में उन्हें इलाहाबाद के राजनीतिक मंच पर से भाषण देने के लिये विवश कर दिया गया। उन दिनों प्रेस का मुँह बंद करने वाले एक कानून के विरोध में सभा हो रही थी। उसी में जवाहरलाल नेहरू को बोलना था। उस सभा में उन्होंने छोटा—सा भाषण अंग्रेजी में दिया। यह उनका प्रथम भाषण था। सभा के समाप्त होते ही प्रमुख नरम दलीय नेता डॉ0 तेजबहादुर सप्रू ने मंच पर सरेआम छाती से लगा कर प्यार से चूम लिया। उनकी खुशी का कारण था जवाहरलाल नेहरू का भाषण देना। उन्हें सार्वजनिक कार्य के लिये शिक्षित नया रंगरूट मिल गया था। उन दिनों का सार्वजनिक कार्य केवल आम सभाओं में भाषण देकर भारतीयों को जागृत करना था। उन दिनों आनन्द भवन में राजनैतिक प्रश्न पर चर्चा और विवाद के लिये शांतिमय विषय नहीं था। उसकी चर्चा होते ही वातावरण गरम हो जाता था। इसका मुख्य कारण था जवाहरलाल नेहरू का गरम दल की ओर झुकाव। पं0 मोतीलाल नेहरू की, जवाहरलाल की गतिविधियों पर नज़र थी। वे जवाहरलाल की राजनीतिक विषयों पर बातचीतों से जान गये थे कि वह हिंसात्मक कार्य की ओर जा रहा है, जिसे बंगाल के युवकों ने अपनाया था। इससे पं0 मोतीलाल नेहरू चिन्तित रहने लग गये थे। उधर जवाहरलाल नेहरू सोचते रहते थे कि वर्तमान स्थिति को चुपचाप सहन नहीं करना चाहिये और कुछ—न—कुछ अवश्य करना चाहिये। राष्ट्रीय नज़रिये से किसी कार्य को सफलता प्रदान करना बहुत सरल नहीं दिखलाई पड़ता था। फिर भी वे महसूस करते थे कि स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान दोनों ही यह चाहते हैं कि विदेशी सत्ता के विरुद्ध अधिक संघर्षमय और आक्रामक रवैया अपनाया जाये। पं0 मोतीलाल नेहरू भी स्वयं शिक्षितों की विचार पद्धति से असंतुष्ट चल रहे थे और उनके हृदय में विशेष प्रकार की हल—चल मची हुई थी। वे इतने जिद्दी स्वभाव के थे कि उन्हें जब तक इस बात का पूरा—पूरा यक़ीन न हो जाये कि ऐसा करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं

है, तब तक वे एक स्थिति को छोड़ कर दूसरी को कभी अपनाते नहीं थे। वे अपना हर पग सोच कर ही बढ़ाते थे। बढ़े हुये पग को किसी भी स्थिति में पीछे नहीं हटाते थे। उन्होंने बौद्धिक विकास के फलस्वरूप जो अपना पग आगे बढ़ाया तो फिर पीछे मुड़ कर नहीं देखा। पं० मोतीलाल नेहरू की राजनीति में बाह्य परिवर्तन श्रीमती ऐनीबेसेंट की नज़रबंदी के समय से आया और तब से वे पग आगे—ही—आगे बढ़ते चले गये। उन्होंने अपने माडरेट मित्रों को पीछे छोड़ दिया। "देश की राजनीति के साथ पं० मोतीलाल नेहरू और उनके पुत्र जवाहरलाल नेहरू की शक्तियाँ पारिवारिक और कार्यों में बराबर लग रही थीं। इन वर्षों की सबसे विचित्र घटना पं० मोतीलाल नेहरू के इकलौते पुत्र जवाहरलाल का विवाह था। उसके लिये माता—पिता ऐसी लड़की की खोज कर रहे थे जो सौंदर्य और शिक्षा दोनों में ही अद्वितीय हो। ये दोनों ही गुण उन्हें दिल्ली के एक व्यापारी पं० जवाहरमल कौल की सुपुत्री कमला कौल में मिले। कमला कौल का जन्म 1 अगस्त, सन् 1899 ई० में हुआ था। वे क़द की लम्बी, इकहरा बदन, सुन्दर चेहरा लिये हुये थी। नेहरू परिवार की अपेक्षा कौल परिवार में अंग्रेजियत कुछ कम थी। किन्तु वाग्दान के दिनों में जब कमला कौल इलाहाबाद में अपने कुछ आत्मीयों के साथ ठहरी हुई थीं, वर के उपयुक्त बनने के लिये भावी पति की बहनों की यूरोपियन संरक्षिकाओं के साथ कर दी गईं।

वसन्त पंचमी के दिन 8 फरवरी, सन् 1916 ई० को विवाह की तिथि रखी गई। विवाह दिल्ली में होना था, अतः एक विशेष ट्रेन से जवाहरलाल के पिता के मित्र एवं आत्मीय—जन दिल्ली गये। जहाँ एक सप्ताह तक जवाहरलाल नेहरू का विवाह मंडप तमाम खुशियों का केन्द्र बना रहा। इलाहाबाद में लौटने पर आनन्द भवन में कई सप्ताहों तक मनोरंजन के कार्यक्रम चलते रहे। नेहरू परिवार के भारतीय एवं यूरोपीय मित्र चाय और डिनर, बैडमिंटन और टेनिस पार्टियों, मुशायरों और संगीत सभाओं में आमंत्रित किये गये थे। पचपन वर्ष की अवस्था में पं० मोतीलाल नेहरू के लिये अपने लाड़ले इकलौते पुत्र जवाहरलाल नेहरू का विवाह जीवन की चरम सिद्धि था।"[1]

---

1. श्री शरण, — "महामानव नेहरू", पृष्ठ सं० 40, 41

द्वितीय अध्याय

1. राजनीति की ओर नेहरू का आकर्षण
2. नेहरू के राजनैतिक जीवन में गाँधी क्रा आविर्भाव
3. नेहरू जी पर गाँधी का प्रभाव
4. जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की जाँच समिति में नेहरू
5. दिसम्बर,1919 का अमृतसर का काँग्रेस अधिवेशन और नेहरू
6. किसान आन्दोलन और नेहरू
7. अहिंसक असहयोग आन्दोलन और नेहरू
8. विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और नेहरू
9. इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष और कांग्रेस महामंत्री के रूप में
10. 1928 में नेहरू विज्ञप्ति और जवाहरलाल का असंतोष
11. 1929 में लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में जवाहरलाल नेहरू का भाषण

1. राजनीति की ओर नेहरू का आकर्षण

सन् 1916 ई0 के बड़े दिनों में लखनऊ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें जवाहरलाल नेहरू की भेंट मोहनदास करमचन्द गाँधी जी से हुई। अब भी गाँधी जी के साथ दक्षिणी अफ्रीकी संघर्ष का कुछ प्रभाव शेष–सा लग रहा था, किन्तु उनकी राजनीति एक विचित्र सम्मिश्रण लगती थी। यदि वे ब्रिटिश ताज के प्रति निष्ठा घोषित करते थे तथा महायुद्ध के दिनों में विवादास्पद राजनीति की निन्दा करते थे, तो बाल गंगाधर तिलक की पूंजा भी करते थे। वे सत्य के लिए सदैव संघर्ष को उत्सुक उस वीर की भांति व्यवहार करते थे, जो अन्याय के विरुद्ध सत्याग्रह की तलवार उठाने के लिये सदैव तत्पर रहता है। जवाहरलाल नेहरू गाँधी जी की राजनीति से चकित थे; पर उनके व्यक्तित्व ने उन्हें आकर्षित कर लिया था। उन्होंने गाँधी जी को पाया, '....विनम्र किन्तु साथ ही हीरे की तरह कड़े और कठोर, हँसमुख और मीठा बोलने वाले, किन्तु न झुकने वाले दृढ़ और बहुत ईमानदार। उनके नेत्र मृदुल और गहरे थे तथा उनमें विशेष चमक थी। दुबले–पतले शरीर वाले इस छोटे से व्यक्ति में इस्पात की सी दृढ़ता थी और कोई चट्टान की सी वस्तु थी जो दैहिक शक्तियों के सामने नहीं झुकती, चाहे ये शक्तियाँ कितनी ही बड़ी क्यों न हों! और यद्यपि उनकी शक्ल–सूरत, उनकी लंगोटी और नंगी देह ऐसी न थी कि किसी पर बहुत धाक जमे, फिर भी उनमें कुछ शाहीपन और बादशाहियत अवश्य थी जो दूसरों को खुशी–खुशी आज्ञा मानने के लिये विवश करती थी। उनकी सोलहों आने पूरी सच्चाई और उनका व्यक्तित्व दूसरों को जकड़ लेता था। उनसे मिलने पर यह विचार बन जाता था कि उनके भीतर प्रचण्ड शक्ति का भण्डार भरा हुआ है।'[1]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन अधिकांश भारतीय नेताओं के लिये आशा का नया सवेरा सिद्ध हुआ, क्योंकि इस संक्राति काल में मुस्लिम एकता की आवश्यकता थी और इस अधिवेशन में कांग्रेस लीग संयुक्त योजना का सूत्रपात हुआ था। इस अधिवेशन में शिष्टाचार के नाते संयुक्त प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन

---

1. श्री शरण, – ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 43

सम्मिलित हुये थे। उन्होंने श्रीमती ऐनीबेसेंट की गतिविधियों को संयुक्त प्रान्त में संयमित करने के लिये विवेकपूर्ण मना किया था। होमरूल आन्दोलन के प्रति अंग्रेजी शासन की प्रतिक्रिया तीव्रता के साथ अवज्ञा से दिग्भ्रम और उससे आशंका में परिवर्तित हो गई थी। इसकी एक शाखा इंग्लैंड में भी कार्य कर रही थी। इसकी संचालिका श्रीमती एनीबेसेंट के प्रति अंग्रेज अधिकारियों और कुछ समाचार पत्रों के सम्पादकों के विचार अशोभनीय थे। 'दि टाइम्स' समाचार पत्र के सम्पादक जिमोफ़े डाउसन ने वाइसराय को लिखे निजी पत्र में श्रीमती एनीबेसेंट को 'उपद्रवकारी कर्कशा बुढ़िया' कहा था। भारत सरकार के होम मेम्बर सर रेगिनाल्ड क्रैडक का निर्णय था कि, 'एक घमण्डी बुढ़िया जो आन्दोलनों की नेता बनने की तीव्र इच्छा से प्रभावित है।' मद्रास के गवर्नर लार्ड पेटलैण्ड ने श्रीमती ऐनीबेसेंट को चुप कराने का भरसक प्रयास किया था। इसके लिये उन्होंने उनके समाचार पत्रों से जमानतें माँगी थीं और उन्हें जब्त कर लिया था। उनके सहयोगियों की गतिविधियों पर पाबन्दी लगाई गई तथा भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत नज़रबन्द करने के बाद भी होम रूल आन्दोलन दब नहीं पाया। वह जंगल की आग की तरह सर्वत्र फैलता चला गया। जवाहरलाल और मोतीलाल इसकी बागडोर सभापित तथा संयुक्त सचिव के रूप में सम्भाले हुये थे।[1] 22 जून, सन् 1917 ई0 को इलाहाबाद के भारतीय नागरिकों की एक आम सभा संध्या समय राम प्रसाद बाग में हुई। इसकी अध्यक्षता पं0 मोतीलाल नेहरू ने की, जिसमें लगभग चार सहस्त्र भारतीयों ने उत्साह के साथ भाग लिया। इसमें पं0 मोतीलाल नेहरू ने घोषणा की कि देश इस समय संक्रांति काल से गुजर रहा है। सरकार ने हमारे राष्ट्रीय लक्ष्यों के प्रति खुला जेहाद घोषित कर दिया है।.......क्या हम इन अफसरी नाराजगियों के आगे झुक जायेंगे ? ....आइए, हम सभी होमरूल लीग के झण्डे को ऊँचा उठा दें तथा तैंतीस करोड़ कण्ठ होमरूल का नारा बुलन्द करें। नौकरशाही जन्म के पूर्व ही होमरूल के लिये अर्थी तैयार कर रही है........। आईए, हम लोग मजबूत दिलों के साथ कवि के साथ यह कहते हुये आगे बढ़ें, जो कुछ आना हो आए, हमने अपनी नौका सागर में उतार दी है......[2]। इसके तीन दिन बाद पं0 मोतीलाल नेहरू ने इंग्लैंड के तात्कालिक प्रधानमंत्री को तार भेजा, जिसमें संवैधानिक इंग्लैंड को

---

1. श्री शरण, — ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 43, 44
2. **Ibid, P-44**

भारत में दमन के असंवैधानिक ढंग के विरुद्ध अपील की गई थी। जुलाई के प्रथम सप्ताह में संयुक्त प्रान्त के लफ्टिनेंट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन भारत में राजनीति की विकसति हो रही तीव्र धारा से चिन्तित हो उठे। पहले तो इन्होंने मुख्य राजनीतिज्ञों से भेंट करनी चाही; किन्तु 'अत्यधिक प्रत्यक्ष अवमानना के खतरे से बचने के लिये' इन्होंने यह कार्य लखनऊ और इलाहाबाद के कमिश्नरों के ऊपर छोड़ दिया। इन्होंने इन भेंटों का परिणाम वाइसराय को गोपनीय पत्र द्वारा सूचित किया।......उन दोनों ने सूचना दी है कि वे तर्क सम्मत होने के हामी हैं और जातीय वैमनस्य को उभारने के अभिप्राय के निन्दक हैं– जैसे भी हो उन दोनों ने अनुभव किया– और वे भारतीय दिमाग़ के काफी समर्थ जानकार हैं– कि आन्दोलनकारियों में वास्तविक रूप से यह भावना विद्यमान है कि सरकार एक प्रतिक्रियावादी नीति अपनाने की सोच रही है। मैं चाहता हूँ कि होम गवर्नमेंट के लिये यह सम्भव हो कि वह जान सकें इस समय देश कितना अधिक उत्तेजित है और अधिकांश विचारशील लोग किसी भी घोषणा का कितनी उत्सुकता से स्वागत करेंगे..... ।'

भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत की गई नज़रबंदियों के विषय में टिप्पणी करते हुये गाँधी जी ने वाइसराय के प्राईवेट सेक्रेटरी जे0 एल0 मैफी को 10 जुलाई को पत्र लिखा था। '.....मेरी विनम्र राय में नज़रबंदियाँ भयंकर भूल है। ....कोई भी व्यक्ति श्रीमती बेसेंट के त्याग, उनके भारत प्रेम तथा कठोर रूप से वैधानिक बने रहने की इच्छा को अस्वीकार नहीं कर सकता।'

अगस्त, सन् 1917 ई0 में पं0 मोतीलाल नेहरू ने अपने पुत्र जवाहरलाल नेहरू के सहयोग से इलाहाबाद होम रूल लीग में नये प्राण फूंक दिय थे।[1] 10 अगस्त, सन् 1917 ई0 को लखनऊ में प्रांतीय कांग्रेस की विशेष बैठक हुई। इसकी अध्यक्षता पं0 मोतीलाल नेहरू ने की थी। जवाहरलाल नेहरू भी उनके साथ थे। इसमें उत्तर–प्रदेश, दिल्ली और आगरा के विभिन्न प्रान्तों के 548 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इसमें उन्होंने महायुद्ध छिड़ने के बाद से सरकारी नीतियों की तार्किक एवं कटु आलोचना की थी। उन्होंने लार्ड

---

1. श्री शरण, – "महामानव नेहरू", पृष्ठ सं0 44, 45

पेण्टलैंड की जल्दबाजी की तुलना सर जेम्स मेस्टन के संयम से की। उन्होंने तीखे शब्दों में ब्रिटेन तथा अन्य उपनिवेशों में प्राप्त बहस की स्वतंत्रता की ओर ध्यान आकर्षित किया और भारत पर लादी गई और खलने वाली पाबन्दियों की निन्दा कर कहा, 'हमारे नौकरशाह शासक कल्पनात्मक धारणाओं, सहानुभूतिपूर्ण समझ और बुद्धिमत्तापूर्ण साहस के कार्यों में लगभग पूर्णतया शून्य है। वे इस बात को समझने में असमर्थ हैं कि हम भारत में ब्रिटिश सम्बन्धों को स्थायी रूप से बनाये रखने के लिये कितनी गहन रुचि रखते हैं।[1]...... उन्होंने हमारे और नौकरशाही के बीच निर्णय करने हेतु ईश्वर द्वारा नियुक्त एक मात्र न्यायालय ब्रिटिश लोकतंत्र से अपील की। इस पर श्रोताओं में से कोई चिल्लाया, 'प्रश्न !'

श्री नेहरू एकदम बिगड़ खड़े हुये, अपने सामने की मेज को बुरी तरह पीटा, क्रोध के साथ अपने हाथ के काग़ज़ों को फेंक दिया तथा शीघ्रतापूर्वक चश्मा उतार दिया...... उन्होंने चुनौती दी कि संदेह करने वाला अनादृत आगन्तुक खुले में आये और उनके मन्तव्य को ग़लत साबित करे। वहाँ एकदम गहन सन्नाटा छा गया। फिर किसी ने भी एक शब्द मुंह से नहीं निकाला। वास्तव में इस सम्मेलन में एक मुखर समुदाय ने सरकार को राह पर लाने के लिये निष्क्रिय प्रतिरोध को अपनाने की वकालत के साथ–साथ नेताओं की नज़रबन्दी के विरुद्ध विरोध बनाये रखने पर बल दिया था।

यू0पी0 सरकार के चीफ सेक्रेटरी आर0 बर्न ने भारत सरकार के होम सेक्रेटरी डु बोले को भेजी गई रिपोर्ट में लीग की इलाहाबाद शाखा को 'समर्थ और शक्तिपूर्ण' बताया था।[2]

इस सम्मेलन के दस दिन बाद यहूदी भारत सचिव एडविन सेम्यूल मांटेग्यू ने भारतीय समस्या को सौहार्द्रपूर्ण ढंग से समझ कर घोषणा की– 'महामहिम की सरकार की नीति है कि प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों का सहयोग बढ़े तथा इस दृष्टि से स्वशासित संस्थाओं का क्रमिक विकास हो कि ब्रिटिश साम्राज्य के आंतरिक अंग के

---

1. मालवीय, के0 डी0 – पं0 मोतीलाल नेहरूः हिज लाइफ एण्ड स्पीचेज, पृ0सं0 10

2. होम सेक्रेटरी डुबेले को 17 अगस्त, सन् 1917 ई0 को भेजा गया पत्र (एम0ए0आई0)

रूप में भारत में उत्तरदायी सरकार की क्रमिक परिणति हो।[1] इस घोषणा पर लार्ड कर्जन की स्वीकृति जबरन ले ली गई थी। मार्ले ने भारत में संसदीय प्रणाली आरम्भ करने की तुलना गरम देश में कनाडी गरम कर कोट के प्रयोग से की थी। कुछ समय के लिये तो ऐसा प्रतीत हुआ कि एडविन सेम्युल मांटेग्यू हमारे लिये देवता बन गये। किन्तु बाद में कर्जन की कठोरता और लायड जार्ज की धूर्तता के कारण वे टूट कर पस्त हुये। नरम दलीय भारतीयों ने इस स्थिति में भी तप्त धरती पर एक सुखद पावस की बौछार–सी महसूस की, जिससे राजनैतिक वातावरण में तत्काल एक सहजता आ गई। इस बीच 17 सितम्बर, 1917 ई० को श्रीमती ऐनीबेसेंट को नीलगिरि की पहाड़ियों की जेल से मुक्त कर दिया गया। 5 अक्टूबर को वे इलाहाबाद पहुँचीं। लोकमान्य तिलक, पं० मोतीलाल नेहरू, सरोजनी नायडू और जवाहरलाल नेहरू ने उनका इलाहाबाद स्टेशन पर स्वागत किया। जिस गाड़ी में श्रीमती ऐनीबेसेंट को तिलक और पं० मोतीलाल नेहरू के साथ आनन्द भवन जाना था, उसके घोड़े अलग कर दिये गये और कुछ युवकों का एक समूह उस गाड़ी को होमरूल के ध्वजों, पताकाओं और फूलों की मेहराबों से सज्जित इलाहाबाद की सड़कों से खींच कर ले गया। सारे रास्ते 'वन्देमातरम्' और 'बेसेंट माता की जय' की ध्वनियाँ गूँजती रहीं तथा घरों की छतों पर से फूलों की वर्षा होती रही। जब यह जुलूस इलाहाबाद होमरूल लीग के कार्यालय पहुँचा, तो पं० मोतीलाल नेहरू ने श्रीमती ऐनीबेसेंट को एक अभिनन्दन पत्र भेंट किया, कहा, '.....आपने इस देश के करोड़ों गूंगे, मूक ह्रदयों की आंतरिक आशा–आकांक्षाओं को ह्रदयंगम किया..... ।' श्रीमती ऐनीबेसेंट ने संक्षेप में उत्तर दिया– 'पलैण्डर्स, गैलीपोली, मिस्र और ईराक की धरती भारतीय रक्त से भीगी हुई है। जिस धरती ने गैरी बाण्डी का स्वागत किया, जिस राष्ट्र ने मैज़िनी को शरण दी, वह उन्हीं उद्देश्य हेतु संघर्षरत भारतीयों का स्वागत करेगा– एक स्वतंत्र राज्य के अधीन अवश्य एक स्वतंत्र राष्ट्र मण्डल में हम लोग एक साथ सम्मिलित होंगे, जहाँ भारत पूर्व के सूर्य की चमक के समान चमकेगा।'

जवाहरलाल नेहरू भी पिता के समान ही इस आन्दोलन में

---

1. नन्दा, बी०आर० – मोतीलाल नेहरू, पृष्ठ सं० 87

सक्रिय भाग लेने लग गये थे। इस कारण विश्व में घटित घटनायें और देश में फैली आज़ादी की लहर के विषय में बातचीत करने में उन्हें हार्दिक खुशी मिलती थी। फिर पत्नी श्रीमती कमला नेहरू भी उन्हीं की विचारधारा की मिलीं। उन्होंने पति का कदम—कदम पर साथ दिया। उनके साथ हर प्रकार के कष्ट भी सहन किये। उन्होंने 19 नवम्बर, सन् 1917 ई0 को एक पुत्री को जन्म दिया, जिसका नामकरण इंदिरा प्रियदर्शिनी हुआ।

यह श्रीमती ऐनीबेसेंट के गौरव का युग था। लार्ड पेण्टलैंड ने उनकी विजयिनी यात्रा को अत्यधिक शक्ति प्रदान की थी, जिसके कारण वे मद्रास से नीलगिरी पहाड़ियों की जेल से दिसम्बर में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष पद तक पहुँच गई थीं।[1]

1. श्री शरण, – ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 46, 47

२. नेहरू के राजनैतिक जीवन में गाँधी का आविर्भाव

भारतीय राजनीति के रंगमंच पर जवाहरलाल नेहरू का अभ्युदय हो चुका था। और जवाहरलाल नेहरू ने 1915 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के बम्बई अधिवेशन में गाँधी जी को देखा था। और अगले ही वर्ष लखनऊ काँग्रेस के अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू की मुलाकात गाँधी जी से हुई।[1]

दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के अधिकारों के लिये गाँधी जी द्वारा चलाये गये आन्दोलन से नेहरू जी प्रभावित थे। इस आन्दोलन में गाँधी जी ने प्रवासी भारतीय समुदाय का नेतृत्व किया। यह आन्दोलन एक बड़ी ताकत के विरुद्ध था और विधान मण्डल में उनका कोई प्रतिनिधि भी नहीं था। यूरोपीय लोग उनका आर्थिक शोषण भी करते थे। गाँधी जी के नेतृत्व में उन्होंने अन्यायपूर्ण कानूनों के सामने झुकने से इन्कार कर दिया किन्तु अपने दमनकारियों के विरुद्ध उन्होंने अहिंसा और घृणा का रास्ता नहीं अपनाया। यही था सत्याग्रह— सामाजिक और राजनीतिक शिकायतों को दूर करने की गाँधी जी की तकनीक। सैंकड़ों भारतीय हंसते—हंसते जेल गये, कोड़े खाए तथा अन्य सख्तियों का सामना किया किन्तु गाँधी जी ने अपने आन्दोलन को विवेकहीन बनकर हिंसा में परिवर्तित नहीं होने दिया। दक्षिण—अफ्रीका की सरकार के दमन चक्र के विरुद्ध भारत, ब्रिटेन तथा समस्त विश्व में लोकमत बना। परिणाम स्वरूप दक्षिण—अफ्रीका सरकार गाँधी जी से एक समझौता करने के लिये तैयार हो गई, जिससे भारतीयों की कई प्रमुख माँगें पूरी हुई। इसी दक्षिण—अफ्रीका के सत्याग्रह के लिये जवाहरलाल नेहरू ने इलाहाबाद में चन्दा एकत्र किया था।[2]

यद्यपि गाँधी जी के राजनीतिक दर्शन से जवाहरलाल कुछ हद तक हैरान थे फिर भी जवाहरलाल उनके व्यक्तित्व और व्यावहारिक राजनीतिक समझबूझ से अभिभूत थे। जवाहरलाल गाँधी जी के जमींदारी आन्दोलन से प्रभावित थे जिसका नेतृत्व गाँधी

---

1. गोपाल, एस0— जवाहरलाल नेहरूः एक जीवनी खण्ड—1, पृ0सं0 40
2. नन्दा, बी0आर0 – जवाहरलाल नेहरू, सचित्र जीवनी, पृष्ठ सं0 16, 17

जी ने बिहार में 1917 में किया था। युवा नेहरू को उनकी जो बात सबसे अच्छी लगी वह थी गाँधी जी की शक्ति, भारत की स्वतंत्रता के प्रति उनकी चट्टान सी सुदृढ़ता और वह तरीका जिससे उन्होंने अपने चरित्र–व्यक्तित्व का निर्माण किया था ताकि भारत में राजनीतिक परिवर्तन के प्रभावी तंत्र की तरह स्वयं को ढाल सकें।[1]

यद्यपि गाँधी जी और नेहरू कई विचारों में समानता रखते थे और बहुत से विचारों में असमानता भी रखते थे। नेहरू जी ने जीवन को राजनीति रूपी आभूषण में सजाया परन्तु उसको सजाने और संवारने में गाँधी जी का विशेष योगदान रहा।

---

1. गोपाल, एस0– जवाहरलाल नेहरूः एक जीवनी खण्ड–1, पृ0सं0 40

३. नेहरू जी पर गाँधी का प्रभाव

गाँधी जी ऐसे महापुरुष थे जो सदियों के पश्चात जन्म लेते हैं। लोगों का मानना है कि महात्मा बुद्ध के बाद भारत में जन्मे वे दूसरे महान व्यक्ति थे। उन्होंने भारत का चेहरा ही नहीं मन भी बदल दिया। उन्होंने साधारण व्यक्तियों को देश का नायक व नेता बना दिया। अपने युग के हर व्यक्ति को उन्होंने किसी न किसी रूप में प्रभावित किया, नेहरू परिवार भी उनके प्रभाव से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ। मोतीलाल नेहरू गाँधी जी के बहुत प्रिय मित्र बने और जवाहरलाल उनके सर्वाधिक विश्वस्त शिष्य और सहयोगी बने।[1] "गाँधी जी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानतम नेता के रूप में पहचाने गये। उन्हें भारतवासी आदर से महात्मा मानने लगे। मोतीलाल नेहरू भी गाँधी जी के गहरे प्रभाव में आये। गाँधी जी के प्रभाव के कारण उन्होंने अपना राजसी जीवन छोड़कर सीधी–सीधी जिन्दगी अपनायी लेकिन जवाहरलाल नौजवान थे और चरित्र से बहादुर, निडर, हिम्मती थे। और सत्य के मानने वाले थे। गाँधी जी उन्हें भारत का अनमोल रत्न कहते थे। गाँधी जी और जवाहरलाल में अक्सर विचारों का मतभेद होता था। प्रारम्भ में गाँधी जी के सिद्धान्तों को जवाहरलाल पूरी तरह आत्मसात नहीं कर पाये। वह अहिंसा के सिद्धान्त को नहीं समझ पाये। न वे गाँधी जी के सत्याग्रह करने और कभी–कभी बीच में उसे छोड़ देने के सिद्धान्त समझ सके थे। इसलिये कभी–कभी वह गाँधी जी से विचार भिन्नता के कारण लड़ भी बैठते थे। लेकिन साथ–साथ काम करने व समय बीतने पर वे गाँधी जी को समझ पाये और खूब गहराई से समझ सके।[2]"

वास्तव में गाँधी जी भारत की आत्मा थे। उनके सीधे–साधे ढंग के कामों के पीछे महान शक्ति होती थी। वह भारत की जनता के ह्रदय सम्राट थे। यद्यपि उनका जीवन का ढंग व पद्धति एक सीमा तक कमजोर दिखाई पड़ती थी। फिर भी वे वास्तविक अर्थ में करोड़ों भारतवासियों के प्रतिनिधि थे, उनकी आवाज थे। वे देखने में आधुनिक नहीं थे। पर वे महान क्रांतिकारी थे। भारत के नेताओं में वे एक अकेले व्यक्ति थे जिनके पास कार्यक्रम

---

1. शरद, ओंकार– नेहरू, पृ0सं0 35

2. Ibid, P-35

होते थे। वे सच्चे अर्थों में मार्गदर्शक थे इसके लिये उनकी प्रतिभा और खूबियों से प्रभावित होकर जवाहरलाल उनके अनुयायी और सहयोगी बने। गाँधी जी और जवाहरलाल दोनों एक दूसरे को खूब समझते थे। खूब प्यार और आदर करते थे। साथ–साथ काम करते थे।[1]

"गाँधी जी के प्रभाव के कारण नेहरू जी सादा जीवन व्यतीत करने लगे, सिगरेट पीना छोड़ दिया, शाकाहारी भोजन तथा नियम से गीता का पाठ करना आरम्भ कर दिया– दार्शनिक या धार्मिक दृष्टि से नहीं बल्कि इसलिये कि इसकी बहुतेरी बातों का जवाहरलाल पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिस प्रकार अपना धर्म बदलने वाला कोई नया आदमी बड़े जोश–खरोश से अपने धर्म का पालन करता है ठीक उसी प्रकार।"[2]

---

1. शरद, ओंकार– नेहरू, पृ0सं0 36
2. नन्दा, बी0आर0 – जवाहरलाल नेहरू, सचित्र जीवनी, पृष्ठ सं0 21

४. जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की जाँच समिति में नेहरू

रौलट एक्ट के विरुद्ध गाँधी जी ने 6 अप्रैल, 1919 को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अहिंसात्मक युद्ध शुरू किया था। गाँधी जी ने वाइसराय को लिखा था–

"इस सत्याग्रह अभियान का उद्देश्य राजनीति में क्रांतिकारी परिवर्तन और मनुष्य की नैतिक शक्ति की प्रतिष्ठा करना है।"

इसके साथ नये युग का प्रारम्भ हुआ। गाँधी जी ने लिखा कि "इस दिन सारे हिन्दुस्तान में एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक, चाहे शहर हो या गाँव, पूरी हड़ताल मनाई गई। सचमुच ही यह एक आश्चर्यजनक बात थी।"[1] इस दिन बम्बई में समुद्र के किनारे चौपाटी पर बड़ी भीड़ एकत्र हो गई। गाँधी जी उसी भीड़ में थे। उनके साथ सरोजनी नायडू थीं। गाँधी की वे पुस्तकें, जिन पर सरकार ने प्रतिबंध लगाया हुआ था, वहां खुलेआम बेची गईं। जनता में इसका गहरा प्रभाव पड़ा और सरकार हतप्रभ–सी इस नये आंदोलन को देखती रह गई। कांग्रेस के इस अधिवेशन के लिये अमृतसर का चुनाव क्रांति की ज्वाला को कायम रखने के लिये हुआ था। यद्यपि नये कानून में पुलिस के अधिकार–क्षेत्र को बहुत व्यापक कर दिया गया था तथापि असहयोग आंदोलन की नई परम्परा के लिये पुलिस की बड़ी शक्तियां व अधिकार लुंजपुंज थे क्योंकि इस आंदोलन की बुनियाद नैतिकता, सत्य, अहिंसा आदि मानवीय गुणों पर टिकी हुई थी।

अमृतसर में भी अन्य शहरों की तरह 6 अप्रैल, 1919 का दिन शान्ति से बीत गया– उस दिन वहां भी हड़ताल हुई थी, परन्तु 10 अप्रैल, 1919 को डा0 सत्यपाल तथा डा0 किचलू को अमृतसर से निष्कासन के आदेश जारी किये गये और धर्मशाला में उन्हें बंद कर दिया। इन दोनों नेताओं की रिहाई के लिये भीड़ डिप्टी कमिश्नर की कोठी की ओर चल पड़ी। भीड़ शान्त थी, निहत्थी थी और अनुशासनबद्ध थी। पुलिस ने रेलवे क्रासिंग पर भीड़

---

1. गाँधी, मोहनदास करमचन्द– आत्मकथा, पृ0सं0 563

को रोक लिया। भीड़ रुक गई। परन्तु अचानक पुलिस उस शान्त व धैर्यवान भीड़ पर गोलियों की वर्षा कर उठी। इससे भीड़ का मिजाज बिगड़ गया और वह भी उत्तेजित होकर अंग्रेजों पर टूट पड़ी। उसने नेशनल तथा ऐलाइन्स बैंक को भी तोड़—फोड़ कर नष्ट कर डाला। गोलियों का जवाब भीड़ पत्थर और तोड़—फोड़ से देती रही। लेफ्टिनेंट गवर्नर माइकेल ओडायर निरंकुश शासक था। पंजाब उसी के अधीन था। 11 अप्रैल, 1919 को अमृतसर शहर सेना को सौंप दिया। जनरल डायर ने सेना को मार्गदर्शन दिया। 13 अप्रैल, 1919 को राजनीतिक नेताओं ने एक सार्वजनिक सभा की घोषणा की, जिसमें शाम को साढ़े चार बजे जलियांवाला बाग में इस सभा के आयोजन की सूचना थी। इधर जनरल डायर ने भी यह घोषणा करवा दी कि शहर में यदि सभायें कीं या जुलूस निकाले अथवा हिंसात्मक वारदातें हुईं तो उसका परिणाम बहुत बुरा होगा। जनरल डायर को यह बर्दाश्त नहीं हुआ कि नेतागण जलियांवाला बाग में सार्वजनिक सभा करें। उसने मन—ही—मन यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह इन लोगों को ऐसा सबक सिखाएगा कि वे अनागत में इस तरह की सार्वजनिक सभा करने की सोच भी नहीं सकेंगे।[1] जलियांवाला बाग खुली जगह थी। इस बाग के तीन ओर ऊँची और पक्की इमारतें थीं। उस तक आने—जाने का इतना संकरा मार्ग था जिसमें से कोई बख्तरबंद गाड़ी नहीं गुज़र सकती थी। दूसरी ओर तीन—चार जगहें और थीं जिनमें से व्यक्ति बाग में आते—जाते रहते थे, परन्तु यह जगह बहुत संकरी थी। शाम के साढ़े चार बजे तक शान्तप्रिय और निहत्थी जनता वहां इकट्ठी होने लगी। वहां बीस हजार व्यक्ति एकत्र हो गये थे।[2] हंसराज भीड़ को सम्बोधित कर रहा था कि जनरल डायर पचास अंग्रेज और सौ भारतीय सिपाहियों को लेकर बाग में घुस आया और उसने उस शान्त भीड़ पर अंधाधुंध गोलियों की बौछार का आदेश दे दिया। हण्टर कमीशन के सामने उसने कहा था कि उसने भीड़ को वहां से तितर—बितर हो जाने के आदेश दिया था और तदुपरान्त गोली चलाने का आदेश उसने दिया था। परन्तु उसने यह स्वीकार किया था कि दो—तीन मिनट के बाद उसने गोली चलाने का आदेश दिया था। यह कैसे सम्भव होता कि दो—तीन मिनट में बीस हजार लोगों की भीड़ संकरे रास्तों से तितर—बितर हो जाती। उस

---

1. "He wanted to teach them a lesson so that they might not laugh at him" Dyer's contention

2. डिसआर्डर्स इन्क्वायरी कमेटी रिपोर्ट, पृ0सं0 30

निहत्थी व शान्त भीड़ पर सोलह सौ गोलियां चलाई गईं।[1] वस्तुतया वह तो अमृतसर की जनता को एक सबक सिखाना चाहता था। जलियांवाला बाग से यह भ्रमोद्रेक हो सकता है कि वह हरा–भरा सार्वजनिक बाग होगा। परन्तु ऐसा नहीं था। उस जमीन के अनेक मालिक थे। वहां एक कुआं था और एक समाधि थी। बाग के नाम पर मात्र तीन पेड़ थे। वहां शान्त भीड़ पर दस मिनट तक गोलियां चलती रहीं। हण्टर कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार वहां 1650 गोलियां चलीं। जैसे ही गोलियां खत्म हुईं वैसे ही जनरल डायर शहर से बाहर अपने पड़ाव रामबाग में आ गया। इलाहाबाद की सेवा समिति की सहायता से तैयार की गई मृतकों की सूची से ज्ञात हुआ 379 मारे गये थे। घायलों की संख्या मृतकों से लगभग दुगनी थी। उसके बाद अमृतसर तथा उसके आसपास के इलाकों में मार्शल ला लगा दिया गया। मार्शल ला के समय वहां के निवासियों पर क्या गुजरी, इसका अनुमान अधिकारियों की ओर से प्रसारित आज्ञाओं से सहज लग सकता है। आज्ञायें जो उस समय अधिकारियों ने प्रसारित की थीं, उनमें से कतिपय दृष्टव्य हैं :

1. प्रत्येक भारतीय को चाहिये कि जब अंग्रेज अधिकारी सामने से आयें तो वह उसका अभिवादन करे।
2. जिस बाजार से मिस शैरवुड पर प्रहार हुआ था, वहां से जो गुजरेगा, उसे पेट के बल रेंग कर जाना होगा।
3. शहर के सभी वकीलों को स्पेशल सिपाही बना कर उनसे रात–दिन काम लिया जाता था।
4. सभी अदालतें भंग कर दी गईं। केवल स्पेशल ट्रिब्यूनल स्थापित कर दिये गये, जहां मनमाना कानून था।
5. बेंत मारना, गिरफ्तार कर जेल में डाल देना आदि तो सामान्य बात थी।

इन आज्ञाओं का पालन बड़ी सख्ती के साथ किया गया। यही नहीं, चूहड़खाना, जलालपुर जट्टां, शेखपुरा, नजीराबाद, लायलपुर आदि स्थानों पर भी मार्शल

---

1. पट्टाभिसीतारमैया – द हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ0सं0 164

ला लागू किया गया। मार्शल ला की अमानवीय यातनायें जून तक भोगनी पड़ीं। यह वह समय था जब पंजाब के अधिकांश लोग भूख से व्याकुल थे और उनमें से अनेक प्राणोत्सर्ग कर चुके थे। हरकिशल लाल का हृदय इसे बर्दाश्त नहीं कर सका तो उन्होंने लाहौर में निःशुल्क लंगर खोल दिया। सरकार इससे नाखुश हो गई और उसको काले पानी की सज़ा दे दी। साथ ही उसके चालीस लाख रुपये की सम्पत्ति जब्त कर ली। काँग्रेस ने इस काण्ड की जाँच करने के लिये स्वयं एक समानान्तर कमेटी नियुक्त की। जवाहरलाल इस जाँच कमेटी के सेक्रेटरी नियुक्त किये गये। कमेटी के अन्य सदस्य थे– गाँधी जी, मोतीलाल नेहरू, सी0 आर0 दास, एम0 आर0 जयकर और अब्बास तैयब जी। यह पहला अवसर था जब गाँधी जी जवाहरलाल परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क में आये। जवाहरलाल के लिये गाँधी जी का यह घनिष्ठ साहचर्य शिक्षा देने वाला अनुभव था। इस कमेटी की जाँच के दौरान प्रायः मोतीलाल और गाँधी जी अथवा गाँधी जी तथा कमेटी के अन्य सदस्यों के बीच गम्भीर मतभेद पैदा हो जाते। घनघोर वाद विवाद और तर्क होते पर अन्त में गाँधी जी कमजोर आवाज और सबल तर्क सब के ऊपर छा जाते और वे प्रायः गाँधी जी की बात मान कर विवाद समाप्त करते। गाँधी जी जवाहरलाल और अन्य सदस्यों ने गवाहियों और घातक तर्कपूर्ण ढंग से व्यवस्थित किया और ऐसी रिपोर्ट तैयार की जो नरम होते हुये भी विध्वंसक थी।[1]

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 44

५. दिसम्बर १९१९ का अमृतसर का कॉंग्रेस अधिवेशन और नेहरू

"जलियांवाला बाग, दुर्घटना से उत्पन्न कटुता के वातावरण में कॉंग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अमृतसर में 27 दिसम्बर, 1919 से 31 दिसम्बर, 1919 तक मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन में बालगंगाधर तिलक, स्वामी श्रद्धानन्द, जवाहरलाल नेहरू आदि ने भाग लिया।" नेहरू ने अपने भाषण में जनता का आह्वन करते हुये कहा कि–

पंजाब में ब्रिटिश शासन द्वारा किये गये अत्याचारों की कटु निन्दा की और ब्रिटिश शासन को चेतावनी भी दी थी कि अत्याचार और आतंक आज तक किसी भी राष्ट्र के जीवन को नष्ट नहीं कर पाये हैं। उन्होंने आगे कहा कि हम वैचारिक स्वतंत्रता, कार्य करने की सुविधा, एवं अपने देश के निर्माण करने की स्वतंत्रता चाहते हैं।[1]"

"स्वागत समिति के अध्यक्ष पद की हैसियत से स्वामी श्रद्धानन्द ने हिंदी में अपना वक्तव्य दिया। उन्होंने श्रोताओं को भारत माता के पुत्र तथा पुत्री से सम्बोधित किया। आपने भारतीय सुपुत्रों को जाग्रत रहने का सन्देश दिया और तत्कालीन संस्थिति में उनके कर्तव्यों की ओर भी संकेत किया। यथार्थतः इस अधिवेशन में जैसा कि गाँधी जी ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया था कि कॉंग्रेस के सामने इससे बड़ा कोई प्रस्ताव नहीं था कि अनागत का कार्यक्रम क्या बने। उन्होंने स्पष्ट किया कि उनके मार्ग में हिंसा की कोई गुंजायश नहीं है। वह सत्य के अनुसरण को सर्वोपरि महत्व देते हैं।[2]" ऐसे माहौल में अमृतसर में कॉंग्रेस का अधिवेशन हुआ था। सारा देश अमृतसर में उमड़ पड़ने को तत्पर था। हण्टर कमेटी की रिपोर्ट ने ब्रिटिश सरकार की पोल खोल दी। पंचम जार्ज ने भारतीयों को आश्वासन दिया कि जब से भारत की रक्षा का भार उनके ऊपर आया है, तब से वह उसको पुनीत धरोहर समझते हैं। शीघ्र ही भारतीयों को अपने देश के शासन में भागीदार बनाना ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य है। इस अधिवेशन में मूल प्रस्ताव देशबंधु दास ने प्रस्तुत किया, वह था–

---

1. शर्मा, जगदीश – इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ0सं0 312
2. पट्टाभिसीतारमैया – द हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ0सं0 181, 182

1. यह कॉंग्रेरा अपने गत वर्ष की इस उद्घोषणा की पुनरावृत्ति करती है कि भारत सम्पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के लिये सक्षम है। उसके विरुद्ध जो बातें समझी या कही गई हैं, उन्हें यह कॉंग्रेस नामंजूर करती है।

2. वैध सुधारों के सम्बन्ध में कॉंग्रेस के दिल्ली अधिवेशन में पास किये गये प्रस्तावों पर ही यह कॉंग्रेस दृढ़ है, और उसकी राय है कि सुधार कानून अपूर्ण, असन्तोषजनक एवं निराशाजनक है।

3. यह कॉंग्रेस अनुरोध करती है कि आत्म–निर्णय के सिद्धान्तानुसार भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिये पार्लियामेण्ट को शीघ्र कार्यवाही करनी चाहिये।

इस प्रस्ताव में लोकमान्य तिलक व गाँधी जी ने कतिपय संशोधन सुझाये, जिन्हें स्वीकार कर लिया गया। गाँधी जी चाहते थे कि मांटेगू को धन्यवाद दिया जाये। कॉंग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया।[1] "इस प्रकार अमृतसर का कॉंग्रेस अधिवेशन जिसमें जवाहरलाल नेहरू उपस्थित थे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा। इसी से कॉंग्रेस को अपने भावी रूप को संभालने में सहायता मिली। यह सच था कि इस समय ब्रिटिश सरकार ने पंजाब को भारत के शेष भागों से अलग कर दिया था। वह अलग–थलग –सा पड़ गया था। उस पर मोटा पर्दा डाल दिया था ताकि वाह्य दृष्टि का वह शिकार न हो सके।[2]"

"वस्तुतया जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड ने भारत में मानो आग लगा दी हो, ऐसा अनुभव होने लगा था।" "उप भारत मंत्री सिन्हा ने मांटेगू के आश्वासन को दोहराया पाया कि इतने व्यापक पैमाने पर हुये उपद्रव के कारणों और उन्हें दबाने के लिये किये गये उपायों के बिना कार्य नहीं चल सकता।[3]" इस सबका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि सारे देश में जागृति आ गई और ब्रिटिश सरकार की वास्तविकता सामने आ गई।

---

1. पट्टाभिसीतारमैया – द हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ०सं० 179

2. Nehru, J.L.: An autobiography, P - 42.

3. बनर्जी, बी०ए० – ए नेशन इन दि मेकिंग, पृ०सं० 302

६. किसान आन्दोलन और नेहरू

जून 1920 में दो सौ किसान प्रतापगढ़ के देहात से पचास मील पैदल चलकर इस इरादे से इलाहाबाद आए कि वे अपने दुःखों और मुसीबतों की ओर वहाँ के खास–खास राजनैतिक नेताओं का ध्यान आकर्षित करें। उनके नेता थे बाबा रामचन्द्र। वे यमुना के किनारे पड़ाव डाले हुये थे। जवाहरलाल नेहरू को इससे पूर्व यह बिल्कुल भी पता नहीं था कि कारखानों में काम करने वाले और खेतों में काम करने वाले श्रमिक किन स्थितियों में जी रहे हैं। वे तो केवल इतना ही जानते थे कि गरीबी के कारण उनके दुःख भयंकर हैं। वे सोचा करते थे कि राजनैतिक दृष्टि से देश स्वतंत्र हो जाये, तो उनका पहला लक्ष्य यह होगा कि इस ग़रीबी की समस्या का समाधान करना। किन्तु उन्हें प्रथम सीढ़ी तो राजनैतिक स्वतंत्रता ही दिखाई दी, जिसमें मध्यम वर्ग की प्रधानता हुए बिना नहीं रह सकती। वे गाँधी जी के चम्पारन और खेड़ा के किसान आंदोलन के बाद किसानों के प्रश्न पर अधिक ध्यान देने लगे थे। साथ ही उनके मन में असहयोग की भावना जड़ पकड़ती जा रही थी। जवाहरलाल नेहरू प्रतापगढ़ के किसानों के विषय में सुन कर अपने कुछ मित्रों के साथ उनके पड़ाव पर मिलने के लिये गये। उन्होंने बताया कि किस प्रकार ताल्लुकेदार अत्याचारों के बल पर वसूली करते हैं, कैसा उनका अमानवीय व्यवहार है और कैसी उनकी असह्य स्थिति हो गई है। उन्होंने तरुण जवाहरलाल नेहरू से प्रार्थना की कि आप हमारे क्षेत्र में आएँ और स्थिति को स्वयं देखें। वे भयभीत थे कि ताल्लुकेदार उनके इलाहाबाद आने पर अवश्य बहुत बिगड़ेंगे और सम्भव है कि वे इस बात का बदला भी लें। वे चाहते थे कि उनकी हिफ़ाजत के लिये नेहरू जी उनके साथ रहें। वे अस्वीकृति के लिये किसी रूप में भी तैयार नहीं थे। कुछ किसान तो उनसे बुरी तरह लिपट गये। विवश होकर जवाहरलाल नेहरू को वायदा करना पड़ा कि वे एक–दो दिन बाद अवश्य पहुँचेंगे।[1]

अपने वायदे के अनुसार जवाहरलाल नेहरू कुछ साथियों के साथ अवध के उन गाँवों में छोटी मोटर में गये थे। वे तीन दिन तक उन गाँवों में घूमे, किसानों

---

1. श्री शरण, – ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 60

के बीच बैठ कर ही खाया—पिया, उन्हीं के साथ कच्चे झोंपड़ों में रहे और घंटों उनसे बातचीत की और छोटी—बड़ी सभाओं में भाषण भी दिये। उनके आगमन पर किसानों में इतना उत्साह था कि सैकड़ों ने रात—रात भर काम करके खेतों के रास्ते कच्ची सड़क तैयार की ताकि उनकी मोटर ठेठ दूर—दूर के गाँवों में जा सके। अक्सर कच्ची सड़क पर मोटर अड़ जाती तो बीसों किसान खुशी—खुशी दौड़ कर उसे उठाते। अन्ततः उन्हें मोटर छोड़ देनी पड़ी और अधिकांश यात्रा पैदल ही तय करनी पड़ी। पहली बार जवाहरलाल नेहरू इंग्लैंड से लौटने के बाद जून की प्रचण्ड गरमी में कश्मीर, शिमला अथवा मंसूरी को छोड़ कर प्रतापगढ़ के ग्रामीण क्षेत्र में सिर पर गीला तौलिया डाले धूल और गड्ढों भरी सड़कों पर पैदल चल रहे थे। इलाहाबाद के सबसे बड़े घराने के शिक्षित युवक को अपने बीच पाकर किसान फूले नहीं समा रहे थे। जहाँ कहीं भी वे गये, उनके साथ पुलिस और गुप्तचर तथा लखनऊ के युवा डिप्टी कलेक्टर रहते थे। वे ऐसा महसूस करते थे कि उनके साथ पैदल चलने पर अवश्य ये कष्ट अनुभव करते थे। थकान के मारे वे लोग उनसे उकता भी गए थे।

जून का महीना, वर्षा के पूर्व उमस से भरा वैसे ही होता है। फिर ऊपर से तपता सूर्य बदन को झुलसाने के लिए काफी था। सूर्य की तेज किरणें आँखों को परेशान करती थीं[1]। जवाहरलाल नेहरू को भी इतनी तेज़ गरमी में पैदल चलने की आदत नहीं थी, पर उनकी बातों में व्यस्त रहने के कारण अधिक महसूस नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि उनके गाँव राजनैतिक नेताओं की घिसी—पिटी राहों से दूर थे। अधिकांश गाँवों में न तो डाकघर था, न रेलवे स्टेशन। सच पूछो तो उनका अस्तित्व समाचार पत्रों अथवा राजनीतिज्ञों के ज्ञान क्षेत्र से दूर था। आनन्द भवन लौटने पर जब उन्होंने दर्पण में देखा तो पता चला कि उनके चेहरे का रंग धूप में फिरने के कारण कितना पक्का हो गया था। उनके लिये यह दौरा शिक्षाप्रद अनुभव साबित हुआ। किसानों के प्रेम और कृतज्ञता भरे व्यवहार ने उनके अपने आत्मसंशय को खत्म कर दिया था। वे इस बात से भी खुश थे कि उनमें मजबूत व्यक्तियों के समान धूप को सहन करने की क्षमता आ गई है। अब वे सख्त से सख्त गरमी और कड़े से कड़े जाड़े को सहन

---

1. Ibid, P-61

कर सकते थे। उनकी झेंप जाती रही थी और सभाओं में बोलना आ गया था। उनकी भाषा और भाव इतने सरल न होते थे कि ग्रामीण उन्हें ग्रहण कर सकें; फिर भी उनकी सभाओं में भारी भीड़ होती थी। प्रतापगढ़ में अपने पुत्र जवाहरलाल नेहरू के साहसिक कार्यों को सुनकर पं० मोतीलाल नेहरू का दिल बाँसों उछलने लगा था। उन्होंने आरा से जवाहरलाल को पत्र लिखा था,'......यदि प्रतापगढ़ के अन्य प्रान्तों के क्षेत्रों में इस के तरह दौरों की और व्यवस्था की जा सके, तो प्रतापगढ़ के राजा बहादुर के स्थान पर एक शुद्ध राष्ट्रवादी के कौंसिल में पहुँचने का कुछ संयोग बन जाएगा।[1]

मगर जवाहरलाल नेहरू को तो इन दिनों के अभियान ने ऐसा अद्वितीय पुरस्कार दिया था, जिसकी उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं थी। उनका मंच—भय का अंत हो गया। वे देश की नंगी—भूखी जनता के स्वरूप को देख पाए और जनप्रिय बन गये। अब वे किसानों के मसीहा थे। 15 जून को एक मास बाद ही जवाहरलाल नेहरू को दिया गया निर्वासन दंड बिना शर्त ही वापस ले लिया गया था। वे माता और पत्नी से मिलने मसूरी गये; मगर उनका मन फिर गाँवों के दौरों के लिये बेचैन था। वहाँ से लौटने पर फिर वे गाँवों की ओर निकल गये। तब उन्होंने देखा कि किसान आन्दोलन देश में ताकत पकड़ता जा रहा है। उन भूखे—नंगे किसानों में आत्म विश्वास घर करता जा रहा था। जिसके बल पर वे सिर ऊँचा करके और छाती तान कर चलने लग गये थे। ताल्लुकेदारों, कारिन्दों और पुलिस का आतंक उनके मन में कम हो चला था। किसानों में चेतना आ गई थी। किसी किसान भाई का खेत बेदखल होने पर कोई अन्य किसान उसे लेने के लिये आगे नहीं आता था। जमींदारों के लठैत जो उनकी चमड़ी उधेड़ा करते थे और कानून के विरुद्ध उनसे बेगार और लगान वसूला करते थे, वह बहुत ही कम हो गया था। जहाँ कहीं भी कोई ज्यादती होती, तो तत्काल उसकी रिपोर्ट होती और छानबीन कराने की पूरी कोशिश की जाती। ताल्लुकेदार घबरा कर अपनी रक्षा का उपाय सोचने को विवश हो गये थे और प्रान्तीय सरकार ने अवध काश्तकारी क़ानून में सुधार लाने का वचन दे दिया था।[2]

---

1. श्री शरण, — "महामानव नेहरू", पृष्ठ सं० 61, 62
2. Ibid, P-62

७. अहिंसक असहयोग आन्दोलन और नेहरू

उन दिनों पंजाब और ख़िलाफ़त सम्बन्धी अन्यायों की चर्चा तूल पकड़ रही थी। उन्हें दूर करने के लिये असहयोग आन्दोलन का सहारा लेना था। इस अमोघ शस्त्र के प्रश्न पर निर्णय देने के लिये सितम्बर, सन् 1920 ई0 में कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का अधिवेशन लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में हुआ। लाला लाजपतराय एक अर्से के बाद अमेरिका से लौटे थे। उन्हें असहयोग की यह नई योजना पसन्द नहीं थी और उन्होंने उसका विरोध भी किया था। भारत की राजनीति में वह आमतौर पर गरम दल के माने जाते थे, किन्तु उनकी साधारण जीवन दृष्टि निश्चित रूप से वैध और माडरेट थी।

इस विरोध में लाला लाजपतराय अकेले नहीं थे अपितु उनके साथ मालवीय, सी0 आर0 दास आदि प्रभावशाली कांग्रेसी नेताओं का जत्था था। इन सभी पुराने महारथियों ने गाँधी जी के असहयोग प्रस्ताव का विरोध किया था। इस प्रकार इस अधिवेशन में गाँधी जी की स्थिति दयनीय हो गई थी। उस समय पुरानी पीढ़ी के बड़े–बड़े नेताओं में जवाहरलाल नेहरू के पिता ही ऐसे थे, जो गाँधी जी के सबल पक्षधर थे। उन्होंने ऐसी नाजुक स्थिति में उनका साथ दिया। 'विषय समिति' में लम्बी बहसें हुई; विधान सभाओं के बहिष्कार का निर्णायक प्रस्ताव केवल सात वोटों के छोटे से बहुमत से पास हो सका। काँग्रेस की अगली पँक्ति के नेताओं में एक मात्र मोतीलाल ही ऐसे थे, जिन्होंने कलकत्ता काँग्रेस में गाँधी जी का समर्थन किया था। फलतः गाँधी जी और वी0 जी0 पटेल के साथ तीन सदस्यों की एक उपसमिति के वे सदस्य बनाये गये। एक उपसमिति ने खिताबों और अवैतनिक पदों, सरकारी समारोहों और दरबारों, सरकारी अथवा सरकार से सहायता प्राप्त विद्यालयों और महाविद्यालयों, न्यायालयों एवं विधान सभाओं तथा उन सबसे ऊपर विदेशी माल के बहिष्कार आदि असहयोग आन्दोलन का विवरण निश्चित किया[1]। कलकत्ता अधिवेशन के बाद कुछ पुराने नेता काँग्रेस से कट गये, जिनमें एक प्रसिद्ध जनप्रिय नेता थे जिन्ना। जिन्हें सरोजनी नायडू ने 'हिन्दू–मुस्लिम एकता का

---

1. पट्टाभिसीतारमैया – द हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ0सं0 207

राजदूत' कहा था। उन्हीं के प्रयास से पिछले दिनों में मुस्लिम लीग कॉंग्रेस के कुछ समीप आ पाई थी। मगर कॉंग्रेस का यह नया रूप उनकी प्रकृति से मेल नहीं खा रहा था। कॉंग्रेस से अलग होकर वे सम्प्रदायवादी मुसलमानों मे मिल गये।

उधर पं० मोतीलाल नेहरू ने इस अधिवेशन के तुरन्त बाद ही यू०पी० कौंसिल से त्यागपत्र दे दिया और घोषणा की कि वे सुधारी हुई विधान सभाओं का चुनाव नहीं लड़ेंगे। उन्होंने अपनी चली चलायी वकालत का अन्त कर दिया, अपनी छोटी पुत्री कृष्णा को उस विद्यालय से हटा लिया, जिसमें कि उसने कुछ दिन पूर्व ही प्रवेश लिया था। अपने घोड़े, गाड़ियाँ, कुत्ते बहुमूल्य स्फटिक पात्र और चीनी मिट्टी के बर्तन जो विदेशी थे, बेच दिये गये। इस प्रकार विलासिता में डूबे आनन्द भवन में जीवन का एक आकस्मिक परिवर्तन आ गया। दो भोजनालय कम करके एक कर दिया गया। मदिरा का भण्डार तत्काल खत्म कर दिया गया। सेवकों की छंटनी की गई।

अब तक कॉंग्रेस पर गाँधी जी का पूर्ण अधिकार हो गया था। उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि, धैर्य और नम्रता के द्वारा भारत सरकार की आशाओं पर पानी फेर दिया। उन्होंने अपने गुणों से आलोचकों को भी वश में कर लिया। कॉंग्रेस के मूल सिद्धान्त में परिवर्तन सम्भव हुआ, उसके संविधान में संशोधन किया गया और उसे 'सम्भ्रान्त लोगों की तीन दिनों की पिकनिक' से बदल कर एक ऐसी व्यापक और संघर्षशील संस्था का रूप दे दिया, जिसका जनता के साथ पूरा सम्पर्क रहे।

जवाहरलाल नेहरू ने पहले ही वकालत से किनारा कर लिया था। अब पं० मोतीलाल नेहरू भी अपना पूरा समय राजनीति में ही देने लग गये थे। वे कॉंग्रेस की राष्ट्रीयकारिणी की कार्यसमिति के सदस्य निर्वाचित हुये और सन् 1921 ई० के लिये उसके तीन प्रधानमंत्रियों में से वे एक चुने गये थे। अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी का कार्यालय आनन्द भवन में ही स्थित था। अतः यह अनिवार्य था कि काम भी उनको ही सबसे अधिक करना पड़ता था। उन्होंने इन कार्यों में वही तत्परता, वही ब्यौरों पर ध्यान देने की वृत्ति और वही तगड़ी सूझ–बूझ दर्शायी, जिसके कारण वे इलाहाबाद के वकील तबके के सिरमौर बन गये थे। कॉंग्रेस के प्रधानमंत्री के रूप में उनका मतभेद उस वर्ष के अध्यक्ष सी० विजयराघवाचार्याद से हुआ जो

एक प्रसिद्ध अधिवक्ता और दक्षिण भारत के काँग्रेसी नेता थे और जिनका दृष्टिकोंण असहयोग के विरोध में था। उन्होंने इस विरोधी नेता की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया था, जिसकी शिकायत गाँधी जी से इन शब्दों में की गई थी, 'मैं उस अपमानजनक स्थिति को बहुत अधिक गहराई के साथ महसूस कर रहा हूँ, जिसमें आवश्यकता से अधिक उत्साही पंडित जी ने, आपकी छत्रछाया में मुझे डाल दिया है।'

असहयोग आन्दोलन का ज्वार आनन्द भवन के परिवार को पूर्णतया डुबो चुका था। श्रीमती स्वरूप रानी और श्रीमती कमला नेहरू सबसे अधिक इससे प्रभावित हुई थीं। स्वरूप और कृष्णा शाकाहारी हो गई थीं। पं० मोतीलाल नेहरू ने मदिरा को त्याग दिया था और वे अक्सर सर एडविन आर्नल्ड कृत गीता के अनुवाद को पढ़ा करते थे। जवाहरलाल नेहरू भी धार्मिक विचारों के इतने समीप आ गये थे, जितना कि शैशवकाल से लेकर उस समय तक पहले कभी नहीं आए थे। जवाहरलाल के शब्दों में.....'1921 में मानो एक क़िस्म के नशे में मतवाले हो रहे थे। हमारे जोश, आशावाद और उछलते हुये उत्साह का ठिकाना न था। हमें ऐसा आनन्द और सुख का स्वाद आता था जैसा किसी शुभ काम के लिये धर्म युद्ध करने वाले को होता है। हमारे मन में न शंकाओं के लिए जगह थी, न हिचक के लिये। हमें अपना रास्ता अपने सामने बिल्कुल साफ दिखाई देता था और हम आगे बढ़ते चले जाते थे, दूसरों के उत्साह से उत्साहित होते तथा औरों को आगे बढ़ाते थे। हमने जी—जान लगाकर काम करने में कोई बात उठा न रखी। इतनी कड़ी मेहनत हमने कभी न की थी; क्योंकि हम जानते थे कि सरकार से मुक़ाबला शीघ्र ही होने वाला है और सरकार हमें उठाकर अलग कर दे, इससे पहले हम ज्यादा से ज्यादा काम कर डालना चाहते थे।[1]' वास्तव में उस समय जवाहरलाल और उनके साथियों में आज़ादी के गर्व का भाव आ गया था। सफलता की सोपान पर वे चढ़ सकते हैं, ऐसा आभास उन्हें होने लगा था। अब जवाहरलाल वही काम करते थे जो वे मानते थे और महसूस करते थे। जेल जाने का जवाहरलाल को भय नहीं रह गया था। जवाहरलाल जहाँ भी जाते, वहीं बेशुमार भेदियों और गुप्तचरों से घिरा पाते थे। उन्हें ऐसा लगने लगा था कि देश की

---

1. नेहरू, जवाहरलाल— मेरी कहानी, पृ०सं० 56

स्वतंत्रता अति निकट आती जा रही है और उनमें एक नैतिक उच्चता का भाव पैदा होता जा रहा है तथा उनके साध्य और साधन दोनों ही उनके विरोधियों के मुकाबले में अच्छे और ऊँचे हैं। जवाहरलाल को गाँधी जी पर और उनके बताए अप्रतिम उपाय पर गर्व था और कभी—कभी तो वे स्वयं को सत्पुरुष मानने का दावा करने लगते थे। इससे जवाहरलाल को आत्म—संतोष और शांति मिलती थी।

असहयोग आन्दोलन जैसे—जैसे जोश पकड़ता जा रहा था, वैसे—वैसे अधिकारी वर्ग कुंठित होता जा रहा था। इस नई स्थिति में जवाहरलाल की बहन स्वरूप की शादी की तिथि 10 मई, 1921 निश्चित की गई। यह शादी राजकोट के रूपवान बैरिस्टर, विद्वान् रणजीत पंडित के साथ इलाहाबाद में होनी थी। यह तिथि पंचांग से हिसाब लगाकर निश्चित की गई थी। इस शुभावसर पर गाँधी जी और बहुत से प्रमुख काँग्रेसी जिनमें अलीबंधु भी शामिल थे, आमंत्रित किये गये थे। उनकी सुविधा के लिये, उन्हीं दिनों काँग्रेस कार्य समिति की एक बैठक भी इलाहाबाद में बुला ली गई थी। इलाहाबाद के काँग्रेसियों ने बाहर से आने वाले प्रसिद्ध नेताओं की उपस्थिति से लाभान्वित होना चाहा और बड़े पैमाने पर एक प्रांतीय काँग्रेस का आयोजन किया। उन्हें आशा थी कि आस—पास के किसान उसमें भाग लेने के लिए बहुत बड़ी संख्या में आएँगे।[1] इन राजनैतिक सभाओं के कारण इलाहाबाद में विशेष चहल—पहल थी और उत्तेजना का वातावरण बना हुआ था। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, 'एक दिन मुझे अपने एक बैरिस्टर मित्र से पता चला कि अंग्रेज लोग बिल्कुल घबरा गये हैं और वे शहर में एक आकस्मिक उपद्रव की आशंका कर रहे हैं। उन्हें अपने भारतीय नौकरों पर विश्वास नहीं होता था और वे अपनी जेबों में रिवाल्वर लिये फिरते थे। प्राईवेट तौर पर तो यहां तक कहा जाता था कि इलाहाबाद के किले को इस बात के लिये तैयार रखा गया है कि ज़रूरत पड़ने पर अंग्रेज लोग भागकर वहाँ चले जायें। मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ और मैं समझ नहीं सका कि किसी को इलाहाबाद जैसे सुप्त और शांत शहर में एकाएक उपद्रव की सम्भावना की कल्पना क्यों हुई और वह भी एक ऐसे समय में जबकि अहिंसा का एक देवदूत ही वहाँ आने वाला था। कहा जाता

---

1. श्री शरण, — "महामानव नेहरू", पृष्ठ सं0 65, 66

था कि 10 मई जो कि संयोगवश मेरी बहन की शादी के लिये तय हुई थी, सन् 1857 में मेरठ में आरम्भ हुई ग़दर की वार्षिक तिथि है और इलाहाबाद में मनायी जायेगी।'[1] पुत्री के विवाह के कुछ दिनों बाद पं0 मोतीलाल नेहरू दमे का उपचार कराने हेतु अल्मोड़ा गये। वहाँ पर वे अपने भतीजे श्रीधर नेहरू के पास ठहरे, जो आई0 सी0 एस0 के एक अधिकारी थे। वहाँ पर जनता ने हृदय से स्वागत किया। अब वे भी गाँधी जी के समान ही जनप्रिय बन चुके थे।

मई, सन् 1921 ई0 में गाँधी जी लार्ड रीडिंग के साथ भेंट करने के लिये शिमला गये। तभी इस बात की घोषणा की गई कि गाँधी जी ख़िलाफ़त के नेता मुहम्मद अली को इस बात को मनाने के लिये तैयार हो गये हैं कि वह अपनी तकरीर में से ऐसे कुछ अंश हटा दें, जिनके विषय में समझा जाता था कि वे हिंसा का प्रसार करते हैं। इस सम्बन्ध में जो सरकारी विज्ञप्ति निकाली गई, वह गाँधी जी के दृष्टिकोंण के साथ न्याय नहीं करती थी और इस बातचीत का रूप कुछ ऐसा गोपनीय था कि गाँधी जी अपनी बात को स्पष्ट रूप में न कह सके। फलतः जवाहरलाल नेहरू के पिता ने 3 जून, सन् 1921 ई0 को गाँधी जी को आदेश भरा पत्र लिखा– 'हमारे सामने बग़ैर किसी शक के यह सच्चाई आई है कि असहयोग का नेता भारत सरकार के साथ गठबंधन कर चुका है और उसने अली बंधुओं के खिलाफ क़ानूनी कार्रवाई को मुलतवी करा दिया है– उन्हें इस बात के लिये राजी करके कि वे सार्वजनिक रूप से क्षमा माँगें और शर्तनामा लिख दें...इससे कई अहम मसले उभरते हैं, जिनका असर हमारे सारे आन्दोलन पर पड़ेगा। बल्कि मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि असहयोग के सारे उसूलों को ही छोड़ दिया गया है।'[2]

उधर वाइसराय ने अपने पुत्र को खुश होकर यह पत्र लिखा था कि यदि मुहम्मद अली और गाँधी जी के मध्य दरार पड़ जाये, तो इसका मतलब यह होगा कि हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य की खाई पर बनाया गया पुल टूट गया है। वाइसराय का ऐसा समझना भ्रम मात्र ही था, क्योंकि गाँधी जी के कार्यों का वास्तविक महत्व समझने में न

---

1. नेहरू, जवाहरलाल– राष्ट्रपिता, पृ0सं0 38, 39

2. नन्दा, बी0आर0 – मोतीलाल नेहरू, पृष्ठ सं0 126

केवल उनके अनुयायी अपितु उनके विरोधी भी असमर्थ रहे थे। वे इस बात को न समझ पाये थे कि सत्याग्रह मित्र और शत्रु अथवा शांति और संघर्ष में कोई भेदभाव नहीं करता। उधर जवाहरलाल नेहरू और उनके साथियों का असहयोग आन्दोलन के प्रति उत्साह बढ़ता जा रहा था। वे ऐसा महसूस करने लग गये थे कि आत्मावलम्बन और निर्भयता के भावों से देश में अंग्रेजी शासन का दबदबा कुछ क्षीण होता जा रहा है। अंग्रेजों के दमन से असहयोग आन्दोलन दबने की बजाये उग्र रूप धारण करता जा रहा था। फलतः अंग्रेजी सरकार काफी देर तक बड़े—बड़े नेताओं पर हाथ डालने से हिचकती रही थी। वह इसके नतीज़े से अनभिज्ञ थी। वह इस दुविधा में भी थी कि भारतीय सैनिकों पर विश्वास किया जाये अथवा नहीं। पुलिस उनके आदेशों का पालन करेगी अथवा नहीं।

वास्तव में असहयोग आन्दोलन जवाहरलाल नेहरू के जीवन में नया मोड़ ले आया था। उसने जवाहरलाल नेहरू को क़ौमी आज़ादी का ध्येय, निम्न श्रेणी के लोगों के शोषण का अन्त कर देना तथा ऐसे साधन जो उनके नैतिक भावों के अनुकूल थे, प्रदान किये थे। वे भगवद् गीता के आध्यात्मिक भाग को न समझते हुये भी उन श्लोकों को पढ़ना पसन्द करते थे जो गाँधी जी के आश्रम में सांध्यकालीन सभा में पढ़े जाते थे, जिनमें यह बतलाया गया था कि मानव को कैसा होना चाहिये, शांत, स्थिर, गम्भीर, अचल, निष्काम भाव से कर्म करने वाला और फल के विषय में अनासक्त। जवाहरलाल स्वयं बहुत शांत स्वभाव और अनासक्त नहीं थे, इसीलिये कदाचित् यह आदर्श जवाहरलाल को अच्छा लगा। असहयोग आन्दोलन में दिलोजान से जुटने के कारण जवाहरलाल पारिवारिक मोह से दूर हटते जा रहे थे। कार्यालय और कमेटी की बैठकें तथा लोगों की भीड़ ही उनका घर बनकर रह गई थीं। इस स्थिति में पत्नी श्रीमती कमला नेहरू ने पति के प्रति विलक्षण धैर्य एवं सहनशीलता का परिचय दिया था। जवाहरलाल कोसों पैदल चलकर दूर—दूर के गाँवों में जाते और किसानों की सभाओं में भाषण दिया करते थे। जवाहरलाल का रोम—रोम जनता की सामूहिक भावना का और उसे प्रभावित करने की शक्ति का अनुभव करने लग गया था। वे भीड़ की मनोभावना और नागरिकों तथा कृषकों के अंतर को समझने लग गये थे।

तभी लार्ड रीडिंग वाइसराय ने असहयोग आन्दोलन को दबाने

के उद्देश्य से काँग्रेस कार्यकर्ताओं की व्यक्तिगत गिरफ्तारियाँ और सजायें आरम्भ कर दीं। सितम्बर सन् 1921 ई0 में खिलाफत के नेताओं में सबसे प्रमुख अली बंधुओं को ब्रिटिश हिन्दुस्तानी फ़ौज में असन्तोष पैदा करने के अभियोग में बंदी बना लिया गया। तभी गाँधी जी के नेतृत्व में 45 भारतीय नेताओं ने एक घोषणा पत्र निकाला, '....यह बात हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के विरुद्ध है कि कोई भी भारतीय उस सरकार में नागरिक कर्मचारी और उससे भी अधिक सैनिक के रूप में कार्य करें जिसने भारत को आर्थिक, नैतिक और राजनैतिक दृष्टि से गर्त में धकेल दिया है।' इस घोषणा पत्र पर पं0 मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू ने हस्ताक्षर किये थे। जवाहरलाल नेहरू के हस्ताक्षर हिन्दी में थे।

अंग्रेजी सरकार के लिये यह खुली चुनौती थी, मगर नवम्बर 1921 ई0 में प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन के कारण वह कोई क़दम उठाना नहीं चाहती थी। काँग्रेस ने भी उनके आगमन के सम्बन्ध में की जाने वाली सारी कार्रवाइयों का बहिष्कार करने की घोषणा कर दी थी। 24 नवम्बर, सन् 1921 ई0 को वाइसराय ने विदेश मंत्री के पास यह तार भेजा —'यह बहुत आवश्यक है कि हम अधिक तेज़ी और बड़े पैमाने पर कार्रवाई करें....हम स्थानीय सरकारों को यह आश्वस्त कर रहे हैं कि यदि पुलिस अथवा सेना को गोली चलाने पर विवश होना पड़े, तो हम उन्हें पूरी मदद देंगे.... हम उन्हें यह सूचित कर रहे हैं कि यदि क़ानून की रक्षा और सरकार के प्रति आदर की दृष्टि से किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, बंदी बनाना और दंडित करना, वे आवश्यक समझें, तो ऐसा करने में तनिक भी न हिचकिचायें। 'फलतः बंगाल में काँग्रेस के स्वयं सेवक ग़ैर क़ानूनी करार दे दिये गये और फिर उत्तर प्रदेश के लिये भी ऐसी घोषणा प्रसारित कर दी गई। इस पर देशबंधुदास ने बंगाल को एक बड़ा जोशीला संदेश दिया, '....मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई हैं और मेरी सारी देह लोहे की वज़नी जंजीरों से जकड़ी हुई है। यह है गुलामी की वेदना और मंत्रणा। सारा हिन्दुस्तान एक बड़ा जेलखाना हो गया है। काँग्रेस का काम हर हालत में जारी रहना चाहिये— इसकी परवाह नहीं, कि मैं पकड़ लिया जाऊँ या न पकड़ा जाऊँ; इसकी परवाह नहीं कि मैं मर जाऊँ या ज़िन्दा रहूँ।'[1]

---

1. नेहरू, जवाहरलाल— मेरी कहानी, पृ0सं0 60

जवाहरलाल नेहरू और अन्य कॉंग्रेसियों ने उत्तर प्रदेश में भी अंग्रेजी सरकार की चुनौती स्वीकार कर ली। जवाहरलाल ने न केवल यही ऐलान किया कि उनका स्वयं सेवक संगठन क़ायम रहेगा, अपितु दैनिक पत्रों में अपने स्वयं सेवकों की नामावलियां भी छपवा दीं। पहली तालिका में सबसे ऊपर पं0 मोतीलाल नेहरू का नाम था। वास्तव में वे स्वयं सेवक नहीं थे, किन्तु सरकारी आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण उन्होंने अपना नाम दे दिया था।

दिसम्बर के आरम्भ में, उत्तर प्रदेश में प्रिंस ऑफ वेल्स के पहुँचने से पूर्व ही सामूहिक गिरफ्तारियाँ आरम्भ हो गईं। कॉंग्रेस के बड़े–बड़े नेता बंदी बना लिये गये। पंजाब में लाला लाजपतराय गिरफ्तार कर लिये गये। 5 दिसम्बर को इलाहाबाद में बहुत से प्रमुख असहयोगी नेता सरकारी मेहमान बना लिये गये। इससे जवाहरलाल नेहरू इस निश्चय पर पहुँच गये थे कि अब कॉंग्रेस और अंग्रेजी सरकार का अनिवार्य संघर्ष होने वाला है। अभी तक बंदीगृह उनके लिये एक अपरिचित स्थान था और वहाँ पर पहुँचना एक नई बात थी। 6 दिसम्बर को तीसरे पहर जब अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के कार्यालय सचिव श्री एम0 एस0 गाडबोल आनन्द भवन में पं0 मोतीलाल नेहरू को कुछ कागज–पत्र दिखा रहे थे और जवाहरलाल नेहरू बकाया काम को निपटाने में जुटे थे, तभी एक क्लर्क कुछ उत्तेजित–सा वहाँ आया, कहा कि पुलिस तलाशी का वारंट लेकर आई है और कार्यालय भवन को घेर रही है। सुनकर जवाहरलाल तनिक उत्तेजित हो गये; क्योंकि उनके लिये भी, इस प्रकार की यह पहली बात थी; किन्तु दृढ़, शांत और निश्चिन्त प्रतीत होने तथा पुलिस के आगमन से प्रभावित न होने की अभिलाषा प्रबल थी। इसलिये उन्होंने क्लर्क से कहा– '...जब पुलिस अधिकारी कार्यालय कक्षों की तलाशी लें तो तुम उनके साथ–साथ रहो और शेष कर्मचारियों से अपना–अपना काम सदा की तरह करने और पुलिस की ओर ध्यान न देने के लिये कहो।' क्लर्क के जाने के कुछ देर बाद जवाहरलाल नेहरू के एक मित्र व साथी कार्यकर्ता, जो कार्यालय के बाहर ही बंदी बना लिये गये थे, एक सिपाही के साथ उनसे मिलने के लिये आये। वे उस मित्र के साथ रुखाई से पेश आये और कहा कि जब तक वे अपनी चिट्ठी पूरी नहीं कर लेते, तब तक ठहरे रहें। तभी उन्हें नगर के अन्य कॉंग्रेसी लोगों की गिरफ्तारी की सूचना मिली। तलाशी के कुछ घंटे

बाद ही पुलिस अधिकारी ने पं0 मोतीलाल नेहरू से दबे हुये शब्दों में कहा कि आप और आपके बेटे जवाहरलाल नेहरू की गिरफ्तारी का वारंट है। इतना सुनकर पं0 मोतीलाल नेहरू बोले, 'वाह, मैं उसके लिये तैयार हूँ; लेकिन आपने पहले ही मुझे पूरी बात क्यों नहीं बतायी थी।' इतना कहकर पं0 मोतीलाल नेहरू अपने पुत्र जवाहरलाल के साथ पुलिस की मोटर में बैठ गये। तब उन्होंने अपने देशवासियों के नाम विदा संदेश लिखाया— 'भरसक आपकी सेवा करने के बाद, यह मेरी खुशकिस्मती है कि आज मैं अपनी मातृभूमि की सेवा में, अपने इकलौते लड़के जवाहरलाल के साथ जेल जा रहा हूँ।'[1] एक समाचार पत्र के संवाददाता ने श्रीमती स्वरूप रानी से साक्षात्कार लिया और उन्होंने यह स्वीकारा कि उनके दिल में जुदाई की तकलीफ बिल्कुल ही न हो, ऐसा तो नहीं, फिर भी उन्हें यह गौरव अनुभव करते हुये बहुत खुशी हो रही है कि मेरे प्रिय पति पं0 मोतीलाल नेहरू और मेरा इकलौता बेटा जवाहरलाल नेहरू जेल जा रहे हैं। ....महात्मा गाँधी ने एक बार मुझे यह बतलाया था कि दुनियां में और लोगों के भी इकलौते बेटे होते हैं।[2] पुलिस की मोटर पं0 मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू को लेकर जैसे ही आनन्द भवन से बाहर निकली, वयोवृद्धा और दुर्बल श्रीमती स्वरूप रानी की आँखें भर आईं। उनकी 22 वर्षीया वधू श्रीमती कमला नेहरू ने बहुत प्रयास करके स्वयं को थामे रखा, विगत एक वर्ष के बीच उन्हें बहुत कुछ देखना और सहना पड़ा था। उनका सारा संसार ही पलट गया था और आज उन्हें अपने—अपने पति से, कौन जाने कितनी अवधि के लिये बिछुड़ना पड़ रहा था। आशंका, एकाकीपन और बेचैनी—अब तो यही तीनों उनके शेष जीवन में साथ देने के लिये आ जुटे थे।

इलाहाबाद में काँग्रेस और खिलाफत के सब नेताओं की गिरफ्तारी के बावजूद प्रिंस ऑफ वेल्स मि0 एडवर्ड के आगमन के अवसर पर जो हड़ताल पं0 मोतीलाल नेहरू ने अपने बंदी बनाये जाने से पूर्व संगठित कर दी थी, वह पूर्णतया सफल रही। प्रिंस जब प्रयाग विश्वविद्यालय से स्वागतपत्र लेने के लिये सेनेट हाल पहुँचे, तो अधिकांश विद्यार्थी वहाँ से अनुपस्थित थे और जो उपस्थित भी थे, उन्हें उस संध्या को भोजन से वंचित

---

1. नन्दा, बी0आर0 — मोतीलाल नेहरू, पृष्ठ सं0 130
2. Ibid, P-130

रहना पड़ा; क्योंकि छात्रावास के सेवकों ने इन विद्यार्थियों को खाना परोसने से इन्कार कर दिया था।[1]

7 दिसम्बर, सन् 1921 को बंदीगृह में बनाये गये एक न्यायालय कक्ष में पं0 मोतीलाल नेहरू का मुकदमा शुरू हुआ। पं0 मोतीलाल नेहरू काँग्रेस के स्वयं सेवक हैं, इस आरोप को साबित करने के लिये पुलिस ने एक निर्धन और अशिक्षित ब्राह्मण कृपाराम को न्यायाधीश के समक्ष पेश किया, जिसने हिन्दी में पं0 मोतीलाल नेहरू के हस्ताक्षर को पहचानने का अभिनय किया, जबकि वह उस कागज को, जिस पर उनके हस्ताक्षर थे, उलट कर अपने सामने रखे हुये था। उस समय पं0 मोतीलाल नेहरू की गोदी में चार वर्षीय पोती इंदिरा थी। उन्होंने अपना बचाव करने से इंकार करते हुये कहा कि यह मुकदमा महज एक तमाशा है। फलतः न्यायाधीश ने उन्हें छह मास का दण्ड और 500 रुपये जुर्माने की सजा सुना दी। उन्होंने पोती को वापस भेजते हुये दण्ड को स्वीकारा और जुर्माना देने से इंकार कर दिया।

तभी जवाहरलाल नेहरू पर अलग से मुकदमा चलाया गया। उन पर आरोप लगाया गया था कि उन्होंने हड़ताल कराने के पर्चे बाँटे थे। उन्हें भी छह मास का दंड और पाँच सौ रुपये की सजा दी गई। जवाहरलाल नेहरू ने भी पिता के समान ही जुर्माना देने से इंकार कर दिया। इससे स्थानीय पुलिस अधिकारी को आनन्द भवन पर धावा बोलने का अवसर हाथ लग गया। नन्हीं इंदिरा ने इसका कड़ा विरोध किया; पर पुलिस कुछ सौ रुपयों के जुर्माने के बदले सहस्त्रों रुपये मूल्य का फर्नीचर और गलीचे उठा कर ले गई। आनन्द भवन की महिलाओं के लिये पुलिस की यह लूटमार धैर्य की एक बहुमूल्य शिक्षा थी। गाँधी जी के निमन्त्रण पर, कुछ दिन बाद ही श्रीमती स्वरूप रानी, श्रीमती कमला नेहरू, कृष्णा और इंदिरा ट्रेन द्वारा अहमदाबाद में होने वाले काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये गयीं। तीसरी श्रेणी में यात्रा करने का उनका पहला अनुभव था। अहमदाबाद में जहाँ गाँधी जी की छत्रछाया में उन्हें शान्ति और प्रेरणा मिली, वहीं आश्रम के नियमों का पालन करने के लिये चार बजे विहान बेला में उठना, साबरमती के किनारे प्रार्थना के लिये एकत्रित होना,

---

1. प्रयाग विश्वविद्यालय– सत्तरवीं जयन्ती विशेषांक, पृ0सं0 112

सादा और बेस्वाद आहार ग्रहण करना, फर्श पर सोना, बर्तन साफ़ करना और वस्त्र धोना आदि कष्टप्रद था। पं0 मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू को जिला जेल लखनऊ में रखा गया था। उन दिनों लखनऊ लेफ्टिनेंट गवर्नर सर हरकोर्ट बटलर का मुख्यालय था। वे विगत 30 वर्षों से पं0 मोतीलाल नेहरू से बहुत अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने जेल में यह प्रबन्ध करा दिया कि पं0 मोतीलाल नेहरू, उनके पुत्र जवाहरलाल नेहरू और भतीजे को किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो। वे चाहें तो बाहर से अपने लिये आहार मंगवा सकते हैं, पत्रादि लिख सकते हैं और समाचार पत्र तथा पुस्तकें मंगवा सकते हैं।

जवाहरलाल नेहरू की यह पहली जेल यात्रा थी। उन्होंने बहुत से अन्य राष्ट्रवादियों की तरह हिन्दू धर्म ग्रन्थों के गूढ़ अध्ययन द्वारा शांति प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया; अपितु पब्लिक स्कूल के छात्र के समान दैहिक और मानसिक कार्य को ही अपना कठोर दैनिक नियम बना लिया। जवाहरलाल नेहरू जेल की बैरक में झाडू देते और सफ़ाई करते थे। वे अपने और पिता के कपड़े धोते थे और चर्खा चलाते थे। वे श्रमपूर्वक अध्ययन और विचार—विमर्श करते थे तथा बंदियों के लिये संध्याकालीन कक्षायें चलाते थे। जवाहरलाल नेहरू पिता की सारी आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखते थे।

सन् 1922 ई0 के आरम्भ में असहयोग आंदोलन बहुत तेज़ी पर था और लखनऊ जेल राष्ट्रीय नारों से गूंजने लग गई थी। 1 फरवरी को गाँधी जी ने वाइसराय को पत्र द्वारा यह सूचित किया था कि बम्बई प्रेसिडेंसी के बारडोली नामक स्थान में सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ होने वाला है। नेहरू परिवार के कान इस शंख ध्वनि की ओर लग गये जो अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध निर्णायक युद्ध का आह्वान करने के लिये गूँजने वाली थी। पर विधाता को कुछ और ही स्वीकार था। 4 फरवरी को संयुक्त प्रांत के एक छोटे से गाँव चौरीचौरा में एक जुलूस और पुलिस दल के बीच मुठभेड़ हो गई। इसमें पुलिस की चौकी को आग लगा दी गई और 22 लोगों के प्राण चले गये, जिनमें से एक पुलिस के सब इंस्पेक्टर का बच्चा भी था।

चौरीचौरा का यह दुःखद कांड गाँधी जी के लिये खतरे की घंटी बन गया। उन्होंने विचार किया कि देश का वातावरण किसी भी सामूहिक आंदोलन के लिये

बहुत अधिक विस्फोटक है। उन्होंने आन्दोलन वापस लौटाने का तत्काल निर्णय ले लिया। उन्होंने आदेश दिया कि बारडोली में सविनय अवज्ञा की योजनायें रद्द कर दी जायें, असहयोग आन्दोलन का विध्वंसात्मक पक्ष स्थगित कर दिया जाये और उसके रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत चर्खा चलाना, साम्प्रदायिक एकता लाना, अछूतोद्धार करना आदि पर बल दिया जाये। महात्मा गाँधी के अनुयायियों जिनमें जवाहरलाल नेहरू और मोतीलाल नेहरू भी थे, यह निर्णय ऐसा लगा, मानो उन पर बिजली गिरी हो। गाँधी जी के पीछे हटने की सूचना को सुनते ही पं० मोतीलाल नेहरू तो आपे से बाहर हो गये और जवाहरलाल नेहरू ने पत्र द्वारा अपनी निराशा को व्यक्त किया, जिसे गाँधी जी ने 'सुन्न कर देने वाली दवा की खुराक' कहा। तब उन्होंने इस लम्बे पत्र द्वारा जोकि 19 फरवरी को लिखा गया था, इस अप्रत्याशित कार्य के कारणों को स्पष्ट करने और पिता–पुत्र की व्यथा को कम करने का प्रयास किया–'....मुझे लगता है कि कार्य समिति के प्रस्तावों के कारण तुम सब बुरी तरह विचलित हो गये हो। तुम्हारे साथ मेरी सहानुभूति है और पिता जी (मोतीलाल नेहरू) के प्रति मेरा हृदय विचलित हो उठा है। मैं उस तकलीफ को समझ सकता हूँ, जिससे वे गुजर रहे होंगे। लेकिन इसके साथ ही मैं यह भी महसूस करता हूँ कि इस खत की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि मुझे यह मालूम है कि पहले धक्के के बाद तुम लोगों ने स्थिति की वास्तविकता को ठीक–ठीक समझने की कोशिश की होगी।.... मैं तुमको यह बतलाना चाहूँगा कि चौरीचौरा काण्ड इस प्रसंग की अन्तिम कड़ी था. ....गोरखपुर की इस घटना से पहले ही मेरे पास कलकत्ता, इलाहाबाद और पंजाब से हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के ख़त आते रहे थे, जिनमें यह बताया गया था कि गलती सारी की सारी सरकार की ही तरफ से नहीं हो रही है, बल्कि हमारे अपने लोग भी उग्र, असंयत और खूंख्वार होते जा रहे हैं और उन पर किसी तरह का काबू रखना सम्भव नहीं दिखाई दे रहा है..... मैं तुम्हें यह यकीन दिलाना चाहता हूँ कि अगर आन्दोलन को रोक न लिया जाता, तो हम एक ऐसे संघर्ष में पड़ जाते जो अहिंसक न होकर, मूलतः एक हिंसा पूर्ण संघर्ष बन गया होता.... हमारे देश को इस पीछे लौटने से शक्ति प्राप्त होगी। अनजाने में ही यह आन्दोलन सही रास्ते से भटक कर दूसरी जगह पहुंच गया था। अब हम अपनी ठीक दिशा में ही वापस लौट आये हैं।'[1]

---

1. नन्दा, बी0आर0 – मोतीलाल नेहरू, पृष्ठ सं0 136

जवाहरलाल नेहरू को जेल में तीन मास हो गये थे। तभी गाँधी जी के आदेश पर सत्याग्रह बन्द हो गया था और उसके साथ ही असहयोग भी दम तोड़ गया। कई मास के बाद अंग्रेजी सरकार को चैन की साँस मिली थी। ऐसी स्थिति में जेल में जवाहरलाल नेहरू को सूचना मिली थी कि मुकदमों पर पुनर्विचार करने वाले कोई अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उन्हें जो दंड दिया गया था, वह गलत था और इसलिये उन्हें जेल से मुक्त किया जायेगा। इस पर उन्हें आश्चर्य हुआ था। जवाहरलाल नेहरू अपने पिता श्री पं० मोतीलाल नेहरू को जेल में अकेला छोड़ना नहीं चाहते थे; पर अंग्रेजी सरकार का आदेश पाने के बाद वे वहाँ रुक भी नहीं सकते थे। जेल से मुक्त होते ही जवाहरलाल नेहरू ने अहमदाबाद जाकर गाँधी जी से मिलने का विचार बनाया था पर वे 10 मार्च, सन् 1921 ई० को बंदी बना लिये गये और उन पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया।

जब गाँधी जी के मुकदमे की सुनवाई एक अंग्रेज़ जज के न्यायालय में हो रही थी, तब जवाहरलाल नेहरू और कितने ही काँग्रेसी कार्यकर्ता वहाँ पर मौजूद थे। उस अंग्रेज जज ने अपने व्यवहार में काफी शराफत और सद्भावना दर्शायी थी। उसके समक्ष गाँधी जी ने जो बयान दिये, वे दिलों पर काफी असर डालने वाले थे। फिर भी उन्हें छह वर्ष की सज़ा सुनाई गई। उन्हें साबरमती जेल में भेज दिया गया। जवाहरलाल नेहरू और उनके साथी जब न्यायालय से लौटे, तो उनके दिल हिलोरें ले रहे थे और उनके एक–एक शब्द की गहरी छाप उनके मन पर अपना रंग जमा चुकी थी। वे इलाहाबाद लौट आये। उन्हें बंदीगृह से बाहर रहना बड़ा ही कष्टप्रद लग रहा था, क्योंकि उनके सभी मित्र एवं साथी जेल के सींखचों के अन्दर बन्द थे। उन्होंने देखा कि गाँधी जी के बन्द होते ही काँग्रेस फूट के कगार पर पहुँच चुकी है और अंग्रेजी सरकार उनकी इस प्रक्रिया को सहन न कर सकी और कुछ सप्ताह के बाद ही जवाहरलाल नेहरू को उनके कई साथियों के साथ बंदी बना लिया गया। उनके ऊपर जबरदस्ती रुपया ऐंठने और लोगों को डराने का अभियोग लगाया गया। साथ ही राजद्रोह सहित और भी कई अभियोग लगाये गये। उन्होंने न्यायालय में अपनी कोई सफ़ाई नहीं दी, सिर्फ एक लम्बा बयान दिया। उन्हें रुपया ऐंठने, लोगों को डराने–धमकाने आदि अभियोगों में इक्कीस मास का दंड दिया गया।

दूसरी बार लखनऊ जेल में पहुँचने पर जवाहरलाल नेहरू ने वहाँ काफी परिवर्तन पाया। उनके पिता पं0 मोतीलाल नेहरू को बदल कर नैनी जेल में भेज दिया गया था। वीविंग शेड के सारे राजनैतिक क़ैदी भीतरी जेल की बैरकों में पहुंचा दिये गये थे। उन्हें अन्य बैरकों के कैदियों से मिलने–जुलने और बातचीत करने की आज्ञा नहीं थी। मुलाक़ात और ख़तादि मास में एक कर दिये गये थे। खाना भी मामूली कर दिया गया था। मगर उन्हें बाहर से चीजें मंगाने की अवश्य स्वतंत्रता थी। जवाहरलाल को दूसरी बार जेल आने पर जिस बैरक में रखा गया था, उसमें करीब पचास राजनैतिक क़ैदी और भी थे जो कि उनके पहले से ही परिचित थे। फिर भी एकान्तता का अभाव उन्हें खटकता रहता था, क्योंकि वे झुंड में रहने और नित्य कर्म करने के आदी नहीं थे। पर यहाँ विवशता थी और जेल अधिकारियों के अपने कानून थे जो उन्हें मानने पड़ते थे।

उधर पं0 मोतीलाल नेहरू ने नैनी बंदीगृह से मुक्त होते ही गाँधी जी द्वारा मोर्चा बदल देने की बात को समर्थन देते हुये, इलाहाबाद में भाषण दिया, '.... जिस लड़ाई को हमने शुरू किया है, उसके लिये हमने एक नयी राह अपनायी है। हम ऐसे शस्त्रों का प्रयोग कर रहे हैं, जो बिल्कुल नए और इतिहास की दृष्टि से अपरिचित हैं और हम केवल अपनी त्रुटियों से ही लाभ उठा सकते हैं। ..... हवा का रुख बदलने के कारण हमें अपने पालों का रुख भी बदलना पड़ सकता है, सामने की चट्टानों और खतरों से बचने के लिये हमें अपने रास्ते भी कुछ परिवर्तन करने पड़ सकते हैं, यहाँ तक कि कोहरे के घिर आने पर हमें उस समय तक लंगर भी डाले रख सकना पड़ सकता है, जब तक कि धुंध थोड़ी साफ न हो जाये। किन्तु इस बात का कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि हम अपनी मंजिल को बदल दें या उस मंजिल तक पहुँचने के लिये हमने जिस उम्दा जहाज को अपनाया है, उसे ही छोड़ दें।'

कॉंग्रेस में जो फूट के अंकुर उपज आये थे, उन्हें उखाड़ फेंकने के लिये अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी की मीटिंग लखनऊ में हुई। उसमें विधानसभाओं के बायकाट को लेकर मतभेद की खाई और चौड़ी हो गई। मगर बंदीगृह से मुक्त होने के बाद चितरंजन दास की ओर से भी पं0 मोतीलाल नेहरू को अपने तर्कों का समर्थन मिला। राजेन्द्र प्रसाद, बल्लभभाई पटेल, सी0 विजयराघवाचार्या, सी0 राजगोपालाचारी आदि अपरिवर्तनवादियों

ने जो कि गाँधी जी द्वारा बनाये गये असहयोग कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं चाहते थे, ने नेहरू–दास गठबंधन का विरोध किया। विधान सभाओं के प्रवेश के समर्थन में 890 मत और विरोध में 1740 मत पड़े। फलतः इसमें अपरिवर्तनवादियों की जीत हुई। इससे पं0 मोतीलाल नेहरू और चितरंजनदास निरुत्साहित नहीं हुये। उन्होंने कॉंग्रेस अधिवेशन के तुरन्त बाद ही 31 दिसम्बर, सन् 1922 ई0 को महाराजा टिकाड़ी के गया निवास में अपने समर्थकों की एक बैठक बुलायी और इसमें 'कॉंग्रेस खिलाफत स्वराज्य पार्टी' का श्री गणेश किया, जिसके अध्यक्ष चितरंजनदास और पं0 मोतीलाल नेहरू मंत्री बनाये गये। यह नई पार्टी 'स्वराज्य' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसने कॉंग्रेस के सिद्धान्तों तथा असहयोग के कार्यक्रम को तो स्वीकार किया, किन्तु विधान सभाओं के प्रवेश के मामले में इनकी विचारधारा अलग ही रही।

इस पार्टी के सम्बन्ध में सूचना जवाहरलाल नेहरू को लखनऊ जेल में ही मिली थी। कॉंग्रेस के दो दल बन जाने से उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं हुई थी। वे जब भी जेल में एकान्त में रहना चाहते, तो वे अपनी बैरक छोड़कर अहाते के खुले हिस्से में आ बैठते थे। उन दिनों पावस ऋतु थी और आसमान में बदली होने के कारण बाहर बैठने में कोई असुविधा नहीं होती थी। जवाहरलाल नेहरू वहाँ पर लेटकर बादलों से घिरे आकाश को निहारा करते थे और अनुभव किया करते थे कि बादलों के नित नये रंग कितने सुन्दर होते हैं। यह अद्वितीय सौंदर्य जवाहरलाल ने इससे पूर्व कभी नहीं देखा था।

अहो ! मेघमालाओं का यह
पल–पल रूप पलटना,
कितना मधुर स्वप्न है लेटे–
लेटे इन्हें निरखना।

इस सुहावने मौसम के बीच जितनी घड़ियां जवाहरलाल नेहरू बिता पाते थे, वे उनके लिये सुखद और राहत भरी होती थीं। उधर धीरे–धीरे जेल की सख्तियां उन पर बढ़ने लग गई थीं। अंग्रेजी सरकार उन्हें यह एहसास करा देना चाहती थी कि उनके मुक़ाबले करने की हिम्मत करने के कारण से वह उनसे किस कदर नाराज है। उसके नये क़ायदे चालू करने और उनके अमल में लाने के ढंग से जेल अधिकारियों और राजनैतिक क़ैदियों

के बीच संघर्ष होने लग गये थे। फलतः जवाहरलाल नेहरू और सैकड़ों राजनैतिक बंदियों ने विरोध स्वरूप मुलाक़ातें करना छोड़ दिया था। जेल अधिकारियों ने यह विचार कर कि इनमें से कुछ विवाद को बढ़ाने वाले हैं, जवाहरलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टंडन, महादेव देसाई, जार्ज जोसफ़, बालकृष्ण शर्मा और देवदास गाँधी आदि को बैरक से निकालकर जेल के दूसरे हिस्से के छोटे से अहाते में भेज दिया था। वहाँ पर काफी असुविधायें होते हुये भी इस तबदीली से जवाहरलाल नेहरू को खुशी ही हुई। यह स्थान भीड़भाड़ से दूर था। वे यहाँ अधिक शांति और एकान्त से रह सकते थे। उन्हें यहाँ पर पढ़ने अथवा अन्य कामों के लिये काफ़ी समय मिल जाता था। वे इस अहाते के चारों ओर दौड़कर कसरत कर लिया करते थे। अहाते से ही लगा साग—सब्जी का छोटा—सा खेत था, जिसे चमड़े के डोल से पानी खींचकर सींचा करते थे। जाड़े की रातों में पढ़ने में उन्हें विशेष आनन्द की प्राप्ति होती थी। इस तरह जवाहरलाल नेहरू जेल की दुनिया के आदी हो गये थे। यहाँ पर भी भ्रष्टाचार का रोग फैला हुआ था। क़ैदियों को खाना बहुत ही खराब दिया जाता था। राजनैतिक क़ैदियों के साथ भी साधारण कैदियों के समान ही व्यवहार किया जाता था। अवसर मिलने पर सख्त सजायें भी दी जाती थीं। ऐसे ही कायदे—कानून तोड़ने पर सोलह वर्षीय 'आजाद' को नंगा करके और बेंत की टिकड़ी से बाँध कर बेंत की सज़ा दी गई। जैसे—जैसे बेंत उसकी चमड़ी उधेड़ते थे वैसे—वैसे वह 'महात्मा गाँधी की जय' का नारा लगाता था। यह क्रम बेहोश होने तक चलता रहा था। ऐसे व्यवहार से जवाहरलाल नेहरू बहुत दुःखी हो जाया करते थे। 31 जनवरी, सन् 1923 ई० को जवाहरलाल नेहरू आधी से कम सज़ा भुगतने के बाद ही अन्य राजनैतिक क़ैदियों के साथ छोड़ दिये गये। इसका कारण था असहयोग आन्दोलन की शिथिलता और हिन्दुओं व मुसलमानों तथा परिवर्तनवादियों में मतभेद होने पर सरकार द्वारा लिया गया निर्णय। वास्तव में अंग्रेजी सरकार का कोई ऐसा इरादा न था कि सज़ा का मतलब यह हो जाये कि वह 'राज्य के खर्चे पर रहने की आरामदेह जगह है।' यह विचार धारा वाइसराय लार्ड रीडिंग की थी।[1]

लखनऊ जेल के द्वार से बाहर निकलने पर जवाहरलाल

---

1. मार्क्विस ऑफ रीडिंग रूफस रज़ाक्स, फर्स्ट मार्क्विस ऑफ रीडिंग, खण्ड दो, पृष्ठ सं० 236

नेहरू ने विशेष आनन्द की अनुभूति महसूस की। ताजी हवा, खुले मैदान और पुराने मित्रों से मिलना—जुलना आदि की खुशी ने उनमें विशेष खुमारी ला दी। उनकी यह खुशी क्षणिक ही रही, क्योंकि काँग्रेसी राजनीति के क़दम लड़खड़ा रहे थे। ऊँचे आदर्शों का स्थान भीतरी संघर्ष ले चुके थे। जवाहरलाल नेहरू पिताजी के विचारों से सहमत नहीं थे। पं० मोतीलाल नेहरू अपने पुत्र जवाहरलाल नेहरू की प्रकृति को अच्छी तरह पहचानते थे, अतः उन्होंने भी स्वराज्य पार्टी में सम्मिलित होने के लिये उन पर दबाव नहीं डाला। मगर उन्होंने अपने मित्र चितरंजनदास पर इस बात का दायित्व छोड़ किया कि वे जवाहरलाल नेहरू को स्वराजियों के मत का बना लें; किन्तु दास को सारी वकालत उन पर प्रभाव डालने में असफल रही।

बंदीगृह से मुक्त होने पर जवाहरलाल नेहरू ने कुछ लोगों के साथ मिलकर यह प्रयास किया कि काँग्रेस के परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दलों में कोई समझौता हो जाये; पर उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली और वे उन दोनों के आंतरिक संघर्षों से ऊब गये।

८. विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और नेहरू

विदेशी कपड़ों का बहिष्कार असहयोग आन्दोलन का मुख्य अंग था। अतः जब आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तो लोग जोरों के साथ विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाने लगे। गरीबों को भी नंगे बदन रहना स्वीकार था, पर विदेशी कपड़े पहनना स्वीकार नहीं था। गरीब–से–गरीब आदमी भी बिना किसी मोह के अपने कपड़े आग के हवाले कर देता था। स्त्रियाँ बिना किसी संकोच के अपनी मूल्यवान साड़ियाँ आग में झोंक दिया करती थीं।[1] महात्मा गाँधी की ईजाद छोटी सी खद्दर की टोपी पंडित जी के सिर पर चुस्त बैठी थी। न तो वे कोट पहिने थे और न वेस्ट कोट। खद्दर की एक लम्बी कमीज, पंजाब में उसे कुरता कहते थे, उनके घुटनों तक लटकती थी। उनके पाँव नंगे थे, वा सोने के काम वाले जूते अवश्य मौजूद थे...... .वे घर का बुना जो कपड़ा पहने थे, वह मोटा था। ऐसा लगता था कि यह उनके खूबसूरत चेहरे और आकृति में विशिष्टता जोड़ देता था। निश्चित ही यह उन्हें कम नहीं करता था। खद्दर की शुद्ध सफेदी उनसे अत्यधिक मेल खाती थी।[2] स्वरूपरानी, कमला नेहरू, विजय लक्ष्मी और कृष्णा आदि भी खद्दर पहनने लगी। आनन्द भवन के सारे विदेशी कपड़े आग में डाल दिये गये थे। स्वरूपरानी और कमला ने अपनी सारी विदेशी साड़ियाँ आग के हवाले कर दी थीं। वे घर–घर जा कर विदेशी कपड़े इकट्ठा करती थीं और उनकी होलियाँ जलाया करती थीं। केवल यह नहीं, वे लोगों को खद्दर और स्वदेशी पहनने की प्रेरणायें भी दिया करती थीं। अगर हम यह कहें तो गलत नहीं माना जायेगा कि नेहरू जी और उनके कुटुम्ब के त्याग के ही कारण इलाहाबाद नगर और जिले में सबसे अधिक खद्दर का प्रचार हुआ था। लोग स्वदेशी वस्त्र और खद्दर तो पहनने ही लगे थे, चरखी और तकलियाँ भी चलाने लगे थे। अनेक लोग रास्ते में भी तकली पर सूत कातते हुये चला करते थे।[3] विदेशी कपड़ों के बहिष्कार में इलाहाबाद के व्यापारियों ने पं० जवाहरलाल नेहरू को आश्वस्त किया कि वे विलायती माल नहीं बेचेंगे, पर

---

1. पालीवाल, डा० नारायण दत्त – आनन्द भवन से संसद तक, पृ०सं० 37
2. Leader, February 18, 1921
3. पालीवाल, डा० नारायण दत्त – आनन्द भवन से संसद तक, पृ०सं० 37, 38

कुछ ने अपना वचन तोड़ दिया उनसे जुर्माने वसूल किये गये।[1]

खादी के सम्बन्ध में जवाहरलाल नेहरू जी के विचार–[2]

सिर्फ खादी विदेशी माल को निकाल बाहर करने में कामयाब हो सकती है फिर भी महात्मा गाँधी कारखानेदारों से समझौता करने को तैयार थे, लेकिन जरूरी था कि कारखानेदार बहुत ज्यादा लालच करना छोड़ दें। महात्मा जी चाहते थे कि मिलों के मालिक वादा करें– कि वे अपने तैयार किये कपड़े का दाम बेहिसाब नहीं बढ़ायेंगे, और उन्हें अपने मजदूरों की मुनासिब माँगों को भी पूरा करना पड़ेगा। अगर महात्मा जी और मिल–मालिकों के बीच समझौता नहीं हुआ, तो हमारा सीधा फर्ज होगा कि मिल के कपड़े का बहिष्कार करें, और सिर्फ खादी पहनें। वापू की खादी को नेहरू ने ही नहीं हिन्दु मुस्लिम और ईसाई सभी पहनते थे उनकी खादी में देश भक्ति, राष्ट्रभक्ति तथा त्याग की भावना के संकेत स्पष्ट दिखाई पड़ते थे क्योंकि खादी में देश की सच्चाई और मर्म छिपा हुआ था। नेहरू जी को खादी बहुत पसन्द थी। नेहरू जी की सोच में खादी एक "आजादी की वर्दी" थी।

---

1. श्री शरण, – "महामानव नेहरू", पृष्ठ सं0 74
2. गोपाल, एस0– जवाहरलाल नेहरू, वाङ्मय खण्ड–3, पृ0सं0 157

९. इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष और काँग्रेस महामंत्री के रूप में।

(अ) इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष

1. अध्यक्ष के चुनाव पर[1]—

महोदय,

इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड की कल एक खास बैठक हुई थी। उसकी कार्रवाई की जो किसी कदर संक्षिप्त रिपोर्ट आपके 5 तारीख के अंक में प्रकाशित हुई है, उससे शायद ऐसे पाठकों को ग़लतफ़हमी हो सकती है, जिन्हें पूरी बातों की जानकारी न हो। मैं उम्मीद करता हूं कि आप मेहरबानी करके मुझे उसका खुलासा करने की इजाजत देंगे। आप कहते हैं कि अध्यक्ष—पद के सम्भावित उम्मीदवारों में चार नामों का जिक्र है— श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, मौलवी कमालुद्दीन जाफ़री, मौलवी मुबारक हुसैन और जवाहरलाल। इससे यह असर पड़ सकता है कि टंडन जी और जाफ़री और जवाहरलाल के बीच मुकाबले—जैसी कोई बात थी। लेकिन यह क़तई ग़लत है, क्योंकि इनमें से किन्हीं भी दो के बीच मुक़ाबले की कोई कल्पना किसी भी हालत में की ही नहीं जा सकती। जवाहरलाल के ऊपर अध्यक्ष—पद का बोझ और जिम्मेदारी तो इसीलिये आई, क्योंकि उनके दूसरे साथी खड़े होने को तैयार ही नहीं हुये। जवाहरलाल ने बहुत लम्बे अर्से से यह उम्मीद लगा रखी थी कि जवाहरलाल के आदरणीय मित्र और साथी बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन जवाहरलाल को बोर्ड का अध्यक्ष बनाने देंगे, जिससे कि वह म्युनिसिपल प्रशासन की बारीकियों में उनकी रहनुमाई कर जवाहरलाल को यह बतायें कि अपने शहर और इलाहाबाद के साथी नागरिकों की सबसे अच्छे तरीके से हम कैसे सेवा कर सकते हैं। बड़ी मुश्किल से इसके लिये हमने उन्हें रज़ामंद भी कर लिया था। लेकिन बाद में, मालूम पड़ता है, कुछ मुसलमान सज्जनों ने किसी मुसलमान को

---

1. Leader, April 6, 1923

अध्यक्ष बनाने पर ज़ोर दिया। इस मामले में हिन्दू–मुसलमान का कोई सवाल नहीं था, परन्तु ऐसी हवा बनाने और इस तरह कुछ मतदाताओं पर असर डालने की कोशिश की गई। काँग्रेस और खिलाफत के हम लोगों के लिये तो इस बात की कोई ख़ास अहमियत नहीं थी कि अध्यक्ष हिन्दू हो या मुसलमान, जवाहरलाल की निगाह तो यही थी कि वह होशियर हो और साथ ही असहयोगी भी हो। अपने प्यारे साथी मौलवी कमालुद्दीन जाफ़री को हम बड़ी खुशी से खड़ा करते; लेकिन उनकी बीमारी की वजह से ऐसा नहीं हो सका, जिसने फ़िलहाल उन्हें किसी भी काम के लायक नहीं रहने दिया है। बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन को जैसे ही यह पता चला कि अध्यक्षता के सवाल पर हिन्दू–मुसलमानों में मनमुटाव पैदा करने की कोशिश की जा रही है, उन्होंने अपनी सहज शाइस्तगी और बुलन्दगी के साथ अध्यक्षता के लिये खड़े होने से इन्कार कर दिया और इस बात पर जोर दिया कि बीमारी के बाबजूद मौलवी कमालुद्दीन जाफ़री को ही खड़ा करना चाहिये। लेकिन मि० जाफ़री बीमारी की वजह से नाम को ही अध्यक्ष बन सकते थे। हमारे मददगार मुसलमान दोस्त मुसलमान को ही चाहते हों तो मुसलमान को अध्यक्ष बनाया तो जा सकता है, लेकिन होगा वह असहयोगी ही। अपने दल की ओर से हमने तय किया कि सहयोगी मुसलमान मुसलमान को ही अध्यक्ष बनाने को उत्सुक हों तो हम मि० जाफ़री को उसके लिये खड़ा करेंगे। लेकिन जल्दी ही यह बात साफ हो गई कि हमारे सहयोगी मुसलमान दोस्त मुलसमान अध्यक्ष की जो लम्बी–चौड़ी बातें करते थे, वे सब उनके अपने एक दोस्त को इस पद पर चुनवाने का महज़ बहाना था, क्योंकि हमें बताया गया कि वे मौलाना जाफ़री की मुखालफत करेंगे और एक अवकाशप्राप्त पेंशनयाफ्ता को अपने उम्मीदवार के तौर पर खड़ा करेंगे। इन हालात में मौलाना जाफ़री को उनकी बीमारी की हालत में खड़ा करने का कोई मतलब नहीं था। टंडन जी फिर भी खड़े होने को रज़ामंद नहीं हुये। उन्होंने और हमारे साथियों ने ऐसी हालत में जवाहरलाल से खड़े होने को कहा, जिसके आगे इच्छा न होते हुये भी जवाहरलाल को सिर झुकाना पड़ा। इस तरह उन्होंने जवाहरलाल के ऊपर जो बोझ डाल दिया है, वह सचमुच बहुत भारी है और जवाहरलाल नहीं जानते थे कि उसको सम्हालने में जवाहरलाल कहां तक कामयाब हो सकेंगे। यह भी मैं नहीं जानता कि मेरे दूसरे जो काम हैं और जिन्हें मैं कहीं ज्यादा अहम मानता हूं, उन पर इसका क्या असर पड़ेगा। मुझे लगता है

कि ठीक आदमी को नहीं चुना गया है। मैं जानता हूं कि मैं जैसा काम करने की उम्मीद कर सकता हूं, उससे टंडन जी या मि0 जाफ़री या मेरा कोई दूसरा साथी जरूर ही कहीं अच्छा अध्यक्ष साबित होता । लेकिन अब तो मैं बस यही उम्मीद कर सकता हूं कि मेरे दोस्त मुझ पर रहम करके जल्दी ही मुझे इस जिम्मेदारी से छुटकारा देने को रज़ामंद हो जायेंगे और मेरी जगह किसी ज्यादा अच्छे आदमी को अध्यक्ष बनायेंगे।

इलाहाबाद जवाहरलाल नेहरू

4 अप्रैल (1923)

अपरिवर्तनवादी होने के नाते जवाहरलाल जी को राहत मिली। नयी स्वीकृति होने के बल पर उन्हें प्रधानमंत्री से पहले प्रशासन में प्रशिक्षण पाने का एकमात्र मौका प्राप्त हुआ। वरमिंगम के चेम्बर लेनों की तरह प्रमुख कांग्रेसी नगरपालिकाओं के अध्यक्ष बनने लगे। चितरंजनदास कलकत्ता के मेयर बने थे। तथा अपनी बहुमत और शक्ति के बल पर उन्होंने उसकी काया पलट कर दी थी। बम्बई कारपोरेशन के बिट्ठल भाई पटेल प्रधान थे। अहमदाबाद म्युनिसिपलिटी के बल्लभ भाई पटेल थे। जवाहरलाल इलाहाबाद म्युनिसिपलिटी के प्रधान बने थे उन्हें इस काम में आनन्द आया और पूरी तरह इसमें जुड़ गये[1]। जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि म्युनिसिपैलिटी की अध्यक्षता मेरे लिये तो मुल्क की खिदमत का महज ऐसा जरिया है, जिससे स्वराज जल्दी आ सके[2]। जवाहरलाल नेहरू ने इलाहाबाद नगर की अनेक समस्याँओं का निदान किया उन्होंने यात्री–कर के सम्बन्ध में इलाहाबाद डिवीजन के कमिश्नर को बताया कि शहर की सफाई की निगाह से जो भी सुधार किये जायेंगे, वे तीर्थयात्रियों की तन्दुरुस्ती और उनकी सुविधा की निगाह से होंगे। शहर की सफ़ाई की खास कोशिश की जा रही है। पानी की सप्लाई का भी तीर्थयात्रियों के लिये बड़ा महत्व है। पानी की सप्लाई में सुधार के ख्याल से नलकूप खोदे जा रहे हैं। 1923–24 के नये बजट से आप को पता चल जायेगा

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 38
2. गोपाल, एस0– जवाहरलाल नेहरू, वाड्मय खण्ड–2, पृ0सं0 4

कि सफाई की योजना पर बोर्ड किस तरह रुपया खर्च करना चाहता है। इस कर से जितनी रकम वसूल होने की उम्मीद है, उससे कहीं ज्यादा इन योजनाओं पर खर्च होगी। तीर्थयात्रियों के लिये खास इन्तजाम करने का हमारा विचार है और अपने स्वास्थ्य अधिकारी से हमने ऐसे उपाय सुझाने के लिये कहा है, जिनसे हमारे तीर्थयात्रियों को सहूलियत हो और उनकी सेहत ठीक रहे।[1] वाटर वर्क्स जांच–कमेटी की रिपोर्ट पर जवाहरलाल नेहरू ने कहा– इस रिपोर्ट से एक गैर मामूली हालत का पता चलता है। निजी जिम्मेदारी किसकी है, इससे मुझे कोई मतलब नहीं। जाहिर है कि वाटर वर्क्स महकमे का काम बिना जिम्मेदारी के बुरी तरह हो रहा है। यह ऐसा महकमा है, जिसके कामकाज का लोगों की रोज़मर्रा की जिन्दगी पर शायद और किसी महकमे से ज्यादा असर पड़ता है। पानी एक दिन भी बन्द रहे तो हज़ारों की जिन्दगी बेज़ार हो जाती है। इसलिये मैं चाहता हूं कि बोर्ड इस बात पर ध्यान दे कि इस महकमे का काम व्यावसायिक रूप में और बड़ी होशियारी के साथ हो। महकमे के हरेक अधिकारी को यह समझ लेना चाहिये कि महकमे की मशीनरी के ठीक तरह चलते रहने के लिये बोर्ड उसे ही निजी तौर से जिम्मेदार मानेगा। कामयाबी या नाकामयाबी ही इसकी कसौटी होगी। नाकामयाबी की हालत में बोर्ड वहाने बाज़ी को बर्दाश्त न कर फौरन सख्त कार्रवाई करेगा। सिर्फ ऐसे अधिकारियों को ही नौकरी पर रखा जाय, जो यह जिम्मेदारी लेने को तैयार हों।[2]

वेश्याओं के व्यवहार के बारे में जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि बेशक यह एक खास समाजी मसला है और उसे हल करने की कोशिशें की कामयाबी चाहता हूँ। मगर यह मैं जरूर कहूंगा कि जिस तरह की कोशिशें इसके लिये की जाती हैं, उनसे मामूली तौर पर ज्यादा कामयाबी नहीं मिलती। जब जवाहरलाल इलाहाबाद म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष थे, तब उन्होंने इसे हल करने की कोशिश की थी।[3]

कमिश्नर ने जवाहरलाल से खाने की चीजों में मिलावट का

---

1. यू०पी० सरकार की कार्रवाई नं० 1 से 52, म्युनिसिपल डिपार्टमेंट फाइल नं० 595–ई, अप्रैल,1927, पैसेंजर टैक्स, इलाहाबाद म्युनिसिपैलिटी– नं० 9 (ए) और 9 (बी)
2. Leader, April 30, 1923
3. इ० म्यु० बोर्ड जनरल 12–2 डिपार्टमेंट फाइल नं० 9 – 1921–22 / 1926–27

जिक्र करके सुझाया कि इस बारे में हमें ज्यादा कड़ाई करनी चाहिये और मिलावट करने वालों के खिलाफ पिछले साल से ज्यादा कठोर कदम उठाने चाहिये। इसमें शक नहीं कि पिछले साल के आंकड़े आशाजनक नहीं हैं, इसलिये मैं उम्मीद करता हूं कि स्वास्थ्य विभाग इस साल उससे अच्छी कारगुज़ारी का सबूत देगा। इस बारे में सदस्य मिलावट आदि के मामले स्वास्थ्य अधिकारी के नोटिस में लाकर बड़ी मदद कर सकते हैं। यह सुझाव जरूर ध्यान देने लायक है कि हमारी प्रयोगशाला में मिलावट का पता लगाने का काम किया जा सकता है। अभी तो उसमें शायद इसके लिये जरूरी औजार नहीं हैं, लेकिन बहुत मंहगे न हों तो उन्हें खरीदा जा सकता है[1]। शिक्षा समिति की रिपोर्ट में जवाहरलाल नेहरू को बताया गया था कि समिति राष्ट्रीय बुनियाद पर एक पाठ्यक्रम तैयार कर रही है। उसकी मेहनत का क्या नतीजा होता है, इसका मैं इंतजार करूंगा। उसने बोर्ड के स्कूलों में बालचर आन्दोलन की शुरूआत की है और लाजिमी तालीम की योजना अभी हाल ही में बोर्ड को दी है। इस योजना के तहत रखे जाने वाले शिक्षकों की तनख्वाह बढ़ाने की उसकी सिफ़ारिश ठीक ही है। सरकारी योजना के मूजिब मेरे ख्याल में, उनकी तनख्वाह सिर्फ 14 रुपया महीना है। मेरे ख्याल में हमारे नौजवानों को पढ़ाने वाले शिक्षक को इतनी कम तनख्वाह मिलना बड़ी बेहूदा बात है। समिति ने बोर्ड के स्कूलों में कुछ राष्ट्रीय छुट्टियों को भी शामिल किया है। स्कूल के पाठ्यक्रम के रूप में इक़बाल के 'हिन्दोस्तां हमारा' गाना शुरू करने के लिये मैं उसे खास तौर से मुवारकवाद देता हूं। इस समिति ने अच्छा काम किया है, जिस पर यह वाजिव तौर पर संतोष कर सकती है।"[2]

2. बोर्ड की एक बैठक में दिया गया वक्तव्य—[3]

कुंभ मेले में संगम पर स्नान की पाबंदी को लेकर कल जो गम्भीर हालत पैदा हो गये, उसके कारण मैने बोर्ड की जरूरी बैठक को बुलाया है। बोर्ड के सदस्यों को यह तो मालूम ही है कि मेले के प्रबन्ध में म्युनिसिपल बोर्ड का कोई हाथ नहीं है,

---

1. गोपाल, एस0— जवाहरलाल नेहरू, वाङ्मय खण्ड—2, पृ0सं0 23

2. Ibid, P-25

3. 15 जनवरी,1924— इला0म्यु0बो0 फाइल नं0 23/12—4(1923—24)

बल्कि यकीनन उसकी उपेक्षा की गई है। फिर भी जब किसी बात से इलाहाबाद के ज्यादातर नागरिकों की भावनाओं को गहरी चोट लगे तो बोर्ड चुपचाप नहीं बैठा रह सकता। यह ठीक है कि गंगा का बहाव इस मरतबा कुछ बदल गया है और संगम के पास उसकी धारा बहुत तेज है, जिससे बचाव की पूरी कार्रवाई किये बगैर वहां लोगों का स्नान करना ख़तरनाक है। संगम के पास नहाने के लिये मौजूं जगह बनाने की पहले तो कोई खास कोशिश ही नहीं की गई लेकिन बार–बार अनुरोध किये जाने पर सरकार ने इसके लिये एक खास रकम मंजूर की और कई स्वयं सेवकों ने एक ऐसा स्थान बनाया,जिसमें लोग कुछ ही तादाद में सुरक्षित रूप में स्नान कर सकते हैं। मगर जिला–अधिकारियों ने संगम पर जाने की बिल्कुल मनाही कर दी। इस बात की हरचन्द कोशिश की गई कि वे लोगों को थोड़ी–थोड़ी तादाद में सुरक्षित रूप में वहां नहाने की इजाजत दे दें, लेकिन उन्होंने ऐसा करने से इन्कार किया। दुर्घटना या मौत को बचाने की इच्छा तो बहुत तारीफ के काबिल है, जिसकी हर किसी को दाद देनी चाहिये। अधिकारियों की मूल योजना इस इच्छा पर ही मुनहसिर होगी, लेकिन मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि कल उनका जो रुख़ सामने आया, उसमें उनकी हठधर्मी और प्रतिष्ठा की भावना पर ही उनका सारा दारोमदार था। जो लोग नहाने का आग्रह कर रहे थे, उनसे ज्यादा को भी वे संगम में नहाने की छूट देने को तैयार थे, लेकिन उन्हें उस वक्त तक ऐसी छूट देने को तैयार नहीं थे, जब तक कि वे वहां से हट न जायें। इस तरह उनसे शायद वे उनके दुस्साहस का प्रायश्चित्त कराना चाहते थे। यों ख़तरे की बात तो पीछे रह गई और सारा मामला इज्जत का बन गया। खतरे के मामले को तो सलाह–मशविरे द्वारा सुलझाया जा सकता है, पर इज्जत का मामला नहीं सुलझ सकता। नतीजा यह हुआ कि बहुत–से लोगों ने ज़िला–अधिकारियों की हुक्मउदूली की। किसी धार्मिक समारोह में गुस्से और संघर्ष के प्रदर्शन द्वारा रंग में भंग पड़ना बहुत अफसोस की बात है। लेकिन मेरे ख़्याल में इसके लिये अधिकारी ही पूरी तरह ज़िम्मेदार हैं, जिन्होंने जान–बूझकर ऐसा रुख़ इख़्तियार किया, जो हिन्दुओं में गहरा क्षोभ पैदा किये बगैर नहीं रह सकता था। अब्बल तो उन्होंने संगम के पास नहाने का सुरक्षित घाट बनाने पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया और जब एक ऐसा छोटा घाट बनकर तैयार हो गया, जिसका सुरक्षित रूप में उपयोग किया जा सकता था तो पूरी अहतियाती कार्रवाई के साथ थोड़ी तादाद में भी लोगों के

वहां जाने पर पाबन्दी लगा दी! उनका रुख़ बहुत ही सख्त और नामुनासिब था। हिन्दुओं की भावनाओं के प्रति आदर के भाव की उसमें एकदम कमी थी। अपने रुख़ से उन्होंने ज़ाहिर कर दिया कि वे मेले का इंतज़ाम करने के क़ाबिल नहीं हैं। कल जो हठधर्मी और मूर्खता हुई सो तो हुई ही, लेकिन मेला जारी है और बोर्ड को तय करना है कि इस बारे में वह क्या करे, जिससे कि दूर–दूर से जो तीर्थयात्री आये हैं वे न सिर्फ सुरक्षित रूप में बल्कि जहां तक हो सके, अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार ही गंगा स्नान कर सकें। कुछ शब्द मैं और कहूंगा। यह मैं ज़रूर कहूंगा कि पुलिस का, उसके अधिकारियों और सिपाहियों का, कल जो रुख़ रहा, वह तारीफ़ के क़ाबिल था। एकाध निजी मामलों के अलावा कुल मिलाकर पुलिस ने शिष्टता और संयम का ही परिचय दिया।

जवाहरलाल नेहरू

15.01.1924

परन्तु जब जवाहरलाल नेहरू ने यह अनुभव किया कि वे कुछ अधिक नहीं कर सकते तो तीन साल के कार्यकाल में दो साल बाद ही त्यागपत्र दे दिया लेकिन जवाहरलाल नेहरू ने अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर दिया। इस बात का पता इससे चलता है कि इलाहाबाद के अंग्रेज कमिश्नर ने उनकी योग्यता और निष्पक्षता की सराहना की थी।[1]

(ब) काँग्रेस महामंत्री के रूप में[2]

दिसम्बर 1923 में कांग्रेस का सालाना अधिवेशन कोकनाडा (दक्षिण) में हुआ। मौलाना मुहम्मद अली उसके अध्यक्ष थे, और जैसी कि उनकी आदत थी, सभापति की हैसियत से उन्होंने अपनी लम्बी–चौड़ी स्पीच पढ़ी। लेकिन वह थी दिलचस्प। उसमें उन्होंने यह दिखाया कि मुसलमानों में किस तरह राजनैतिक व साम्प्रदायिक भावना बढ़ती गई। उन्होंने बताया कि 1908 में आगाखां के नेतृत्व में जो डेपुटेशन वाइसराय से मिला था और जिसकी कोशिश से ही सरकार ने पहली बार पृथक निर्वाचन के पक्ष में घोषणा की थी, वह एक

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 38

2. नेहरू, जवाहरलाल– मेरी कहानी, पृ0सं0 149, 150

कैसी जबर्दस्त चाल थी, जिसके मूल में खास सरकार का ही हाथ था।

मुहम्मद अली ने जवाहरलाल को उनकी इच्छा के बहुत खिलाफ, अपने सभापतिकाल में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का सेक्रेटरी बनने के लिये राजी किया। कांग्रेस की भावी नीति के सम्बन्ध में जवाहरलाल नेहरू को साफ–साफ पता न था, ऐसी हालत में जवाहरलाल नेहरू नहीं चाहते थे कि व्यवस्था–सम्बन्धी कोई जिम्मेदारी अपने ऊपर लें। लेकिन जवाहरलाल नेहरू मुहम्मद अली को इंकार नहीं कर सकते थे क्योंकि जवाहरलाल नेहरू और मु0 अली ने महसूस किया कि कोई दूसरा सेक्रेटरी शायद नये अध्यक्ष के साथ उतनी अच्छी तरह से काम न कर सके जितना कि जवाहरलाल। रुचि और अरुचि दोनों वह सख्त आदमी थे। और सौभाग्य से जवाहरलाल नेहरू उन लोगों में से थे, जो उनकी 'रुचि' में आते थे। हम दोनों प्रेम और परस्पर की गुणग्राहकता के धागे से बंधे हुये थे। मु0 अली प्रबल धार्मिक–और जवाहरलाल की समझ से बुद्धि–विरुद्ध धार्मिक–थे और जवाहरलाल नेहरू वैसे नहीं थे। मगर जवाहरलाल नेहरू उनकी सरगर्मी, अतिशय कार्यशक्ति और प्रखर बुद्धि से आकर्षित थे। वह बड़े चपल वाक्पटु थे। लेकिन कभी–कभी उनका भयंकर व्यंग दिल को चोट पहुंचा देता था और इससे उनके बहुतेरे दोस्त कम हो गये थे। कोई बढ़िया टिप्पणी मन में आई तो उसे मन में रख लेना उनके लिये असम्भव था–फिर उसका नतीजा चाहे कुछ हो। मु0 अली के सभापति–काल में हम दोनों की गाड़ी ठीक–ठाक चली–हालांकि कई छोटी–छोटी बातों में हमारा मतभेद रहता था। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में जवाहरलाल नेहरू ने एक नया रिवाज चलाया था–किसी के भी नाम के आगे–पीछे कोई प्रत्यय या पदवी वगैरा न लिखी जाय। महात्मा, मौलाना, शेख, सैयद, मुन्शी, मौलवी और आजकल के श्रीयुत और श्री मिस्टर तथा एस्क्वायर वगैरा, बहुत–से ऐसे मानवाचक शब्द हैं और इनका प्रयोग बहुतायत से और अक्सर अनावश्यक होता है कि जवाहरलाल नेहरू इस बारे में एक अच्छा उदाहरण पेश करना चाहते थे। लेकिन जवाहरलाल नेहरू ऐसा कर नहीं पाये। मुहम्मद अली ने बहुत बिगड़कर जवाहरलाल नेहरू को एक तार भेजा, जिसमें प्रधान की हैसियत से जवाहरलाल नेहरू को आज्ञा दी थी कि जवाहरलाल नेहरू पुराने तरीके से ही काम लो और खासतौर पर गांधी जी को हमेशा

महात्मा लिखा करूं।

काकिनाडा–कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरू का भाषण[1]

जनाब सदर, हजरात, (अंग्रेजी–अंग्रेजी की आवाजें) इजाज़त दीजिये हिन्दी में बोलने की। जो रिजोल्यूशन मुझे आपके सामने पेश करने को दिया गया है उसको मैं अंग्रेजी में पढ़ता हूँ : ''इस कांग्रेस की राय में हिन्दुस्तान के लोगों को क़ौमी काम करने के लिये पूरी तौर पर तैयार करने के लिये इस बात की ज़रूरत है कि उनको इस बात की ख़ास तौर से ट्रेनिंग दी जाय। यह कांग्रेस इसलिये अपनी खुशी जाहिर करती है इस बात पर कि ऐसा किया जा रहा है– एक वालंटियरों का संगठन सारे हिन्दुस्तान का बनाया जा रहा है। और बर्किंग कमेटी को हिदायत करती है कि जो मुनासिब काम इसके मुतल्लिक हो, करे और ऐसे वालंटियर संगठन बनावे, उन लोगों के मशविरा के साथ जो वालंटियरों का काम करने के लिये हमेशा कोशिश करते हैं और उनको अपने काबू में रखे रहे, लेकिन काबू का यह मतलब है कि उनके अंदरूनी कामों में दखल न हों।''

हज़रात, तीन वर्ष से ज्यादा हुआ जब इस कांग्रेस के शांतिमय असहयोग की लड़ाई कलकत्ते में शुरू की गई। उस वक्त से महात्मा जी ने भी जोर दिया और बराबर इस पर जोर दिया जा रहा है कि यह लड़ाई शांति की है और इसमें किसी पर जुल्म नहीं कर सकते, न हथियार उठा सकते हैं। आप यह भी जानते हैं कि यह लड़ाई, लड़ाई ही है। अगर आप इसमें वाकई कामयाब होना चाहते हैं तो यह बतला देना चाहता हूं कि आपको सिपाही होना पड़ेगा। अहिंसा का यह मानी नहीं है कि हम–आप बुजदिल हों, परदे में छिपे रहें। महात्मा जी ने भी यही कहा कि लड़ने वाले सिपाहियों से अहिंसक सिपाहियों को दुगुना–तिगुना हिम्मत और जुर्रत होना चाहिये। तो यह लड़ाई तो शुरू की और सवा तीन वर्ष तक जारी रक्खी, और इस अर्से में जो कुछ हुआ है, आप देखते हैं कि किस तरह हज़ारों भाइयों ने कुर्बानी की। हजारों भाई–बहिनों ने सरकार का मुकाबिला किया और बावजूद इसके कि उन शख्सों ने सर नहीं झुकाया। आपने यह भी देख लिया और देखते हैं कि इतनी कुर्बानी का नतीजा हासिल नहीं

---

1. भारतीय राष्ट्रीय महासभा के 1923 में हुये 38वें अधिवेशन की रिपोर्ट पृ0सं0 118,119

हुआ, जो होना चाहिये था। इसकी वजह क्या है ? आपने ख्याल किया है या नहीं ? इसकी वजह यह है कि हमारा निज़ाम ठीक न था। हमारा निजाम दुरुस्त होता, संगठन ठीक होता तो अंग्रेजी सरकार हिन्दुस्तान में नहीं होती। मुझे तो आजकल बहुत इस बात का ख्याल होता है कि अंग्रेजी सरकार को यहां रहना चाहिये या नहीं। हमें अपने ध्येय को बदलना है या नहीं ? शायद आपके सामने यह मज़मून पेश हो या नहीं। मैं तो यह चाहता हूं कि फिलहाल की तर्जेअमल इस वक्त तक जड़ से उखड़ गई होती। अगर आप अभी से कोशिश नहीं करेंगे, कितने भी नेता आ जायें मगर यह नहीं कीजियेगा तो मुसीबत भी झेलियेगा। कुर्बानी भी होगी, लेकिन नतीजा वह नहीं होगा, जो होना चाहिये। देखना होगा कि रास्ते पर चलते हैं या नहीं, हजरात! न सिर्फ देखना होगा कि जिस रास्ते पर चलना है वह ठीक है या नहीं, बल्कि उस पर चलते हैं या नहीं।

मैं जो प्रस्ताव पेश करता हूँ, उसके मानी यह है कि ऐसी कोशिश करें कि संगठन ठीक हो, ट्रेनिंग आये, हिन्दुस्तानी सिपाही बनें। हम तक़रीर करते हैं, लेकिन सिपाही नहीं हैं। बात करना थोड़ा होना चाहिये, थोड़ी तैयारी का कार्य करना है। जब तक सिपाही नहीं होंगे तब तक सिपाही कौम का मुकाबिला नहीं कर सकते, जो तैयार है। हम–आप अंग्रेजों का मुकाबिला करते हैं। अगर हम हुकूमत कर सकते हैं तो हमें तैयार होना चाहिये, मुल्क के लिये कुर्बानी करने पर। जिस वक्त आपकी कुर्बानी उनसे ज्यादा होगी, उस वक्त आप उनको हटा सकते हैं। अगर आप उसके बिना अपना काम करना चाहते हैं तो आपका फर्ज है कि वालंटियरों को जोर से बनावें।

आपका एक सवाल यह होगा कि यह कैसा संगठन है? कौन इसको अपने हाथ में रक्खेगा। कहीं यह कांग्रेस का मुकाबिला तो नहीं करेगा ? या और लोग तो इसके निजाम में दखल नहीं देंगे ? पहली बात यह है कि यह वालंटियर संगठन आल इण्डिया और वर्किंग कमेटी का मातहत है, यानी वर्किंग कमेटी से कहा जाता है कि ऐसे संगठन बनावें और मशविरा करें उन लोगों से जो इसके बनाने की कोशिश करते हैं। इसके साथ यह भी कहा जाता है कि कब्जा रक्खें, देखें कि उसूल में कोई गलती तो नहीं हो जाती, मगर

छोटी–मोटी बातों में दखल न दें। हर एक बात में दखल न देने से काम नहीं हो सकता, यह दो बातें रक्खी हैं। आप इसकी लापरवाही नहीं करेंगे। अपने–अपने सूबों में जाकर ठीक–ठीक इन्तजाम करेंगे। अगर आप उस पर अमल करेंगे, इसका असर यही नहीं होगा कि आप वालंटियरों के कायदे सीख जायेंगे, बल्कि नतीजा यह होगा कि लोग आपस में बहस करते हैं, अफसर की हुकूमत मानने में बातें करते हैं, आपस में बहस करने लगते हैं, उससे परहेज होगा। कोई फौज आज तक नहीं लड़ी जो आपस में बहस करे। सबका निज़ाम एक हो। एक विश्वास के अनुयायी हों। एक तरफ आप हों, एक तरफ सूबे को देखें।

एक सूबे में सिक्ख अकाली, जो पंजाब में सत्याग्रह कर रहे हैं, याद रखिये कि इस वक्त पूरी सिख कौम गवर्नमेण्ट के खिलाफ करती है। उन्होंने सोच लिया है, झगड़ा करेंगे, सत्याग्रह करेंगे। इस मुल्क के हर हिस्से में अकाली सत्याग्रह कर रहे हैं। क्या वजह है कि यह कौम देखने में तादाद में कम है, अंग्रेजी सरकार का मुकाबिला कर सकती है, उनमें कोई बहादुरी ज्यादा नहीं है, कुर्बानी ज्यादा नहीं है। बहुत हिन्दू–मुसलमान मिलेंगे, जो बेशी कुर्बानी कर सकते हैं, लेकिन ट्रेनिंग नहीं है, जो हिन्दू–मुसलमानों में होनी चाहिये, उनका निज़ाम दुरुस्त है, हमारा नहीं है।

मैं चाहता हूं कि हज़रात, आप इसको मंजूर कीजिये, जाकर अपने–अपने सूबों में फौज तैयार कीजिये, जो लड़ सकें, मुसीबतों का मुकाबिला कर सकें, मुल्क की सेवा करें, अहिंसा के साथ सेवा करें।

१०. १९२८ में नेहरू विज्ञप्ति और जवाहरलाल का असंतोष

मार्च 1926 में जवाहरलाल तपेदिक से पीड़ित अपनी पत्नी की चिकित्सा के लिये स्विट्जरलैण्ड चले गये। उनका विचार छः मास बाद भारत लौट आने का था परन्तु वह दिसम्बर 1927 तक स्वदेश नहीं लौट सके। जिन दिनों उनकी पत्नी स्विट्जरलैण्ड के सैनेटोरियम में थीं, उस लम्बी अवधि में जवाहरलाल को अध्ययन तथा चिंतन का अवसर मिला। यहां से उन्होंने अपने देश की राजनीति को नये परिप्रेक्ष्य में देखा। उन्हें लगा कि अधिकांश राजनीतिक दलों तथा रानीतिज्ञों का दृष्टिकोंण बहुत ही संकीर्ण तथा साम्प्रदायिक है। उन्होंने अनुभव किया कि उनके देश की समस्यायें विशुद्ध राजनीतिक दृष्टिकोण से हल नहीं की जा सकतीं। उन्हें यह विश्वास हो गया कि ब्रिटिश संसद द्वारा तैयार किये गये नये संविधान से भारत तब तक प्रगति के मार्ग पर बहुत दूर तक आगे नहीं बढ़ सकता, जब तक ऐसे सामाजिक—आर्थिक परिवर्तन न किये जायें जिन्हें विदेशी अफसरशाही ने अपनी अनुदारनीति के कारण तथा इस आशंका से रोक रखा था कि इससे कहीं निहित स्वार्थ रखने वाले लोग नाराज न हो जायें।

जवाहरलाल के यूरोप के दौरे की सबसे महत्वपूर्ण घटना फरवरी, 1927 में घटी, जब उन्होंने ब्रुसेल्स में उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध सम्मेलन में भाग लिया। वहां, मध्य तथा सुदूरपूर्व, उत्तरी अफ्रीका, मध्य तथा दक्षिण—अमरीका, इटली, फ्रान्स तथा ब्रिटेन आदि कई देशों से प्रतिनिधि आये थे। जवाहरलाल इस सम्मेलन के अध्यक्ष मण्डल के सदस्य चुने गये और उन्होंने इसके एक औपचारिक—अधिवेशन की अध्यक्षता भी की थी। खुले अधिवेशन के अपने भाषण में उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर गहरी चोट की। उन्होंने भारत पर एक प्रस्ताव तैयार किया तथा उसे विचार के लिये अधिवेशन में रखा। इसमें घोषणा की गई थी कि यह सम्मेलन भारत की पूर्ण स्वाधीनता के लिये भारत के राष्ट्रीय—आन्दोलन का समर्थन करता है और इसका विचार है कि विश्व के लोगों की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये विदेशी—सत्ता से भारत की मुक्ति एक आवश्यक कदम है। जवाहरलाल ब्रुसेल्स में ही स्थापित

एक नये संगठन "साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघ" की नौ सदस्यों की कार्यकारिणी के भी सदस्य चुने गये जो स्वयं उनके तथा भारत के राष्ट्रीय–आन्दोलन के लिये सम्मान की बात थी। कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों में रोम्यां रोला, मदाम सनपाल सेन तथा अल्बर्ट–आइंस्टाइन भी थे। जवाहरलाल ने 1927 में ब्रुसेल्स कांग्रेस पर भारत में अखिल भारतीय कांग्रेस की कार्यसमिति को जो विस्तृत रिपोर्ट भेजी, उसमें तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय–स्थिति के प्रसंग में कई बातें कहीं गई थीं। उन्होंने लिखा, "सभी यूरोपीय राष्ट्र युद्ध की जोरदार तैयारी कर रहे हैं जब कि उनके प्रतिनिधि जेनेवा में निःशस्त्रीकरण पर विचार विमर्श कर रहे हैं। जब राष्ट्र युद्ध की तैयारी करते हैं और यह उम्मीद करते हैं कि लड़ाई छिड़ेगी, तब किसी के भी न चाहने के वावजूद लड़ाई छिड़ कर ही रहती है। यदि युद्ध शुरू हुआ तो पूर्वी देश इसकी लपेट में अवश्य आयेंगे।" जवाहरलाल ने भारत की पूर्ण स्वाधीनता पर अपने विचार प्रकट करते हुये कहा "यह मिस्र की तरह नहीं, जहां राष्ट्रीय संसद को डराने के लिये विदेशी सेना तैनात है तथा ब्रिटिश मंत्रिमंडल के निर्णयों को लागू कराने के लिये ब्रिटिश जहाज लंगर डाले हुये है।" भविष्य की कल्पना करते हुये जवाहरलाल ने सुझाव दिया कि जब भारत स्वाधीनता प्राप्त कर लेगा, तब हम अपनी विदेश नीति में सबसे पहले पूर्व के देशों के साथ अपने सम्बन्ध स्थापित करने पर ध्यान देंगे, क्योंकि उनके तथा हमारे बीच बहुत समानतायें हैं। नेपाल हमारा पड़ोसी तथा मित्र है। चीन, जापान, इण्डोनेशिया, अन्नाम तथा मध्य एशिया से हमारे घनिष्ठ सम्बन्ध होंगे। अफगानिस्तान, ईरान, तुर्की तथा मिस्र से भी ऐसे ही सम्बन्ध होंगे। यूरोपीय राष्ट्रों के साथ अवश्य ही हमारा सम्पर्क और बढ़ेगा। हमें उनसे बहुत कुछ सीखना है इसलिये और घनिष्ठ सम्बन्ध बनाना दोनों के लिये लाभकर होगा।[1] ब्रुसेल्स कांग्रेस में शामिल होने का जवाहरलाल पर अत्यन्त रचनात्मक प्रभाव पड़ा। उनमें वैचारिक ग्रहणशीलता आई तथा इस बीच चारों देशों के उग्रवादियों तथा क्रांतिकारियों से उनका सम्पर्क हुआ। उस समय जवाहरलाल नेहरू ने देखा कि राष्ट्रीय आन्दोलन अपने निम्नवत् रूप में था। स्थिति ऐसी थी कि हिन्दु–मुस्लिम दंगों के कारण स्वतंत्रता आन्दोलन या संवैधानिक सुधारों की दिशा में सोचा भी नहीं जा सकता था। स्वराज पार्टी

---

1. नन्दा, बी0आर0 – जवाहरलाल नेहरू, सचित्र जीवनी, पृष्ठ सं0 23,24,25 एवं 28

Confidential - Not for publication

The

Report on the International Congress against Imperialism held at Brussels from February 10th to February 15th, 1927, submitted by Jawaharlal Nehru, to the Working Committee of the Indian National Congress.

In compliance with the resolution of the National Congress, passed at Gauhati, appointing me their representative at the International Congress against Imperialism, I had the honour to attend the sessions of this International Congress and to take part in its proceedings. I am submitting separately another report for publication and for distribution amongst the members of the All India Congress Committee. But as it was not possible to refer to many matters in that report and as I wish the Working Committee to be in possession of all the facts, in order to enable them to take such action as they may deem necessary, I have decided to submit this further and more detailed report.

The Brussels Congress, regarded from any point of view, was an event of first class importance and it is likely to have far-reaching results. The English press, so far as I am aware, has given little or no publicity to it, with the exception of some labour organs. The continental press gave some more publicity but even here

रिपोर्ट का हिन्दी अनुवादः

गोपनीयः प्रकाशन के लिये नहीं

ब्रुसेल्स में 10 से 15 फरवरी 1927 तक सम्पन्न साम्राज्यवाद

के विरुद्ध अर्न्राष्ट्रीय सम्मेलन की रिपोर्ट, जो जवाहरलाल ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिणी को भेजी थी।

राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने गुवाहाटी अधिवेशन में मुझे ब्रुसेल्स के साम्राज्यवाद के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में एक प्रतिनिधि के रूप में भेजने सम्बन्धी जो प्रस्ताव पास किया था, उसके अनुसार मैं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में शामिल हुआ और इसकी कार्रवाई में भाग लिया। प्रकाशन तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सभी सदस्यों में वितरण के लिये मैं दूसरी रिपोर्ट अलग से भेज रहा हूँ। लेकिन चूंकि उस रिपार्ट में सभी बातों की चर्चा सम्भव नहीं और मैं चाहता हूं कि तथ्य कार्यकारिणी के पास रहें। मैने एक और विस्तृत रिपोर्ट पेश करने का निर्णय किया है ताकि वह वे कदम उठा सकें जो वह उचित समझें।

चाहे किसी भी दृष्टि से देखें, ब्रुसेल्स सम्मेलन एक बहुत महत्वपूर्ण घटना थी, जिसके दूरगामी परिणाम होने की सम्भावना है। मेरी जानकारी के अनुसार अपवाद स्वरूप कुछ श्रमिक संगठनों के पत्रों को छोड़कर अंग्रेजी पत्रों में इसकी या तो बिल्कुल ही चर्चा नहीं हुई या बहुत कम चर्चा हुई है। परन्तु यूरोपीय पत्रों में अवश्य ही इसका कुछ अधिक प्रचार हुआ है।

साम्प्रदायिकता, पारस्परिक कलह और गुटवाजी के कारण अपने वांछित उद्देश्यों में पूर्णरूपेण सफल नहीं हो सकी थी। जब राजनीतिक क्षितिज सबसे ज्यादा अन्धकारपूर्ण दिखाई दे रहा था, उस समय मई 1927 में गाँधी जी ने लिखा था,—"मेरी एक मात्र आशा प्रार्थना में और प्रार्थना के उत्तर में निहित है।" परन्तु राजनीतिक परिस्थितियां भी कभी—कभी अजीव रुख लेती है।

भारतीय शासन सुधार अधिनियम सन् उन्नीस सौ उन्नीस के अनुच्छेद 84 में यह प्राविधान किया गया था कि इस अधिनियम के शामिल होने के एक वर्ष पश्चात इस कानून के अन्तर्गत न्यायिक शासन व्यवस्था के क्रियान्वयन तथा उसमें सुधार, परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने के लिये एक आयोग की नियुक्ति की जायेगी। इस प्राविधान के अनुसार ऐसा आयोग 1929 में नियुक्त किया जाना था। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसकी नियुक्ति करने का निर्णय निर्धारित समय से दो वर्ष पूर्व ही अर्थात (1927) में कर लिया। परिणाम स्वरूप 8 नवम्बर, 1927 को वायसराय लार्ड इर्विन ने 1919 के सुधार अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत भारत में संवैधानिक सुधारों के लिये एक आयोग के गठन की घोषणा की। इस आयोग को इसके अध्यक्ष के नाम पर "साइमन आयोग" के नाम से पुकारा गया। इस आयोग में अध्यक्ष सरजॉन साइमन सहित सात सदस्य थे — जो सभी अंग्रेज थे। इसमें एक भी भारतीय को शामिल नहीं किया गया था। फलस्वरूप भारत के प्रायः सभी दलों और राजनीतिज्ञों ने इस आयोग का प्रबल विरोध और बहिष्कार किया और इसे "श्वेतशाही आयोग" कह कर पुकारा था। "साइमन आयोग 3 फरवरी, 1928 को बम्बई में आकर उतरा। उस दिन सम्पूर्ण भारत में हड़ताल रखते हुये आयोग का पूर्ण बहिष्कार किया गया। 30 अक्टूबर 1928 को जब आयोग लाहौर में पहुंचा तो पुलिस रेलवे स्टेशन के सामने प्रदर्शन करने वाले जनसमूह पर लाठी चार्ज कर रही थी। प्रान्त के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता लाला लाजपतराय पर लाठियों और डन्डों की भीषण वर्षा की गई।[1] इससे उनके ह्रदय पर भीषण चोट पहुंची। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उनकी मृत्यु इन चोटों के कारण ही हुई।" उनकी मृत्यु से देश भर में अपमान और क्रोध की लहर दौड़ गई। उसका परिणाम यह हुआ कि आयोग का वहिष्कार अपनी चरम सीमा पर

---

1. Nehru, J.L.: An autobiography, P - 174

पहुंच गया और दूसरी तरफ प्रदर्शनकारियों के प्रति सरकारी रवैये में और भी अधिक शक्ति आ गई। 30 नवम्बर को आयोग के विरुद्ध लखनऊ में प्रदर्शनकारियों के एक समूह का नेतृत्व करते हुये जवाहरलाल को भी पुलिस के भीषण डण्डों की मार खानी पड़ी। जिसने मोतीलाल को अत्यधिक दुखी और दुगना क्षुब्ध कर दिया। "जब साइमन आयोग की कार्यवाही चल रही थी, जिसे गाँधी जी ने 'रक्त रंजित प्रगति' कहा।" उस समय भारतीय राजनैतिक नेता वहिष्कार के रचनात्मक पक्ष के बारे में सोचकर कार्य में संलग्न थे। भारतीयों के प्रबल विरोध को देखकर भारत मंत्री वरकन हेड़ ने भारतीयों को चुनौती देते हुये कहा, "....................दो बार मैने भारत के आलोचकों को इसके लिये आमंत्रित किया है कि वे किसी संविधान के लिये खुद अपने सुझाव सामने रखें, ताकि हमें उस रूप का पता चल जाये, जिसके अनुसार उनके विचार से संविधान में संशोधन होना चाहिये। वह निमंत्रण अभी भी खुला है।

भारतीय राजनीतिक नेताओं ने वरकन हेड़ की चुनौती को स्वीकार किया और संविधान निर्माण करने पर विचार हेतु "1928 को दिल्ली में डा० एम०ए० अन्सारी की अध्यक्षता में एक सर्वदलीय सम्मेलन आयोजित किया। इस सर्वदलीय सम्मेलन की अनेकों बैठकें हुईं और इसने भारतीय संविधान के सिद्धान्तों का प्रारूप तैयार करने के लिये एक समिति नियुक्त की जो इस प्रकार थी— मोतीलाल (अध्यक्ष) के अतिरिक्त अन्य सदस्य थे। सर अली इमाम और शुरेव कुरैशी (मुस्लिम), एम०एस० अणे और जयकर (हिन्दु महासभा), सरदार मंगल सिंह (सिख लीग), तेज बहादुर सप्रू (लिवरल), एन०एम० जोशी (मजदूर दल), एवं जी०आर० प्रधान (गैर ब्राह्मण) तथा सुभाष चन्द्र वोस। जवाहरलाल नेहरू जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रधानमंत्री भी थे वे इस समिति के मंत्री नियुक्त किये गये।"

"संविधान का रूप मोतीलाल ने जवाहरलाल की सहायता से तैयार किया था। तेज बहादुर सप्रू ने जब इस प्रारूप को देखा तो वे बड़े प्रसन्न हुये इस बात का आभास मोतीलाल द्वारा जवाहरलाल को लिखे एक पत्र से मिलता है। मोतीलाल ने लिखा,— रिपोर्ट के प्रारूप को देखकर तेज बहादुर बहुत खुश हुये। टाइप किये हुये 60 पृष्ठों की इस सामग्री में उन्होंने सिर्फ 6—7 शाब्दिक परिवर्तन का सुझाव दिया और कहा कि वह "ए—वन" है। अब वे भारतीय रियासतों और उपनिवेश पद बनाम उत्तरदायी सरकार पर कुछ पैराग्राफ

लिख रहे हैं।''[1]

''एक प्रखर संविधानवादी के रूप में, इस रिपोर्ट में मोतीलाल ने निम्नलिखित सुझाव दिये थे।[2]

1. भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में सम्मिलित अन्य उपनिवेशों के समान ही ''पूर्ण उपनिवेश पद'' अविलम्ब प्रदान किया जाना चाहिये।''
2. केन्द्र और प्रान्तों में शीघ्र ही उत्तरदायी शासन की स्थापना होनी चाहिये। प्रान्तों में एक सदनीय और केन्द्र में द्वि–सदनात्मक व्यवस्थापिका होनी चाहिये। इन व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों का निर्वाचन सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर होना चाहिये।
3. शासन लोकप्रिय मंत्रियों द्वारा चलाया जाना चाहिये और उनके अपने कार्यों के लिये व्यवस्थापिका सभाओं के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये। गवर्नर जनरल की स्थिति वैधानिक प्रधान की होगी।
4. ''साम्प्रदायिकता का अन्त करने हेतु प्रथक निर्वाचन क्षेत्रों का अन्त होना चाहिये। परन्तु अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की रक्षा के लिये व्यवस्थापिका सभाओं में उनकी जनसंख्या के आधार पर स्थान सुरक्षित होने चाहिये।
5. ''नागरिकों को 19 महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मौलिक अधिकार प्रदान किये गये। इन अधिकारों की रक्षा के लिये, उच्चतम अपीलीय न्यायालय के रूप में सर्वोच्च न्यायालय की भी स्थापना होनी चाहिये।
6. देशी रियासतों को भारतीय संघ में उसी दशा में शामिल होने की अनुमति प्रदान की जायेगी, जब वे अपनी–अपनी रियासतों में पूर्ण आन्तरिक प्रजातंत्र की स्थापना कर देंगे।
7. शासन के संघात्मक स्वरूप के आधार पर केन्द्र और राज्य के मध्य शक्तियों का स्पष्ट विभाजन होगा। अविशिष्ट शक्तियां केन्द्र के पास रहेगी। रिपोर्ट में सिन्ध को बम्बई प्रान्त

---

1. Nanda, B.R. - The Nehrus P.-295
2. All Parties conference, 1928 report of the (Nehru) Committee, P.-24 to 100, 113

से पृथक कर इसका अलग प्रान्त बनाने की सिफारिश की गई थी। उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त को भी अन्य प्रान्तों के समान ही बराबर का वैधानिक स्तर प्रदान होना चाहिये।

''इस भाँति अपनी उपर्युक्त अनुशंसाओं से युक्त नेहरू रिपोर्ट संविधान निर्माण की दिशा में एक अभूतपूर्व योगदान था। यहां यह तथ्य उल्लिखित कर देना भी पूर्ण उचित होगा कि नेहरू रिपोर्ट में संविधान की रूपरेखा दी गयी थी, यह खुद कोई संविधान नहीं था।''

''वर्ष 1928 के समाप्त होते–होते नेहरू के सामने अत्यन्त कठिनाइयां आ गयी थीं, जिन्हें मुख्यतः साम्प्रदायिक दावों का समर्थन करने वाले लोग उठा रहे थे। लेकिन मोतीलाल उस विरोध को लेकर कुछ कम चिन्तित न थे जो कांग्रेसियों के ही एक गरम दल द्वारा उठाया गया था– जिसका नेतृत्व उनके स्वयं के पुत्र जवाहरलाल कर रहे थे।'' यह विरोध रिपोर्ट में ''उपनिवेशपद'' को लेकर था और कांग्रेस का यह युवक दली समूह जवाहरलाल और सुभाष के नेतृत्व में ''पूर्ण स्वाधीनता'' की वकालत कर रहा था। मोतीलाल और जवाहरलाल– पिता और पुत्र के बीच का यह संघर्ष केवल नेहरू परिवार के ही दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण नहीं है, वरन इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि इसने स्वतंत्रता आन्दोलन की दिशा पर अत्यधिक व्यापक प्रभाव डाला।

जवाहरलाल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, ''मैं नहीं समझता कि (हमारे बीच) इससे कभी पहिले या इसके कभी बाद इतना अधिक तनाव रहा।''

''दिसम्बर 1928 के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गाँधी जी ने मध्यस्थता करते हुये प्रस्ताव पेश किया। यह प्रस्ताव ब्रिटिश शासन के लिये एक अल्टीमेटम के रूप में था। प्रस्ताव का महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार था– यदि ब्रिटिश संसद इस विधान को ज्यों का त्यों 31 दिसम्बर,1929 तक या उससे पहले स्वीकार कर ले, तो कांग्रेस इस विधान को अपना लेगी वशर्ते कि राजनीतिक स्थिति में कोई परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तिथि तक ब्रिटिश संसद उसे स्वीकार न करे या इसके पहले ही अस्वीकार कर दे तो कांग्रेस देश को करबन्दी की सलाह देकर अन्य उपायों के आधार पर जिन्हें वह बाद में निश्चित करेगी, अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन चलायेगी। कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।''

११.१९२९ में लाहौर कॉंग्रेस के अध्यक्ष के रूप में जवाहरलाल नेहरू का भाषण।

1929 में कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन लाहौर में होना था। जवाहरलाल नेहरू इस अधिवेशन के सर्वसम्मत से अध्यक्ष चुने गये थे। 25दिसम्बर 1929 को वे लाहौर पहुंचे और उनका ऐसा भव्य स्वागत हुआ कि राजाओं को भी ईर्ष्या होती[1]। लाहौर कांग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन को सम्बोधित करते हुये जवाहरलाल नेहरू ने कहा–[2]

चवालीस साल तक इस राष्ट्रीय कांग्रेस ने हिन्दुस्तान की आजादी के लिये मेहनत की है। इस दौरान उसने किसी हद तक धीरे–धीरे, लेकिन यकीनन, राष्ट्रीय चेतना को उसकी लम्बी मदहोशी से जगा दिया है और राष्ट्रीय आन्दोलन का संगठन किया है। अपनी किस्मत की एक नाजुक घड़ी में अगर आज हम, अपनी ताकत और कमजोरी दोनों को जानते हुये और भविष्य के बारे में उम्मीद और अंदेशा दोनों को लिये यहाँ इकट्ठे हुये हैं, तो अच्छा है कि हमें पहला ख्याल उन लोगों का आये कि जिन्होंने किसी पुरस्कार की उम्मीद के वगैर अपनी जिन्दगी इसलिये बिता दी कि अनेक बाद आने वालों को कामयाबी की खुशी हासिल हो सके। पुराने जमाने के कितने ही महान लोग हमारे साथ नहीं हैं और बाद वाले जमाने के हम, उन्हीं के द्वारा निर्मित एक ऊँचाई पर खड़े होकर, अक्सर उनके कामों की बुराई करने लगते हैं। यही दुनिया का तरीका है। लेकिन आपमें से कोई भी उन्हें या उस बड़े काम को नहीं भूल सकता जो उन्होंने एक आजाद हिन्दुस्तान की बुनियाद डालने के लिये किया था। और न हममें से कोई उन पुरुषों और स्त्रियों की शानदार मंडली को ही कभी भूल सकता है जिन्होंने, बिना नतीजों का ख्याल किये, एक विदेशी आधिपत्य की जबर्दस्त मुखालफत करते हुये अपनी जवान जानें दे दीं, या अपनी जानदार जवानी कष्ट और यातना में बिताई। उनमें से कितनों के नाम तक हमें मालूम नहीं। लोगों से वाहवाही पाने की उम्मीद किये बगैर वे चुपचाप

---

1. Tribune, Dec. 27, 1929
2. उपाध्याय, देवेन्द्र – जवाहरलाल नेहरू बहुआयामी व्यक्तित्व, पृ0सं0 151–161

काम करते और कष्ट झेलते रहे, और अपने कलेजे के खून से उन्होंने हिन्दुस्तान की आजादी के नाजुक पौधे को सींचा। हममें से बहुतों ने जहाँ मौका देखा अपना रंग बदल डाला और समझौते कर लिये, और वे तनकर खड़े रहे और लोगों की आजादी के हक का एलान करते रहे और दुनिया के सामने उन्होंने यह घोषणा की कि गिरी हुई हालत में भी हिन्दुस्तान में जिन्दगी की चिंगारी मौजूद है, क्योंकि जुल्म और गुलामी के आगे झुकने से उसने इन्कार कर दिया है। एक–एक ईंट करके हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की इमारत खड़ी की गई है, और अक्सर तो हिन्दुस्तान अपने शहीद बेटों की बिछी हुई लाशों के ऊपर से होकर आगे बढ़ा है। गुजरे जमाने के वे महान लोग भले ही हमारे साथ न हों, लेकिन यह गुजरा जीवन अब भी हमारे अन्दर है, और हिन्दुस्तान अब भी जतीनदास और विजाया जैसे शहीद पैदा कर सकता है। यह है शानदार बपौती जिसे हमने विरासत में पाया है, और आप उसे मेरे हाथों में सौंपना चाहते हैं। अच्छी तरह जानता हूँ कि इज्जत की इस जगह पर मैं आपकी मर्जी की वजह से उतना नहीं हूँ जितना कि संयोग से। आपकी मर्जी एक अन्य शख्स को चुनने की थी– ऐसे शख्स को जो आज की हमारी इस दुनिया में बांकी सबों से कहीं ऊँचा है– और इससे ज्यादा अक्लमन्दी का दूसरा कोई चुनाव नहीं हो सकता था। लेकिन किस्मत ने और उस शख्स ने मिलकर साजिश कर डाली और आपकी और मेरी ख्वाहिश के खिलाफ जिम्मेदारी की इस खौफनाक गद्दी पर मुझे ठेल दिया। इस धर्मसंकट में मुझे डालने के लिये क्या मैं आपका एहसान मानूँ? लेकिन, एक शख्स पर भरोसा रखने के लिये मैं सचमुच ही आपका एहसानमन्द हूँ, जिसे खुद अपने ऊपर भरोसा नहीं है, भले ही यह एक अजीब बात लगती हो। आप बहुत–से ऐसे महत्वपूर्ण मसलों पर बहस करेंगे जो आज हमारे सामने मौजूद हैं, और आपके फैसले हिन्दुस्तान की तवारीख को एक मोड़ दे सकते हैं। लेकिन मसले सिर्फ आप लोगों के ही सामने नहीं हैं। सारी दुनिया आज एक विराट प्रश्नचिन्ह है, और हर मुल्क और हर जाति की हालत डावाँडोल है। श्रद्धा–विश्वास वाला वह जमाना गुजर गया और उसके साथ–साथ उसकी वजह से आने वाले इत्मीनान और टिकाऊपन भी गये और अब हर बात को लेकर सवाल किये जाने लगे हैं, भले ही वे हमारे बाप–दादों को बिल्कुल अटल या पवित्र दिखाई देते रहे हों। हर जगह शक और बेचैनी है, और राज्य और समाज की बुनियादें पलटने लग गई हैं। स्वतन्त्रता, न्याय, जायदाद, यहाँ तक कि परिवार तक

के पिछले जमें हुये विचारों पर हमले किये जाने लगे हैं, और उनका नतीजा क्या होगा अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। जान पड़ता है कि हम इतिहास की एक विघटनकारी अवधि में होकर गुजर रहे हैं, जबकि दुनिया उस प्रसव–वेदना में है जिससे एक नई व्यवस्था का जन्म होगा। जबकि सभी कुछ बदलता जा रहा है, हिन्दुस्तान के इतिहास के दूर से चले आने वाले प्रवाह की ओर नजर दौड़ाना अच्छा है। तवारीख में हिन्दुस्तान के सामाजिक ढाँचे की उस अद्‌भुत स्थिरता के मुकाबले शायद ही कोई बात ज्यादा ध्यान देने लायक होगी जो अनगिनत विदेशी प्रभावों से टक्कर लेकर परिवर्तन और संघर्ष के हजारों साल के बीच भी कायम रही। इसीलिये वह उनका मुकाबला कर सकी। उसने हमेशा उन्हें अपने अन्दर खपा लेना चाहा और उनके प्रति सहिष्णुता बरती। उसका मकसद दूसरी संस्कृतियों को मिटाना नहीं बल्कि उनके बीच एक संन्तुलन कायम करना था। अपनी–अपनी संस्कृति को लेकर रहने का एक दूसरे का हक मानते हुये आर्य और अनार्य दोनों ही एक साथ यहाँ बसे रहे और पारसियों– जैसे जो बाहरी लोग भी यहाँ आते गये, उनका भी स्वागत हुआ और उस सामाजिक ढाँचे में जगह मिली। मुसलमानों के आने के साथ–साथ यह सन्तुलन बिगड़ा, लेकिन उसे भी हिन्दुस्तान ने दुरुस्त करने की कोशिश की, और बहुत हद तक कामयाब भी हो गया। मुसीबत की बात यह हुई कि जब तक हम अपने आपसी झगड़ों को निपटा पाते उसके पहले ही हमारा राजनीतिक ढाँचा बिखर गया, अंग्रेज आ पहुंचे, और हम गिर पड़े। एक स्थिरतापूर्ण समाज का विकास करने में हिन्दुस्तान की कामयाबी जरूर बहुत बड़ी थी, लेकिन एक बड़े ही महत्वपूर्ण मामले में वह नाकामयाब रहा। और चूंकि यहाँ वह नाकामयाब रहा, इसीलिये वह गिरा और अभी तक गिरा पड़ा है। समानता के इस मसले का कोई हल नहीं निकाला गया। हिन्दुस्तान ने जानकर इस ओर से आँखें मूँद लीं, और विषमता की बुनियाद पर अपने सामाजिक ढाँचे को खड़ा रखा, और इसी नीति के दर्दनाक नतीजे हम भोग रहे हैं– हमारे लाखों लोग, कल तक दबाकर रखे गये और उन्हें विकास के मौके ही नहीं दिये गये। यूरोप में जब मजहबी लड़ाई छिड़ी हुई थी और ईसामसीह के नाम पर जब ईसाई लोग एक–दूसरे को कत्ल कर रहे थे, हिन्दुस्तान के अन्दर सहिष्णुता थी, हालांकि आज, अफसोस वह सहिष्णुता शायद ही दिखाई देती हो। किसी हद तक धार्मिक उदारता पा लेने के बाद यूरोप ने राजनीतिक स्वतन्त्रता और राजनीतिक और कानूनी

समानता पाने की कोशिश की। इन्हें भी पा लेने पर उन लोगों को यह महसूस हो रहा है कि आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता के बिना वे बेमानी से हो जाते हैं। और इस तरह आज राजनीति का कुछ ज्यादा मतलब नहीं रह गया है, और सबसे ज्यादा अहम सवाल सामाजिक और आर्थिक समता का है। हिन्दुस्तान को भी इस मसले का कोई हल खोजना होगा, और जब तक वह ऐसा नहीं करता उसके राजनीतिक और सामाजिक ढाँचे टिकाऊ नहीं हो सकते। यह जरूरी नहीं कि वह हल किसी दूसरे मुल्क के तरीके पर ही हो। अगर उसे टिकाऊ होना है तो उसे अपने ही लोगों की प्रकृति को अपना आधार बनाना होगा और उसी के चिन्तन और संस्कृति के नतीजे के तौर पर यह हल निकलेगा। और जब यह हल मिल जायेगा तब अलग—अलग जमातों के बीच मौजूदा वाहियात मतभेद आप—से—आप दूर हो जायेंगे जो आज हमें परेशान कर रहे हैं और आजाद नहीं होने दे रहे हैं। वैसे तो असली मतभेद ज्यादातर खत्म हो भी चुके हैं, लेकिन एक—दूसरे से डर और अविश्वास और शक—शुबहे कायम है और झगड़े के बीज बोते रहते हैं। हमारे सामने सवाल इन मतभेदों को दूर करने का नहीं है। वे मजे से साथ—साथ कायम रह सकते हैं और कई पहलुओं वाली हमारी संस्कृति को समृद्ध करते रह सकते हैं। मसला तो यह है कि डर और शक—शुबहों को किस तरह दूर किया जाय, और चूंकि वे नजर आने वाली चीजें नहीं हैं, इसलिये उन तक पहुंचना मुश्किल हो जाता है।.....तर्क और कोरी दलील भोथरे हथियार ही हैं। सिर्फ विश्वास और उदारता के जरिये ही उन्हें जीता जा सकता है। मैं तो सिर्फ यह उम्मीद ही कर सकता हूं कि जुदा—जुदा सम्प्रदायों के नेताओं के अन्दर विश्वास और उदारता बहुतायत से होगी।

....मजहब में कट्टरपन और अंधविश्वास के लिये मेरे अन्दर कोई मुहब्बत नहीं है और मुझे खुशी है कि वे कमजोर पड़ते जा रहे हैं। मुझे किसी भी शक्ल में सम्प्रदायवाद से भी मुहब्बत नहीं है। मेरे लिये यह समझ पाना मुश्किल है कि राजनीतिक या आर्थिक अधिकार किसी एक मजहबी जमात या सम्प्रदाय के सदस्य होने पर निर्भर करें। विश्व—शान्ति की बड़ी चर्चा है और दुनिया के राष्ट्रों द्वारा समझौते पर दस्तखत किये गये हैं। लेकिन समझौतों के बावजूद हथियार बढ़ रहे हैं और लच्छेदार बातों के सिवा शान्ति की देवी

को दूसरी कोई श्रद्धांजलि नहीं दी जा रही है। शान्ति तभी आ सकती है जब लड़ाई की वजहों को दूर कर दिया जाय। जब तक एक मुल्क की दूसरे तक हुकूमत है, या एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण, तब तक मौजूदा व्यवस्था को उलट देने की कोशिशें हमेशा होती रहेंगी और कोई भी स्थिर सन्तुलन कायम नहीं रह पायेगा। साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के अन्दर से शान्ति कभी नहीं आ सकती। और चूँकि ब्रिटिश साम्राज्य इन्हीं का हामी है, और आम जनता का शोषण ही उसका आधार है, इसलिये हम खुशी से इसमें अपने लिये कोई जगह नहीं बना सकते। हमें मिलने वाला कोई भी फायदा तब तक कोई कीमत नहीं रखता जब तक कि वह हमारी जनता के ऊपर लदे दुःखदायी बोझ को उतार फेंकने में मदद नहीं करता। एक बड़े साम्राज्य का बोझ भारी होता है, और उसे हमारे लोगों ने लम्बे अरसे तक बर्दाश्त किया है। उनकी पीठें झुक गई हैं और उनका हौसला करीब–करीब पस्त हो चुका है। अगर शोषण का यह बोझ कायम रहा है तो राष्ट्रमण्डल की साझेदारी में वे कैसे हिस्सा बंटायेंगे ? हमारे सामने आज जो मसले हैं वे ऐसे निहित स्वार्थों वाले मसले हैं जिनमें से अधिकांश को ब्रिटिश सरकार ने ही पैदा किया या बढ़ावा दिया है। हिन्दुस्तानी राजा–महाराजाओं के, अंग्रेज अफसरान और अंग्रेजी पूँजी और हिन्दुस्तानी पूँजी के, और बड़ी–बड़ी जमींदारियों के मालिकों के स्वार्थों को हमेशा हमारे ऊपर थोपा जाता है और वे अपने संरक्षण के लिये हल्ला करते रहते हैं। करोड़ों दुःखी लोग जिन्हें सचमुच ही संरक्षण चाहिये, करीब–करीब बिल्कुल ही बेजबान हैं, और उनकी ओर से वकालत करने वाले भी नहीं के बराबर हैं। ब्रिटिश साम्राज्य हिन्दुस्तान में, चाहे जिस शक्ल में भी क्यों न हो, जब तक कायम है तब तक वह न सिर्फ इन निहित स्वार्थों की ताकत बढ़ायेगा बल्कि और भी नये–नये निहित स्वार्थों को पैदा करता रहेगा। और इनमें से हर एक ही हमारे रास्ते का एक नया अडंगा होगा। जुल्म करना सरकार के लिये लाजिमी हो जाता है और इसका प्रतीक है खुफिया सेवा उससे संयुक्त तुच्छ और हेय एजेन्टों, उकसाने वालों, मुखबिरों तथा चाटुकारों का एक लम्बा सिलसिला। इसलिये आज हम हिन्दुस्तान की मुकम्मिल आजादी के हामी हैं । हमारे लिये किसी तरह के भी हुक्म जारी करने के ब्रिटिश संसद के अधिकार को इस कांग्रेस ने नहीं माना है और न मानेगी ही। उससे हम कोई निवेदन नहीं करते। लेकिन दुनिया की संसद और उसके विवेक से हम जरूर यह अपील करते हैं, और उनके सामने, मुझे

उम्मीद है, हम यह एलान करेंगे कि हिन्दुस्तान अब किसी भी विदेशी हुकूमत के ताबे में नहीं हैं। आज या कल हममें भले ही अपने संकल्प को अमल में जाने लायक ताकत न हो। अपनी कमजोरी का हमें पूरी तरह पता है, और हमारे अन्दर कोई शेखी या अपनी ताकत का घमंड नहीं है, लेकिन हमारे संकल्प के मतलब या उसकी ताकत के बारे में किसी के अन्दर भी कोई ग़लतफहमी न रहे या उसे घटाकर कोई न देखे, कम–से–कम इंग्लैण्ड तो हर्गिज नहीं। मैं उम्मीद करता हूं कि हम पूरी संजीदगी के साथ, नतीजों की पूरी जानकारी रखते हुये यह संकल्प करेंगे और उससे पीछे हटेंगे भी नहीं। किसी बड़े राष्ट्र का दिमाग जब एक बार साफ हो जाता है और वह दृढ़ निश्चय कर लेता है तब ज्यादा अरसे तक यह नाकामयाब नहीं रह सकता। अगर आज हम हार जाते हैं और कल भी कोई कामयाबी नहीं मिलती तो उसके बाद वाला दिन भी आयेगा ही जो कामयाबी लायेगा।.....फिर भी हम उन मसलों को नजर–अन्दाज नहीं कर सकते जो हमें परेशान कर रहे हैं और जो हमारी लड़ाई को और भावी संविधान को बना या बिगाड़ सकते हैं। सामाजिक समन्वय और सन्तुलन को हमें अपना ध्येय बनाना है, और विघटन की उन ताकतों पर फतह हासिल करनी है जो हिन्दुस्तान के लिये घातक रहे हैं। मुझे यह साफ कबूल कर लेना चाहिये कि मैं समाजवादी और गणराज्यवादी हूँ और राजा–महाराजाओं में मेरा विश्वास नहीं है, या उस व्यवस्था में ही जो उद्योग–व्यवसाय के उन आधुनिक महाराजाओं को पैदा करती है जिनका लोगों की जिन्दगियों और किस्मत पर पिछले राजा–महाराजाओं के मुकाबले कहीं ज्यादा बड़ा अधिकार है, और जिनके तौर–तरीके में वैसा ही लुटेरापन है जैसा कि पुरानी सामन्तशाही में था। लेकिन मैं यह जानता हूं कि इस राष्ट्रीय कांग्रेस की तरह संगठित किसी संस्था के लिये, और मुल्क के मौजूदा हालात में, एक पूरे समाजवादी कार्यक्रम का अपनाया जाना शायद मुमकिन न हो सके। फिर भी हमें यह समझ लेना चाहिये कि समाजवादी विचारधारा धीरे–धीरे सारी दुनिया के ही पूरे सामाजिक ढाँचे में घर कर चुकी है, और मतभेद की अगर कोई भी बातें रह गई हैं तो करीब–करीब यही कि उस तक पहुंचने की रफ्तार और तरीके क्या रहें। हिन्दुस्तान को भी, अगर वह अपनी गरीबी और असमानता का खात्मा करना चाहता है, उसी रास्ते पर जाना होगा हालांकि वह शायद अपने अलग ही तरीके गढ़कर तैयार करे और इस आदर्श में हेरफेर करके इसे अपनी जीवनधारा की

विशिष्टता के अनुकूल बनाये। हमारी तीन बड़ी समस्यायें हैं– अल्पसंख्यक लोग, हिन्दुस्तानी रियासतें, और मजदूर एवं किसान। अल्पसंख्यक लोगों के सवाल पर मैं पहले ही कह चुका हूँ। सिर्फ इतना ही दोहराऊँगा कि अपने शब्दों और कर्मों के जरिये हमें इस बात का उन्हें पूरा भरोसा देना होगा कि उनकी संस्कृति और परम्परायें महफूज रहेंगी। हमारा तीसरा मसला सबसे बड़ा है, क्योंकि हिन्दुस्तान का मतलब ही है किसान और मजदूर, और जिस हद तक हम उन्हें ऊपर उठाते और उनकी जरूरतों को पूरा करते हैं, उसी हद तक अपने काम में कामयाब होते हैं। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की ताकत कितनी बढ़ी है इसे इसी बात से नाप सकते हैं कि हम कितनी दूर तक उसके साथ हैं। हम उन्हें तभी अपने साथ ला सकते हैं जबकि उन्हीं के हितों का समर्थन करें, जो कि दरअसल हमारे मुल्क का भी हित हैं। कांग्रेस ने अक्सर उनकी तरफ अपना सद्भाव जाहिर किया है, लेकिन उससे आगे वह नहीं गई है। यह कहा जाता है कि कांग्रेस को पूँजी और श्रम के बीच और जमींदार और काश्तकार के बीच तराजू के पलड़ों को बराबर रखना चाहिये। लेकिन तराजू का एक ओर का पलड़ा ही तो बेहद वजनी रहा है, अब भी है, और पिछली स्थिति को कायम रखने का मतलब है अन्याय और शोषण को ही कायम रखना। इसे दुरुस्त करने का एक ही रास्ता है, कि एक वर्ग के ऊपर कायम दूसरे वर्ग के आधिपत्य को खत्म कर दिया जाये। सामाजिक और आर्थिक तब्दीली के इस आदर्श को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने कुछ महीने पहले बम्बई में पास किये गये अपने एक प्रस्ताव के जरिये मंजूर कर लिया था। मैं उम्मीद करता हूं कि यह कांग्रेस भी उस पर अपनी मुहर लगा देगी, और इससे भी आगे बढ़कर ऐसी तब्दीलियों का एक प्रोग्राम बना डालेगी जिन्हें फौरन अमल में लाया जा सकता हो। इस कार्यक्रम में शायद पूरी कांग्रेस आज बहुत आगे नहीं जा सकती। लेकिन आखिरी आदर्श को उसे अपने सामने रखना ही होगा और उसके लिये काम करना होगा। सवाल मालिक या जमींदार द्वारा महज मजदूरी या खैरात दिये जाने का नहीं है। उद्योगों में या जमीन के मामले में बपौती समझकर पेश आना खैरात की ही एक शक्ल है, और इस बुराई को खत्म न कर पाने की टीस तथा पूरी अक्षमता है। ट्रस्टी वाला नया सिद्धान्त भी, जिसकी कुछ लोग वकालत करते हैं, उतना ही बेकार है। क्योंकि ट्रस्टी वाले सिद्धान्त का मतलब है कि अच्छा या बुरा करने की ताकत खुद ही ट्रस्टी बन बैठे शख्स के पास है, और वह उसका इस्तेमाल

अपनी मर्जी के ही मुताबिक करेगा। अगर निष्पक्ष ट्रस्टी कोई हो सकता है तो राष्ट्र ही, न कि कोई एक शख्स या जमात। बहुत–से अंग्रेज ईमानदारी के साथ अपने को हिन्दुस्तान का ट्रस्टी मानते हैं, लेकिन फिर भी हमारे मुल्क की उन्होंने क्या हालत कर डाली है। हमें यह तय करना है कि किनके फायदे के लिये किसी उद्योग–व्यवसाय को चलाया जाना है और जमीन से अन्न पैदा करना है। आज जमीन से पैदा होने वाला प्रचुर उत्पादन किसान के लिये नहीं है और न उस पर काम करने वाले मजदूर के लिये ही; और उद्योगों का प्रमुख काम यही माना जाता है कि वे लखपतियों और करोड़पतियों को पैदा करें। फसल कितनी भी सुनहरी क्यों न हो और मुनाफा कितना भी बड़ा क्यों न हो, हमारे देशवासियों की कच्ची झोपड़ियाँ और टूटी–फूटी मड़ैया, और उनका नंगापन, ब्रिटिश साम्राज्य की शान तथा हमारी मौजूदा सामाजिक व्यवस्था का सबूत देती हैं। इसलिये हमारे आर्थिक कार्यक्रम की बुनियाद होनी चाहिये इन्सानियत वाला नजरिया और रुपये के लिये इन्सान को कुर्बान नहीं कर दिया जाना चाहिये। अगर कोई उद्योग अपने मजदूरों को भूखा रखे बिना नहीं चलाया जा सकता तो उस उद्योग को बन्द कर दिया जाये। अगर जमीन पर काम करने वाले मजदूरों को पेट–भर खाने को नहीं मिलता तो जो बिचौलिये उनके पूरे हिस्से से उन्हें महरूम रखते हैं उन्हें जाना होगा। खेत या कारखाने में काम करने वाले हर मजदूर का अगर कम–से–कम भी हक माना जाये तो उसे जो न्यूनतम मजदूरी दी जाय वह इतनी तो हो ही कि उससे वह मामूली आराम की जिन्दगी बसर कर सके और कामों के उसके घंटे भी इन्सानियत का खयाल करके ही तय किये जायें ताकि उसकी ताकत और हिम्मत जवाब न दे जाये। सर्वदलीय समिति ने इस सिद्धान्त को मंजूर कर लिया था और अपनी सिफारिशों में उसे शामिल किया था। मैं उम्मीद करता हूँ कि कांग्रेस भी ऐसा ही करेगी,और फिर इसके स्वाभाविक नतीजों को बरदाश्त करने के लिये भी तैयार रहेगी। इसके अलावा यह भी कि मजदूरों की, एक बेहतर जिन्दगी बसर करने की, जानी–मानी माँगों को वह मंजूर करेगी, और अपने को संगठित करने और उस दिन की तैयारी करने में, जबकि वे सहकारिता के आधार पर उद्योगों पर नियन्त्रण कर सकें, उनकी हर तरह की मदद करेगी। लेकिन औद्योगिक मजदूर वर्ग तो हिन्दुस्तान का एक छोटा–सा ही हिस्सा है, हालांकि वह तेजी के साथ एक ऐसी ताकत बनता जा रहा है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। लेकिन मदद

की सबसे ज्यादा तो जरूरत तो उस किसान वर्ग को है, जो करूणाजनक हालत में तड़प रहा है। हमारा कार्यक्रम उनकी मौजूदा हालत से निपटने के लिये बनना चाहिये। असली राहत तो जमीन के कानूनों में और जमीन की पट्‌टेदारी की मौजूदा व्यवस्था में भारी तब्दीली करके ही दी जा सकती है। हमारे बीच बहुत–से बड़े–बड़े जमींदार–ताल्लुकेदार हैं, और हम उनका स्वागत करते हैं। लेकिन उन्हें यह महसूस करना होगा कि बड़ी–बड़ी जमींन जायदादों पर निजी प्रभुत्व, जो कि यूरोप के पिछले सामन्तवाद से मिलती–जुलती एक स्थिति का ही नतीजा है, सारी दुनिया से तेजी के साथ उठता जा रहा है। यहाँ तक कि उन मुल्कों में भी पूँजीवाद के मजबूत गढ़ है।, बड़ी–बड़ी जमीन जायदादों को छोटे–छोटे हिस्सों में बांटकर उन किसानों को दिया जा रहा है जो उन पर काम करते हैं। हिन्दुस्तान में भी ऐसे बड़े–बड़े इलाके हैं जहाँ किसानों की ही मिल्कियत है, और इस प्रथा को हमें मुल्क भर में जारी करना होगा। मैं उम्मीद करता हूं कि ऐसा करने में हमें कम–से–कम कुछ बड़े जमींदारों और ताल्लुकेदारों का सहयोग तो मिलेगा ही। कांग्रेस के लिये इस सालाना बैठक में कोई विस्तृत आर्थिक कार्यक्रम तैयार करना मुमकिन नहीं होगा। यह तो सिर्फ कुछ आम उसूल ही तय कर सकती है, और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को हिदायत दे सकती है कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस के और इस मामले से जिन दूसरे संगठनों का गहरा सम्बन्ध है उनके प्रतिनिधियों के साथ सहयोग करके तफसीलों को वह पूरा करे। दरअसल मुझे तो यह उम्मीद है कि इस कांग्रेस और ट्रेड यूनियन कांग्रेस के बीच सहयोग बढ़ेगा, और ये दोनों संगठन अगली लड़ाइयों में एक–दूसरे के साथ रहेंगे। जब तक हमें सत्ता नहीं मिलती तब तक ये सब सिर्फ नेक और भली उम्मीदें भर हैं, और इसलिये, हमारे सामने असल मसला यह है कि सत्ता किस तरह पाई जाये। बारीक दलीलों या बहस–मुबाहिसों या वकीलों के वाग्जाल के तरीकों के जरिये हम उसे नहीं पा सकते। उसे हम पा सकते हैं राष्ट्र के संकल्प को मनवाने के लिये जरूरी स्वीकृति पैदा करके। इसी काम में अब कांग्रेस को लग जाना है। पिछला साल हमारे लिये तैयारी का साल रहा, और कांग्रेस को फिर से संगठित और मजबूत करने के लिये हमने हर तरह की कोशिश की। नतीजे भी काफी अच्छे निकले हैं, और हमारा संगठन असहयोग आन्दोलन के बाद की प्रतिक्रिया के बाद किसी भी वक्त के मुकाबले आज कहीं अच्छी हालत में है। लेकिन हमारी कमजोरियाँ भी बहुत हैं और काफी

तौर पर जाहिर ही है। कांग्रेस कमेटियों तक में आपसी झगड़े बदकिस्मती से बहुत आम हैं और चुनावों के वक्त की तू–तू मैं–मैं हमारी सारी ताकत और सक्रियता को खत्म कर देती है। अपनी इस बहुत पुरानी कमजोरी को अगर हम नहीं जीत सकते और अपने हाल के अहंकारों से ऊपर नहीं उठते तो कोई बड़ी लड़ाई हम कैसे लड़ सकते हैं ? मैं पूरी उम्मीद करता हूँ कि मुल्क के सामने काम का एक जबर्दस्त प्रोग्राम आ जाने के बाद हमारा नजरिया बदल जायेगा और इस तरह के बेकार और कमजोर बनाने वाले झगड़ों को हम बर्दाश्त नहीं करेंगे। विदेशों में बसे हिन्दुस्तानियों के बारे में मैने अभी तक कुछ नहीं कहा है और उनके बारे में मैं ज्यादा कहने भी नहीं जा रहा हूँ। इसकी वजह यह नहीं कि पूर्वी अफ्रीका या दक्षिण अफ्रीका या फीजी या और कहीं बसे अपने भाइयों के लिये, जो बड़ी मुश्किल के बीच भी बहादुरी से लड़ रहे हैं, मेरे अन्दर भाईचारे की भावना नहीं है। लेकिन उनकी किस्मत का निपटारा हिन्दुस्तान के ही मैदानों में होगा, और जो लड़ाई हम छेड़ने जा रहे हैं वह जितनी हमारे लिये हैं उतनी ही उनके लिये भी है।

इस लड़ाई के लिये हमें चुस्त और दुरुस्त मशीनरी चाहिये। हमारे कांग्रेस विधान और संगठन बहुत ही पुराने पड़ गये हैं और उनकी रफ्तार धीमी है, और नाजुक वक्तों के लिये वे बेमौजूं हैं। बड़े–बड़े प्रदर्शनों का जमाना बीत चुका। अब हम ऐसी कार्रवाई चाहते हैं जिसमें शोरगुल तो न हो लेकिन जिसका मुकाबला न किया जा सके, और यह तभी हो सकता है जब हमारी फौज में कड़े से कड़ा अनुशासन हो। हमारे प्रस्ताव इस गरज से ही पास किये जायें कि उन पर अमल किया जायेगा। अगर कांग्रेस अनुशासित ढंग से कोई कदम उठाती है तो उसकी ताकत बढ़ेगी, भले ही उसके सदस्यों की संख्या कम हो। पक्के इरादेवाली छोटी जमातों ने राष्ट्रों की किस्मत पलट दी है। हुल्लड़ करने वाले मजघटों और बड़ी–बड़ी भीड़ों के लिये कुछ नहीं हुआ करता। आजादी की खुद की माँग है संयम और अनुशासन, और हममें से हरेक को व्यापक भलाई के लिये अपने आप पर नियंत्रण रखना होगा। कांग्रेस किसी छोटी अल्पसंख्यक जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती, और इसमें शामिल होने या इसका काम करने की ताकत भले ही बहुतों में न हो, लेकिन अपने उद्धार के लिये तो वे उसी

की ओर उम्मीद और हसरत के साथ आँखें लगाये हुये हैं। कलकत्ता वाले प्रस्ताव के बाद से ही यह देश अपना दिल थामे इस महान दिन का इन्तजार कर रहा है कि कांग्रेस का यह इजलास कब होता है। हममें से कोई नहीं कह सकता कि हम क्या और कब हासिल कर सकते हैं। कामयाबी हमारे हाथ में नहीं। लेकिन कामयाबी अक्सर उन्हें ही मिलती है जो हिम्मत करके कुछ कर दिखाते हैं; उन लोगों को वह शायद ही कभी नसीब होती हो जो बुजदिल है और नतीजों से हमेशा घबराते हैं। हम ऊँचे दाँव लगाकर लड़ते हैं, और अगर हम बड़ी–बड़ी चीजें हासिल करना चाहते हैं तो बड़े–बड़े खतरों के बीच गुजरे बिना वैसा नहीं किया जा सकता। हमें कामयाबी जल्दी मिले या देर करके, अपना काम करने और अपने मुल्क की लम्बी और शानदार तवारीख में एक गौरवपूर्ण पृष्ठ लिखने से हमें खुद हमारे सिवा और कोई नहीं रोक सकता। मुल्क के कई हिस्सों में षड्यन्त्रों के मुकदमे चल रहे हैं। उनका सिलसिला कभी खत्म नहीं होता। लेकिन गुप्त षड्यन्त्रों का जमाना अब लद गया है। अब तो इस मुल्क को विदेशी हुकूमत से छुटकारा दिलाने का एक खुला षड्यन्त्र छिड़ गया है, और साथियों, आपको हमारे देश के सभी पुरुषों और स्त्रियों को इसमें शामिल होने का न्योता दिया जा रहा है। लेकिन इसका जो पुरस्कार मिलने वाला है वह तकलीफें और जेलखाना है, और मुमकिन है कि मौत तक। लेकिन आपको यह तसल्ली जरूर रहेगी कि आपने हिन्दुस्तान के लिये–जो कितना प्राचीन है लेकिन फिर भी हमेशा जवान–आपने भी अपने हिस्से का थोड़ा–बहुत किया और मानव–समाज को उसकी गुलामी से छुटकारा दिलाने में कुछ मदद की। आपके लक्ष्य के तौर पर आजादी का ऐलान सारी दुनिया में जहाँ–जहाँ भी हिन्दुस्तानी रहते हैं, अभी से गूंजने लग गया है। वे अपना सिर ऊँचा उठा सकते हैं और उनके अन्दर उम्मीद लहराने लगी है, लेकिन याद रखिये, आज तो अपने सही रास्ते पर महज कदम ही उठाया है। जो रास्ता तय करना है वह मुश्किलों से भरा हुआ है, लेकिन यह एक बड़ी बात है कि आपने वही रास्ता अख्तियार किया। इस कांग्रेस ने पूरे मुल्क का ध्यान खींचा है। कुछ ने हमारे फैसले को पसन्द किया है और कुछ ने नापसन्द किया है। कुछ हमारी मुखालफत करने की धमकियाँ दे रहे हैं। यह तकलीफ की बात जरूर होगी, लेकिन हकीकत यही है कि कांग्रेस ने अब एक ऐसा कदम उठा

लिया है जो सिर्फ सुधार और मौजूदा व्यवस्था को चाहने वालों और उन लोगों के बीच तमीज करने में आपकी मदद करेगा जो हमारे पिछले लक्ष्य में आमूल परिवर्तन चाहते हैं, उस लक्ष्य में जिसकी बदौलत सभी तरह के लोग हमारे बीच बने रह सके और हमें अलग–अलग दिशाओं में खींचते रहे, और इस तरह हमारे आगे की प्रगति को टालते रहे। मैं इस तरह के बयानों से कि अलग हो जाने का नतीजा यह होगा कि कांग्रेस की ताकत घट जायेगी, परेशान नहीं हूँ। दुनिया की तवारीख अगर कोई एक सबक हमें सिखाती है तो वह यह है कि ताकत भेड़ों का–सा रवैया अख्तियार करने से नहीं मिलती, बल्कि अनुशासित संगठित लोगों की एक ऐसी जमात के जरिये मिलती है जो काम करने पर तुली हुई हो।

तृतीय अध्याय

1. 1 जनवरी 1930 स्वाधीनता की शपथ
2. सविनय अवज्ञा आन्दोलन में नेहरू का योगदान
3. गाँधी इर्विन समझौता व नेहरू
4. दूसरी गोलमेज–परिषद व प्रतिक्रिया – नेहरू के कार्य
5. मेकडानल्ड का साम्प्रदायिक पंचाट की प्रतिक्रिया व नेहरू के कार्य
6. कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन और नेहरू
7. 1937 में निर्वाचन व नेहरू के कार्य
8. 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध– कांग्रेस मंत्रिमण्डलों का त्यागपत्र व नेहरू
9. 1940–41 का व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन व नेहरू एक सत्याग्रही के रूप में

9. जनवरी १९३०-स्वाधीनता की शपथ

1 जनवरी, 1930 को इंकलाब जिन्दाबाद के साथ तिरंगा झंडा फहराया गया था। नेहरू ने इस मौके पर कहा था कि "कि यदि इसमें हमें शीघ्र ही सफलता मिले या विलम्ब से, इसकी हमें चिन्ता नहीं है। परिणामों की भी हमें चिन्ता नहीं है। हमारी एकता से किया गया यह प्रयास देश के इतिहास का शानदार भाग होगा।[1] नेहरू ने आगे कहा कि "आज ब्रिटिश साम्राज्य संसृति के बड़े-से-बड़े इलाकों की जनता की आकांक्षा के प्रतिकूल करोड़ों करोड़ व्यक्तियों पर शासन कर रहा है। यह सच्चा राष्ट्रमंडल या कामनवेल्थ तब तक नहीं बना सकता जब तक साम्राज्यवाद इसका मूलाधार है। और अन्य जातियों का शोषण इसके जीवन का अवलम्ब है। इस चक्रव्यूह से निकलने के लिये प्रयत्न होना आवश्यक है। शनैः शनैः यह विशाल साम्राज्य राजनीतिक रूप से छिन्न-भिन्न हो रहा है। ऐसी स्थिति में भारत के लिये सम्पूर्ण स्वाधीनता हमारा लक्ष्य है। इस कांग्रेस ने न कभी यह अंगीकार किया है और न कभी स्वीकार करेगी कि ब्रिटिश पार्लियामेंट हमारे पर शासन करें। हमें पार्लियामेंट से कोई अपील नहीं करनी है। परन्तु हम विश्व की अंतरात्मा और विश्व रूपी पार्लियामेंट में अवश्य अपील करते हैं और घोषित करते हैं कि भारत अब विदेशी दासता स्वीकार नहीं करता, सहन नहीं करता।"[2] इस अधिवेशन में इस प्रकार का प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया था-

> हमारी आस्था है कि अन्य देशों की तरह भारतवासियों का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वे स्वाधीनता प्रदान करें अपने परिश्रम के फल का उपयोग करें और जीवन की आवश्यकतायें पूरी करें ताकि विकास की समस्त सुविधायें उन्हें मिल सकें। हमारा यह भी विश्वास है कि यदि सरकार जनता के

---

1. शर्मा, जगदीश सरन - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ0सं0 315
2. भटनागर, राजेन्द्रमोहन- भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पृ0सं0 204, 205

इन अधिकारों को छीन कर उसका दमन
करती है तो जनता को यह भी अधिकार
हो जाता है कि वह उस सरकार को समाप्त
कर दे या बदल दे।

भारत में अंग्रेज सरकार ने मात्र भारतवासियों की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं किया है, अपितु उनसे जनता का शोषण, अपना अधिकार बना लिया है और आर्थिक,राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से देश को तहस–नहस कर दिया है।

हमारी यह भी आस्था है कि भारत को ब्रिटेन से सम्बन्ध विच्छेद कर पूर्ण स्वाधीनता की संप्राप्ति करनी चाहिये।

इस लम्बे प्रस्ताव में बताया गया है कि किस प्रकार ब्रिटिश माल के लिये देशी घरेलू धंधे नष्ट किये गये हैं, ब्रिटिश व्यापार की सहायता के हेतु तटकर तथा मुद्रा विनिमय चलाया गया है, भारतीयों से भाषण और संगठन की आजादी छीन ली गई है, समग्र रूप से शस्त्रविहीन बना दिये जाने के कारण भारत के वासी पुरुषत्वहीन हो गये हैं।

अतः हमारी दृढ़ आस्था है कि यदि हम अपना स्वेच्छापूर्ण सहयोग लौटा लें और उत्तेजना में भी हिंसा किये बिना कर देना बन्द कर दें, तो इस अमानवीय शासन का अंत निश्चित है।

इस तरह से यह अधिवेशन अपने समय में सबसे युवा राजनीतिज्ञ नेहरू की अध्यक्षता में इस अटूट आस्था के साथ समाप्त हो गया कि अब से भारत का लक्ष्य समग्र स्वाधीनता प्राप्त करना है। 26 जनवरी को पूर्ण स्वाधीनता दिवस मनाना भी निश्चित हुआ।

स्वाधीनता की प्रतिज्ञा[1]

रविवार, 26 जनवरी, 1930 पूर्ण स्वराज दिवस को सारे हिन्दुस्तान में होने वाली आम सभाओं में मंजूर किये जाने के लिये नीचे लिखा प्रस्ताव कार्यसमिति की ओर से जारी किया गया है। इस प्रस्ताव को सूबे की अपनी भाषा में ही सभा में पढ़ा जाय और उपस्थित लोगों से कहा जाय कि हाथ उठाकर वे अपनी मंज़ूरी ज़ाहिर करें। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियां फौरन इस प्रस्ताव का अनुवाद करा डालें और अपने—अपने सूबे में इसे दूर—दूर तक बंटवा दें।

हमारा विश्वास है कि स्वाधीनता प्राप्त करना और अपनी मेहनत के फल का उपभोग करना और जिन्दगी की जरूरी चीजों को पाना सभी लोगों की तरह भारतीय जनता का भी एक ऐसा अधिकार है जिसे छीना नहीं जा सकता, और इसी तरह उसे अपनी वृद्धि के अवसर मिल सकते हैं। हमारा यह भी विश्वास है कि अगर कोई सरकार किसी को इन अधिकारों से वंचित करती है और उस पर जुल्म करती है, तो लोगों को यह अधिकार भी है कि उसे बदल दें या हटा दें। हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता को न सिर्फ उसकी आजादी से महरूम किया है बल्कि आम जनता के शोषण पर ही अपने को टिकाया है और आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारत की तबाही कर डाली है। इसलिये हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान ब्रिटिश—सम्बन्ध को तोड़ दे और पूर्ण स्वराज हासिल करें। आर्थिक दृष्टि से हिन्दुस्तान को

---

1. इलाहाबाद में जारी, 17 जनवरी, 1930 — अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, फाइल नं0 31/1930, पृ0सं0 3—5, ने0 स्मा0 संग्र0 पु0

तबाह कर दिया गया है। हमारे देशवासियों से जो राजस्व लिया जाता है वह हमारी आमदनी के अनुपात में बहुत ही ज्यादा है। हमारी औसत आमदनी सात पैसे है, दो पैसे प्रतिदिन से भी कम, और जो भारी कर हम अदा करते हैं उसमें से 20% किसानों से उगाहे जाने वाले, भूमि–कर से वसूल किया जाता है और 3% नमक–कर से जिसका सबसे बड़ा बोझ गरीबों पर पड़ता है हाथ–कताई जैसे ग्राम–उद्योगों को नष्ट कर डाला गया है, जिसकी वजह से साल में चार महीने किसान खाली बैठे रहते हैं और हस्तशिल्पों के न रह जाने से उनकी अक्ल कुंठित होने लग जाती है, और उनके बरबाद किये गये हुनरों के बदले उन्हें, दूसरे मुल्कों की तरह, दूसरा कुछ काम नहीं दिया गया है। सीमा–शुल्क और मुद्रा–नीति में इस तरह की चालाकी दिखाई गई है कि किसानों के बोझ और भी बढ़ गये हैं। हमारे आयात में बहुत बड़ी जगह ब्रिटेन के बने माल की है और इनसे मिलने वाला सीमा–शुल्क, जिसका इस्तेमाल आम लोगों के कर के बोझ को घटाने के लिये किया जाना चाहिये था, रूस के मुकाबले हिन्दुस्तान में 44 गुना कम है और संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी के मुकाबले क्रमशः 24 गुना और 8 गुना कम भारी है। विनिमय के अनुपात को मनमानी चालाकी से इस देश के करोड़ों रुपये यहां से खिंचकर चले गये हैं। राजनैतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान की हैसियत ब्रिटिश शासन में जितनी घटा दी गई है उतनी कभी नहीं घटने पाई थी। किसी भी सुधार ने जनता को वास्तविक राजनीतिक सत्ता नहीं दी है। हममें से ऊँचे–से–ऊँचे को विदेशी प्रभुता के सामने झुकना पड़ता है। स्वतन्त्र रूप से मत व्यक्त करने और अबाध रूप से मिलने–जुलने के अधिकार छीन लिये गये हैं और हमारे देशवासियों में से कितनों ही को निर्वासित होकर विदेशों में रहने के लिये मजबूर होना पड़ता है और वे अपने घरों को नहीं लौट सकते। प्रशासन करने की सारी प्रतिभा को नष्ट कर दिया जाता है और आम जनता को गांवों के छोटे–मोटे

दफ्तरों में काम करके और किसानी के काम ही से सब्र करना पड़ता है। सांस्कृतिक क्षेत्र में शिक्षा–व्यवस्था ने हमें अपने लंगर से काट फेंका है और हमें ऐसी सीख दी गई है कि अपने को बांधने वाली जंजीरों को ही हम अपना सहारा मानने लगे हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो अनिवार्य निःशस्त्रीकरण ने हमें नामर्द बना डाला है और यहां दखल जमाकर बैठी हुई एक विदेशी फौज ने, जिसे हमारी प्रतिरोध की भावना को कुचलने के लिये घातक प्रभाव के साथ काम में लाया जाता है, हमें यह सोचने के लिये मजबूर कर दिया गया है कि हम खुद न अपनी देखभाल ही कर सकते हैं और न विदेशी हमला होने पर अपना बचाव ही, बल्कि चोरों, डाकुओं और गुण्डों के हमलों तक से अपने घरों और परिवारों की हिफाजत नहीं कर सकते।

जिस हुकूमत ने हमारे मुल्क पर यह चौगुनी आफत ढाई है उसके सामने झुकना हम इंसान और ईश्वर के खिलाफ जुर्म करना मानते हैं। लेकिन हम यह जानते हैं कि आजादी हासिल करने का सबसे ज्यादा कारगर तरीका हिंसा का रास्ता नहीं है। इसलिये हम, जहां तक हमारे लिये मुमकिन है, ब्रिटिश सरकार के साथ सभी स्वेच्छा सम्बन्ध तोड़ देने के लिये अपने को तैयार करेंगे और मय करबन्दी के, सविनय अवज्ञा की तैयारी करेंगे। हमें इस बात का यकीन है कि अगर हम सिर्फ अपनी स्वेच्छा–सहायता बन्द कर दें और उभारे जाने पर भी हिंसा न करते हुये करों को देना रोक दें, तो इस अमानुषिक शासन का अन्त सुनिश्चित है। इसलिये हम संजीदगी के साथ अब यह संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज की स्थापना के लिये समय–समय पर कांग्रेस की जो हिदायतें जारी होती रहेंगी उन पर अमल करेंगे।

२. सविनय अवज्ञा आन्दोलन में नेहरू का योगदान

स्वाधीनता—दिवस, 26 जनवरी 1930, आया और बिजली की चमक की तरह उसने हमें बता दिया कि देश में सरगर्मी और उत्साह है। उस दिन हर जगह बड़ी—बड़ी सभायें हुईं, जिसमें बग़ैर भाषणों या विवेचनों के, शान्ति और गम्भीरता से, लोगों ने आजादी की प्रतिज्ञा ली। सभायें और जुलूस बड़े प्रभावशाली थे। गांधी जी को इस दिवस के प्रदर्शन से आवश्यक बल मिल गया और जनता की नब्ज़ की ठीक पहचान रखने के कारण उन्होंने समझ लिया कि लड़ाई छेड़ने का यह ठीक वक़्त है। इसके बाद तो घटनायें एक के बाद एक इस तरह घटित होने लगीं, जैसा कि किसी नाटक में रस की पराकाष्ठा होते समय होता है। जैसे—जैसे सविनय—अवज्ञा नजदीक आता गया और लोगों में जोश बढ़ता गया, वैसे—वैसे जवाहरलाल नेहरू के ख़यालात इस बात की तरफ गये कि किस तरह 1921—22 का आन्दोलन चला था और चौरीचौरा के बाद वह एकाएक स्थगित कर दिया गया था। तबसे अब देश में अनुशासन ज्यादा था और अब लोग ज्यादा साफ़ तौर से समझ गये थे कि यह लड़ाई किस क़िस्म की है। उसका तरीका तो किसी हद तक समझ ही लिया गया था। मगर हर आदमी ने यह भी पूरी तरह महसूस कर लिया कि गांधी जी अहिंसा पर उत्कट रूप से जोर देते हैं, और यह बात गांधीजी की दृष्टि से ज्यादा जरूरी थी। दस साल पहले कुछ लोगों के दिमाग़ों में शायद इस बाबत शक रहा हो, मगर अब तो वैसा शक नहीं हो सकता था। फिर भी जवाहरलाल नेहरू को इसका पक्का विश्वास कैसे हो सकता था कि किसी स्थान पर अपने—आप या किसी षड्यन्त्र से हिंसा का कोई काण्ड न हो जाये ? और अगर ऐसी कोई घटना हुई, तो उसका हमारे सविनय अवज्ञा—आंदोलन पर क्या असर होगा ? क्या वह पहले की ही तरह अचानक बन्द कर दिया जायेगा ? यही सम्भावना सबसे ज्यादा बेचैन कर रही थी। गांधी जी ने भी शायद इस सवाल पर अपने खास ढंग से विचार किया, हालांकि जिस समस्या की उन्हें चिन्ता मालूम होती थी, जहां तक जवाहरलाल कभी—कभी बातचीत करके समझ सके, वह दूसरे ही ढंग से उनके सामने उपस्थित थी।[1]

---

1. नेहरू, जवाहरलाल— मेरी कहानी, पृ0सं0 258 से 266 तक

सुधार करने के लिये अहिंसात्मक ढंग की लड़ाई करना ही गांधी जी की दृष्टि में सच्चा उपाय था, और अगर ठीक तरह से उस पर व्यवहार किया जाय तो वही अचूक भी है। तो क्या यह कहा जाना चाहिये कि इस उपाय को व्यवहार में लाने और सफल बनाने के लिये ख़ासतौर पर कोई बहुत अनुकूल वातावरण चाहिये और अगर बाहरी हालतें इसके मुआफ़िक न हों तो इसको काम में नहीं लाना चाहिये ? इससे तो यह नतीजा निकलता है कि अहिंसात्मक उपाय हर हालत के लिये ठीक नहीं है, और इस तरह यह न तो सार्वभौम उपाय रह जाता है, न अचूक। मगर यह नतीजा गांधी जी के लिये असह्य था, क्योंकि उनका पक्का विश्वास था कि यह उपाय सार्वभौम भी है और अव्यर्थ भी। इसलिये बाहरी हालत के प्रतिकूल होने पर भी और झगड़ों और हिंसा के होते रहते भी यह उपाय अवश्य काम में आ सकता है। बदलती हुई हालतों में उसके व्यवहार का ढंग भी बदलता रह सकता है, मगर उसका बन्द किया जाना तो खुद उस उपाय की विफलता को मान लेना होगा। सम्भव है, गांधी जी इस प्रकार से सोचते होंगे, मगर जवाहरलाल उनके विचारों को निश्चय से नहीं कह सके। गांधी जी ने हमें यह तो कुछ—कुछ बता ही दिया कि अब उनकी विचार—पद्धति में थोड़ा फ़र्क हो गया है, और जब सविनय अवज्ञा आयेगा, तो किसी एकाध हिंसात्मक काण्ड से उसका बन्द किया जाना जरूरी नहीं है। मगर यदि हिंसा किसी आन्दोलन का ही हिस्सा बन जायेगी, तो वह शान्तिपूर्ण सविनय अवज्ञा आन्दोलन न रहेगा और उसकी हलचलों को बन्द करना या बदलना पड़ेगा। इस आश्वासन से जवाहरलाल नेहरू और बहुतेरों को बहुत हद तक संतोष हुआ। अब सबके सामने बड़ा सवाल यह था, कि यह किया कैसे जाय? शुरूआत किस तरह हो ? किस प्रकार का सविनय अवज्ञा आन्दोलन हम चलायें, जो कारगर हो, परिस्थिति के अनुकूल हो और जनता में लोकप्रिय हो? इतने ही में गांधी जी ने इसकी तरकीब बताई।

नमक अचानक एक रहस्यपूर्ण और बलशाली शब्द बन गया। नमक—कर पर हमला होना था। नमक—कानून को तोड़ना था। जवाहरलाल नेहरू हैरत में पड़ गये। नमक का राष्ट्रीय संग्राम जवाहरलाल को कुछ अटपटा मालूम हुआ। दूसरी आश्चर्य में डालने वाली बात हुई गांधी जी की अपनी ग्यारह बातों का प्रकाशित करना। कुछ राजनैतिक और सामाजिक सुधारों की, चाहे वे अच्छे ही क्यों न हों, फेहरिस्त उस समय पेश करना, जबकि

हम आजादी की दृष्टि से बात कर रहे थे, क्या मतलब रखता था ? गांधी जब 'आजादी' शब्द कहते थे तो क्या उनका वही अर्थ था, जो जवाहरलाल नेहरू का था, या क्या हम लोग अलग–अलग भाषाओं का प्रयोग कर रहे थे ? मगर हमें बहस करने का मौका न था क्योंकि घटनायें तो आगे जा रही थीं। वे हिन्दुस्तान में तो हमारी निगाहों के सामने राजनैतिक रूप में दिन–पर–दिन आगे बढ़ ही रही थीं; मगर, शायद जवाहरलाल नेहरू नहीं जानते थे कि वे दुनिया में भी तेजी से बढ़ रही थीं और दुनिया को एक भयंकर मन्दी में जकड़े हुये थीं। चीज़ों के भाव गिर रहे थे, और शहर के रहने वालों ने समझा कि अब खुशहाली का ज़माना आ रहा है। मगर किसानों ने तो इसमें ख़तरा ही देखा। इसके बाद गांधी जी का वाइसराय से पत्र–व्यवहार हुआ, और साबरमती आश्रम से दाण्डी की नमक–यात्रा शुरू हुई। दिन–ब–दिन इस यात्री–दल के बढ़ने का हाल जैसे–जैसे लोग पढ़ते थे, देश में जोश का पारा चढ़ता जाता था। अहमदाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक इस लड़ाई की बाबत, जो प्रायः हमारे सिर पर आ चुकी थी, आखिरी व्यवस्था करने के लिये हुई। इस बैठक में हमारे संग्राम के नेता गांधी जी मौजूद नहीं थे, क्योंकि वह तो अपने यात्री–दल के साथ समुद्र की ओर बढ़ते जा रहे थे, और उन्होंने वहां से लौटने से इन्कार कर दिया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने योजना बनाई कि अगर गिरफ्तारियां हों तो क्या–क्या किया जाना चाहिये, और यदि यह कमेटी फिर बैठक न कर सके तो उसकी तरफ़ से कार्य–समिति के गिरफ्तारशुदा लोगों की जगह खुद नये मेम्बर नियुक्त कर देने और अपने स्थान पर ऐसे ही अधिकार रखने वाले अपने अनुगामी को नामज़द कर देने के बड़े–बड़े अधिकार सभापति को दिये गये। प्रान्तीय और स्थानीय कांग्रेस कमेटियों ने भी अपने–अपने सभापतियों को ऐसे ही अधिकार दे दिये। इस तरह से वह ज़माना शुरू हुआ जबकि 'डिक्टेटर' कहे जाने वाले लोग कायम हो गये और उन्होंने कांग्रेस की तरफ से संग्राम का संचालन किया। इस पर भारत–मन्त्री और वाइसराय और गवर्नरों ने बड़ी नफ़रत ज़ाहिर की और वे चीख़–चीख़कर कहने लगे कि कांग्रेस कितनी ख़राब और पतित हो गई है कि वह डिक्टेटरी को मानने लगी है, जब कि वे खुद तो मानो प्रजातन्त्रवाद के पक्के मानने वाले ही थे! कभी–कभी हिन्दुस्तान के नरम–दली अख़बारों ने भी जवाहरलाल को प्रजातन्त्र के लाभों का उपदेश दिया। जवाहरलाल यह सब ख़ामोशी से (क्योंकि जवाहरलाल

नेहरू तो जेल में थे) और हैरत में होकर सुनते थे। बेशरमी और मक्कारी इससे ज्यादा क्या हो सकती थी! इधर तो हिन्दुस्तान पर एकतन्त्री डिक्टेटर द्वारा बलपूर्वक शासन हो रहा था, जिसमें आर्डिनेन्स–कानून बन रहे थे और हर तरह की नागरिक स्वतन्त्रता दबायी जा रही थी, और उधर हमारे शासक प्रजातन्त्रवाद की भली–भली बातें कर रहे थे। और क्या सामान्य अवस्था में भी, हिन्दुस्तान में प्रजातन्त्र की छाया भी कहीं थी? अंग्रेजी हुकूमत अपनी ताक़त और हिन्दुस्तान में स्थापित स्वार्थों की हिफ़ाज़त करती और उसकी सत्ता का हटाने वालों का दमन करती, यह तो बेशक उसके लिये कुदरती बात थी। मगर उसका यह कहना कि यह सब प्रजातन्त्री तरीका है, एक ऐसी बात है, जो अगली पीढ़ियों के ग़ौर करने और तारीफ करने के लिये लिखकर रख ली जाय। कांग्रेस ऐसी हालत में जाने वाली थी, जब उसका मामूली ढंग पर काम करना ग़ैर–मुमकिन था; वह गैर–कानूनी करार दे दी जाने वाली थी, और गुप्त रूप के सिवा और किसी ढंग से उसकी कमेटियां किसी परामर्श या किसी काम के लिये इकट्ठी नहीं हो सकती थीं। जवाहरलाल नेहरू ने छुपाव को बढ़ावा नहीं दिया, क्योंकि जवाहरलाल नेहरू अपनी लड़ाई को बिल्कुल खुली रखना चाहते थे, जिससे कि हमारा तर्ज़ ऊँचा रहे और हम जनता पर असर डाल सकें। क्योंकि छुपाव से भी कोई ज्यादा काम नहीं चलता। केन्द्र में, प्रान्तों में और स्थानीय हल्कों में हमारे सब बड़े–बड़े स्त्री–पुरुष तो गिरफ़्तार होने वाले ही थे। फिर कौन आगे काम चलाता? इस सूरत में हमारे सामने एक ही रास्ता था, जिस तरह लड़ाई करती हुई, फौज में होता है, कि पुराने सेनानायकों के हटते ही नये सेनानायक बनाने की व्यवस्था करना। लड़ाई के मैदान में बैठकर कमेटियों की बैठकें करना जवाहरलाल के लिये नामुमकिन था। वास्तव में, कभी–कभी ऐसा हमने किया भी था, मगर इसका उद्देश्य और अनिवार्य नतीजा यह होता था कि सारी कमेटी एक–साथ गिरफ्तार हो जाती। हमें यह भी सुभीता नहीं था कि लड़ने वाली लाइनों के पीछे जनरल स्टाफ सुरक्षित बैठा रहता, या कहीं दूसरी जगह और भी ज्यादा हिफाजत से देश का मन्त्री–मण्डल बैठा रहता। यह लड़ाई ही इस तरह की थी कि हमारे स्टाफ और मन्त्री मण्डलों को अपने–आपको सबसे आगे और खुली जगहों में रखना पड़ता था, और वे तो सब शुरू में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। फिर हमने अपने 'डिक्टेटरों' को भी क्या सत्ता दे दी थी? लड़ाई चालू रखने के राष्ट्र के दृढ़ निश्चय के प्रतीक–रूप में उन्हें सामने रहने का यह

सम्मान दिया जाता था। मगर असल में तो उन्हें ज्यादातर खुद जेल में चले जाने की सत्ता मिली थी। वे तभी काम करते थे जब किसी बड़ी और अबाध सत्ता के कारण उनकी कमेटी जिसके वह प्रतिनिधि थे, मीटिंग नहीं कर सकती थीं; और जब उस कमेटी की बैठक हो सकती, तो डिक्टेटर की जो कुछ सत्ता थी वह समाप्त हो जाती थी। डिक्टेटर किसी बुनियादी सवाल या सिद्धान्त के बारे में कुछ फैसला नहीं कर सकता था। वह तो आन्दोलन की छोटी—छोटी और ऊपरी बातों के विषय में ही कुछ कर सकता था। कांग्रेस की 'डिक्टेटरशिप' तो वास्तव में जेल पहुंचने की सीढ़ी थी। और रोज़—रोज़ वही बात होती रही। पुराने लोग हटते जाते थे और उनकी जगह ये नये लोग आते जाते थे। इस तरह अपनी आख़िरी तैयारियां करके, अहमदाबाद में जवाहरलाल नेहरू ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अपने साथियों से विदा मांगी, क्योंकि यह किसी को मालूम न था कि आगे हम कब और कैसे इकट्ठे हो सकेंगे, या इकट्ठे हो भी सकेंगे या नहीं ? हम अपनी—अपनी जगहों पर जाकर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आदेशों के अनुसार अपनी—अपनी जगह के इन्तज़ाम को आखिरी तौर पर ठीक—ठीक करने और जैसा कि सरोजिनी नायडू ने कहा, जेल—यात्रा के लिये बिस्तर बांधने को जल्दी—जल्दी चल दिये।

लौटते वक्त मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू गांधी जी से मिलने गये। वह अपने यात्री—दल के साथ जम्बूसर में थे। वहां जवाहरलाल उनके साथ कुछ घंटे रहे और फिर वह अपने दल के साथ समुद्र—यात्रा के दूसरे पड़ाव के लिये पैदल चल पड़े। वह साथ में डण्डा लिये हुये, अपने अनुयायियों के आगे—आगे जा रहे थे। उनके कदम मजबूत थे और चेहरे पर शान्ति तथा निर्भयता छिटकी पड़ती थी। इस तरह उस समय जवाहरलाल ने उनके आखिरी दर्शन किये। वह दिल हिला देने वाला दृश्य था। जम्बूसर में जवाहरलाल नेहरू के पिता जी ने गांधी जी से सलाह करके यह तय किया था कि वह इलाहाबाद का अपना पुराना मकान राष्ट्र को दान कर देंगे, और उसका नाम बदलकर 'स्वराज—भवन' रख देंगे। इलाहाबाद लौटकर उन्होंने उसकी घोषणा कर दी, और कांग्रेस वालों को उसका कब्ज़ा भी दे दिया। उस बड़े मकान का हिस्सा अस्पताल बना दिया गया। उस वक्त तो वह उसकी क़ानूनी कार्रवाई को पूरी न कर सके, पर डेढ़ साल बाद जवाहरलाल नेहरू ने उनकी इच्छा के अनुसार उस मकान का एक ट्रस्ट बना दिया। अप्रैल आया। गांधी जी

समुद्र–तट पर पहुंच गये और जवाहरलाल नमक–कानून को तोड़कर सविनय अवज्ञा करने की उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। कई महीनों से जवाहरलाल अपने स्वयं सेवकों को क़वायद की तालीम दे रहे थे और कमला और कृष्णा (जवाहरलाल की पत्नी और बहन) भी उनमें शामिल हो गई थीं ओर उन्होंने इस काम के लिये मर्दाना लिबास धारण किया था। स्वयं सेवकों के पास कोई भी हथियार लाठियां तक, न थीं। उनको तालीम देने का मक़सद यह था कि वे अपने काम में ज्यादा योग्य और कुशल हो जायें और बड़ी–बड़ी भीड़ों को नियंत्रण में रख सकें। राष्ट्रीय सप्ताह, 1919 के सत्याग्रह–दिवस से लेकर जलियांवाला बाग तक की घटनाओं की यादगार में, हर साल मनाया जाता है, छः अप्रैल इसी सप्ताह का पहला दिन था। इसी दिन गांधी जी ने दांडी में समुद्र के किनारे नमक–क़ानून तोड़ा और तीन–चार दिन बाद सारे कांग्रेस–संगठनों को इजाजत दे दी गई कि वे भी नमक–क़ानून तोड़े और अपने–अपने क्षेत्र में सविनय अवज्ञा शुरू कर दें। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई बटन दबा दिया गया; और अचानक सारे देश में, शहरों में और गांवों में, जिधर देखों रोज़ नमक बनाने की ही धूम फैल गई। नमक बनाने के लिये कई अजीब–अजीब तरकीबें निकाली गई। इस बारे में जवाहरलाल की जानकारी बहुत ही थोड़ी थी, इसलिये जहां भी इस बारे में कुछ भी लिखा मिला, वह जवाहरलाल ने पढ़ डाला, और इस बाबत जानकारी देने के लिये कई पर्चियां प्रकाशित की, और बर्तन और कढ़ाइयां इकट्ठी कीं, और अन्त में एक भद्‌दी–सी चीज़ बना ही डाली, जिसे जवाहरलाल बड़ी बहादुरी से उठाकर दिखाते और अक्सर बहुत ऊँची कीमत पर नीलाम भी करते थे। वह अच्छी चीज़ है या बुरी, इसका सचमुच कोई महत्व न था; क्योंकि खास चीज तो उस बेहूदे नमक–क़ानून को तोड़ना था। इसमें जवाहरलाल जरूर कामयाब हुये, चाहे हमारा बनाया हुआ नमक कितना भी खराब क्यों न हो। जब जवाहरलाल ने देखा कि लोगों में उत्साह उमड़ रहा है, और नमक बनाना जंगली आग की तरह चारों तरफ़ फैल रहा है तो जवाहरलाल नेहरू को कुछ शर्म मालूम हुई; क्योंकि जब गांधी जी ने इस तरीक़े की तजवीज़ पहली–पहल रखी थी तब हमने उसकी कामयाबी में शक किया था। हमें ताज्जुब होता था कि कितनी इस व्यक्ति में लोगों पर उसर डालने और उनसे संगठित रूप में काम करवाने की अद्‌भुत सूझ है।

जवाहरलाल नेहरू चौदह अप्रैल को गिरफ्तार हो गये, जब

जवाहरलाल नेहरू रायपुर (मध्यप्रांत) की एक कांफ्रेन्स में शामिल होने के लिये रेलगाड़ी पर सवार हो रहे थे। उसी दिन जेल में जवाहरलाल नेहरू पर मुक़दमा भी हो गया, और जवाहरलाल नेहरू को नमक–कानून के मातहत छः महीने की सज़ा दी गई। अपनी गिरफ्तारी की सम्भावना से जवाहरलाल (अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा दी गई नई सत्ता के अनुसार) पहले ही अपनी अनुपस्थिति में कांग्रेस के सभापति–पद के लिये गांधी जी को नामज़द कर दिया था, और अगर वह मंजूर न करें तो, जवाहरलाल की नामजदगी मोतीलाल नेहरू के लिये थी जैसा कि जवाहरलाल का खयाल था गांधी जी राज़ी न हुये और इस की जगह मोतीलाल ही कांग्रेस के स्थानापन्न सभापति बने। उनकी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं थी, फिर भी वह बड़े ही जोश–खरोश से लड़ाई में कूद पड़े। उन शुरू के महीनों में मोतीलाल नेहरू के जबरदस्त संचालन और अनुशासन से आन्दोलन को बहुत लाभ हुआ। आन्दोलन को तो बहुत लाभ हुआ, मगर इससे उनकी रही–सही तन्दुरुस्ती और शक्ति बिल्कुल चली गई। उन दिनों बड़ी सनसनी पैदा करने वाले समाचार आया करते थे– जुलूसों का निकलना, लाठी–प्रहारों का होना और गोलियां चलना, नामी–नामी आदमियों की गिरफ्तारियों पर अक्सर हड़तालें होना, पेशावर–दिवस, गढ़वाली–दिवस आदि का ख़ासतौर पर मनाया जाना वग़ैरा। उस वक्त तो विदेशी कपड़े और तमाम अंग्रेजी माल का पूरा–पूरा बहिष्कार किया गया था। जब जवाहरलाल ने सुना कि उनकी बूढ़ी माता जी और बहनें भी गरमी की तेज धूप में विदेशी कपड़े की दुकानों के सामने धरना देने के लिये खड़ी रहती हैं, तो इसका जवाहरलाल के दिल पर बड़ा गहरा असर हुआ। कमला ने भी यह काम किया। मगर उसने कुछ और ज्यादा भी किया। जवाहरलाल नेहरू का ख्याल था कि कितने बरसों से मै उसे बहुत अच्छी तरह जानता हूं मगर उसने इस आन्दोलन के लिये इलाहाबाद शहर और जिले में इतनी शक्ति और निश्चय से काम किया कि जिससे जवाहरलाल नेहरू भी दंग रह गये। कमला ने अपने गिरते हुये स्वास्थ्य की बिल्कुल परवा नहीं की। वह सारे दिन धूप में घूमा करती थी और उन्होंने संगठन की बड़ी योग्यता का परिचय दिया। जवाहरलाल ने इसका कुछ–कुछ हाल जेल में सुना था। बाद में जब मोतीलाल नेहरू भी वहां जवाहरलाल के पास आ गये तब उन्होंने जवाहरलाल को बताया कि वह कमला के काम की, खासकर उसकी संगठन–शक्ति की, कितनी ज्यादा सराहना करते थे। मोतीलाल नेहरू को

जवाहरलाल की माता जी का या लड़कियों का तेज धूप में इधर—उधर जाना पसन्द नहीं करते थे; मगर सिवा सिर्फ कभी—कभी जबानी मना करने के उन्होंने उन्हें रोका नहीं।

उन शुरू के दिनों में जो खबरें जवाहरलाल के पास आया करती थीं, उनमें से सबसे बड़ी ख़बर 23 अप्रैल की पेशावर की घटना और बाद में सारे सीमाप्रान्त में होने वाली घटनाएं थीं। हिन्दुस्तान में कहीं भी मशीनगनों की गोलियों के सामने इस प्रकार अनुशासनपूर्ण और शान्तिपूर्ण हिम्मत दिखाई जाती, तो उससे सारा देश थर्रा उठता। मगर सीमाप्रान्त के लिये तो यह घटना और भी ज्यादा महत्व रखती थीं, क्योंकि पठान लोग हिम्मत के लिये तो मशहूर थे, मगर शान्तिपूर्ण स्वभाव के लिये मशहूर नहीं थे। इन्हीं पठानों ने वह मिसाल कायम कर दी, जो हिन्दुस्तान में अद्वितीय थी। सीमाप्रान्त में ही वह मशहूर घटना हुई, जिसमें गढ़वाली सिपाहियों ने निःशस्त्र जनता पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। उन्होंने इसलिये इन्कार कर दिया कि सच्चे सिपाहियों को निहत्थी भीड़ पर गोली चलाना नापसन्द होता है, और इसलिये भी कि भीड़ के लोगों से उन्हें सहानुभूति थी। मगर केवल सहानुभूति ही आमतौर पर सिपाही को अपने अफसर की हुकूम—उदूली जैसी खतरनाक कार्रवाई के लिये प्रेरित नहीं कर सकती, क्योंकि इसका बुरा नतीजा उसे मालूम रहता है। गढ़वालियों ने यह बात शायद इसलिये की कि उन्हें (और दूसरी भी कुछ रेजीमेण्टों को, जिनकी हुकुम—उदूली की खबर फैल नहीं पाई) यह गलत खयाल हो गया था कि अंग्रेजों की हुकूमत तो अब जाने ही वाली है। जब सिपाहियों में ऐसा खयाल पैदा हो जाता है तभी वे अपनी सहानुभूति और इच्छा के अनुसार काम करने की हिम्मत दिखाते हैं। शायद कुछ दिनों या हफ्तों तक आम हलचल और सविनय अवज्ञा से लोगों में यह खयाल पैदा हो गया था कि अंग्रेजी हुकूमत के आख़िरी दिन आ गये हैं, और इसका असर कुछ फ़ौज पर भी पड़ा, मगर जल्दी ही यह भी जाहिर हो गया कि निकट—भविष्य में ऐसा होने की सूरत नहीं है, और फिर फौज में हुकुम—उदूली नहीं हुई। फिर तो इस बात का भी खयाल रखा गया कि सिपाहियों को ऐसी दुविधा में डाला ही न जाय। उन दिनों बड़ी—बड़ी आश्चर्यजनक बातें हुईं; मगर सबसे अधिक आश्चर्य की बात थी स्त्रियों का राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेना। स्त्रियां बड़ी तादाद में अपने घर के घेरों से बाहर निकल आईं, और हालांकि उन्हें सार्वजनिक कार्यों का अभ्यास न था, फिर भी वे लड़ाई में पूरी तरह कूद पड़ी। विदेशी कपड़े

वन्देमातरम्

श्रीमती कमला नेहरू के कर–कमलों में अर्पित

देवि,

आपकी पुण्य उपस्थिति ऐसी अग्नि–परीक्षा के समय इन सेवकों को विद्युत शक्ति देकर उत्साहित कर रही है।

आपके त्याग एवं कार्य–संचालन का उदाहरण हम नर–नारियों के लिये आदर्श हैं।

जनन! आशीर्वाद दीजिये कि वर्तमान वृन्द में आपकी आज्ञा का पालन करते हुये हम विजय लाभ करें।

अपके सेवक

सेवादल नं0 8, कूचा पातीराम

और शराब की दुकानों पर धरना देने का काम तो उन्होंने बिल्कुल अपना ही कर लिया। सभी शहरों में सिर्फ स्त्रियों के ही भारी–भारी जुलूस निकाले गये, और आमतौर पर स्त्रियां–पुरुषों की बनिस्बत ज्यादा मज़बूत साबित हुई। अक्सर प्रान्तों में या स्थानीय क्षेत्रों में वे 'कांग्रेस–डिक्टेटर' भी बनती थीं। अकेला नमक–क़ानून ही नहीं तोड़ा गया, बल्कि दूसरी दिशाओं में भी सविनय अवज्ञा होने लगा। वाइसराय द्वारा कई आर्डिनेंस–जिनमें कई कामों पर प्रतिबन्ध लगाये गये थे–निकाले जाने से भी इस काम में मदद मिली। जैसे–जैसे ये आर्डिनेंस और प्रतिबन्ध बढ़ते गये, वैसे–वैसे उन्हें तोड़ने के मौके भी बढ़ते गये। और सविनय अवज्ञा की यह शक्ल हो गई कि आर्डिनेंस से जिस काम की मुमानियत की जाती थी वही काम किया जाता था। प्रारम्भिक सूत्रपात निश्चित रूप से कांग्रेस और लोगों के हाथ में रहा था, और जब एक आर्डिनेंस से गवर्नमेंट की निगाह में परिस्थिति नहीं संभली तब वाइसराय ने और नये–नये आर्डिनेन्स निकाले। कांग्रेस कार्य–समिति के कई मेम्बर गिरफ्तार कर लिये गये थे, मगर उनकी जगह नये मेम्बर नियुक्त कर लिये गये, और इस तरह वह काम करती ही रही। हर सरकारी आर्डिनेंस के मुकाबले में कार्य–समिति अपना प्रस्ताव पास करती थी, और उस आर्डिनेंस के लिये क्या करना चाहिये, इसके लिये आज्ञायें जारी करती थी। इन आज्ञाओं का देश में आश्चर्यजनक समानता से पालन होता था। हां, अलबत्ता, पत्र–प्रकाशन–सम्बन्धी आज्ञा का यथारीति पालन नहीं हुआ। जब प्रेस को ज्यादा नियन्त्रित करने और समाचार पत्रों से जमानत मांगने के बारे में आर्डिनेन्स निकला, तब कार्य–समिति ने राष्ट्रीय समाचार पत्रों से यह कहा कि जमानत देने से इन्कार कर दें और यदि आवश्यक हो तो प्रकाशन ही बन्द कर दें। अख़बारवालों के लिये यह एक कड़वी घूंट थी, क्योंकि उसी समय तो लोगों में खबरों की बहुत ज्यादा मांग थी। फिर भी कुछ नरम–दल के अख़बारों को छोड़कर ज्यादातर अख़बारों ने अपना प्रकाशन बन्द कर दिया, और नतीजा यह हुआ कि तरह–तरह की अफवाहें फैलने लगीं। मगर वे ज्यादा वक़्त तक न टिक सके। प्रलोभन बहुत भारी था, और अपना धन्धा नरम–दल के अखबार छीन लिये जा रहे थे, यह देखकर उन्हें बुरा भी मालूम हुआ। इसलिये उनमें से ज्यादातर फिर अपना प्रकाशन करने लगे। गांधी जी 5 मई को गिरफ्तार कर लिये गये थे। उनकी गिरफ्तारी के बाद समुद्र के पश्चिमी किनारे पर नमक के कारखानों और गोदामों पर धावे किये गये। इन धावों में पुलिस

की बेरहमी की बहुत दर्दनाक घटनायें हुई। उन दिनों भारी–भारी हड़तालें, जुलूसों और लाठी–प्रहारों के कारण बम्बई सबसे ज्यादा प्रसिद्ध हो रहा था। इन लाठी प्रहारों के घायलों के इलाज के लिये कई अस्थायी अस्पताल क़ायम हो गये थे। बम्बई में कई बातें ऐसी हुईं, जो मार्के की थीं, और बड़ा शहर होने के कारण बम्बई में प्रकाशन की सुविधा भी थी। छोटे क़स्बों और देहाती हिस्सों में भी ऐसी ही बातें हुईं, मगर वे सब प्रकाश में न आ पाईं।

जून के अन्त में जवाहरलाल के पिता जी बम्बई गये, और उनके साथ स्वरूपरानी और कमला भी गई। उनका बड़ा स्वागत किया गया। जब वह वहां ठहरे हुये थे, तभी कुछ बहुत ज़बरदस्त लाठी प्रहार हुये। वास्तव में यह तो बम्बई में मामूली–सी बात हो गई थी। करीब दो हफ़्ते बाद ही वहां सारी रात एक असाधारण अग्नि–परीक्षा हुई, जबकि मालवीय जी और कार्य–समिति के मेम्बर एक बड़ी भारी भीड़ के साथ पुलिस के सामने, जिसने उनका रास्ता रोक रखा था, सारी रात डटे रहे। बम्बई से लौटने पर 30 जून को जवाहरलाल गिरफ्तार कर लिये गये, और उनके साथ सैयद महमूद भी पकड़े गये। वे कार्य–समिति के, जो गैरकानूनी करार दे दी गई थी, स्थानापन्न अध्यक्ष और मन्त्री की हैसियत से गिरफ्तार हुये। दोनों को छः–छः महीने की सज़ा मिली। जवाहरलाल नेहरू के पिता जी की गिरफ्तारी शायद एक बयान प्रकाशित करने पर हुई थी, जिसमें उन्होंने सैनिकों या पुलिसमैनों को निहत्थी जनता पर गोली चलाने की आज्ञा मिलने की सूरत में उनका क्या कर्तव्य है यह बताया था। यह बयान सिर्फ क़ानूनी था, और उसमें बताया गया था कि मौजूदा ब्रिटिश इण्डिया क़ानून में इस बाबत क्या लिखा है। मगर फिर भी वह भड़कानेवाला ख़तरनाक समझा गया। बम्बई जाने से जवाहरलाल नेहरू के पिता जी को बहुत मेहनत करनी पड़ी। बड़े सबेरे से बहुत रात तक उन्हें काम करना पड़ता था, और हर जरूरी काम का फैसला उन्हें ही करना पड़ता था। वह बहुत दिनों से बीमार–से तो थे ही, अब वह बिल्कुल थककर लौटे और अपने डाक्टरों की जरूरी सलाह से उन्होंने फौरन पूरी तरह आराम लेने का फैसला कर लिया। उन्होंने मसूरी जाने की तैयारी की, और सामान बगैरा बंधवा लिया; मगर जिस दिन वह मसूरी जाना चाहते थे, उससे एक दिन पहले ही वह नैनी सेण्ट्रल जेल की जवाहरलाल की बैरक में उनके पास आ पहुंचे।

३. गाँधी इर्विन समझौता व नेहरू

मोतीलाल नेहरू की गिरफ्तारी के साथ ही, या उसके फ़ौरन बाद ही, कार्य–समिति ग़ैर–कानूनी क़रार दे दी गई। इससे एक नई स्थिति पैदा हो गई– यदि कमेटी अपनी मीटिंग करे तो सब–के–सब मेम्बर एक साथ गिरफ्तार हो सकते थे। इसलिये कार्यवाहक सभापतियों को जो इख्तियार दे दिया गया था, उसके मुताबिक़ स्थनापन्न मेम्बर उसमें और जोड़े गये और इस सिलसिले में कई स्त्रियां भी मेम्बर बनीं। कमला भी उनमें थीं।[1]

मोतीलाल नेहरू जब जेल आये तो उनकी तन्दुरुस्ती निहायत खराब थी और वह जिन हालतों में वहां रखे गये थे, उनमें उन्हें बड़ी तकलीफ थी। सरकार ने जान–बूझकर यह स्थिति पैदा नहीं की थी, क्योंकि वह अपनी तरफ से तो उनकी तकलीफ़ कम करने की भरसक कोशिश करने को तैयार थी, परन्तु नैनी–जेल में वह अधिक कुछ नहीं कर सकी। जवाहरलाल नेहरू की बैरक में 4 छोटी–छोटी कोठरियों में जवाहरलाल सहित चार आदमियों को एक साथ रख दिया गया। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने सुझाया भी कि मोतीलाल को किसी दूसरी जगह रख दें, जहां उन्हें कुछ ज़्यादा जगह मिल जाय, लेकिन जवाहरलाल और उनके साथियों ने एक साथ रहना ही बेहतर समझा, क्योंकि यहां इनमें से कोई–न–कोई उनको सम्हाल कर रख सकता था। बारिश शुरू ही हुई थी, पर कोठरी के अन्दर की जमीन मुश्किल से सूखी रहती थी, क्योंकि छत से पानी जगह–जगह टपकता था। रात के वक़्त रोज यह सवाल उठता कि मोतीलाल नेहरू का बिछौना जवाहरलाल नेहरू की कोठरी से सटे उस छोटे–से बरामदे में, जो 10 फुट लम्बा और 5 फुट चौड़ा था, कहां लगाया जाय, जिससे पानी से बचाव हो सके ? कभी–कभी उन्हें बुख़ार आ जाता था। आखिर जेल–अधिकारियों ने जवाहरलाल की कोठरी से लगा हुआ एक और अच्छा बड़ा बरामदा बनवाना तय किया। बरामदा बन तो गया और उससे ज्यादा आराम भी मिलता, मगर मोतीलाल नेहरू को उसका कुछ फ़ायदा न मिला; क्योंकि उसके तैयार होने के बाद शीघ्र ही उन्हें रिहा कर दिया गया। तब उनमें से

---

1. नेहरू, जवाहरलाल– मेरी कहानी, पृ0सं0 278

जो लोग वहां पीछे रह गये थे, उन्होंने उससे पूरा फायदा उठाया।

जुलाई के अख़ीर में यह चर्चा बहुत सुनाई दी कि सर तेजबहादुर सप्रू और जयकर साहब इस बात की कोशिश कर रहे हैं कि कांग्रेस और सरकार के बीच सुलह हो जाय। जवाहरलाल नेहरू ने यह खबर एक दैनिक में पढ़ी जो मोतीलाल नेहरू को खासतौर पर बतौर रियायत के दिया जाता था। उसमें जवाहरलाल नेहरू ने वह सारा पत्रव्यवहार पढ़ा, जो वाइसराय लार्ड इरविन और सर सप्रू तथा जयकर साहब के बीच हुआ था। बाद में हमें यह भी मालूम हुआ कि हमारे ये "शान्ति दूत" गाँधी जी से भी मिले थे। जवाहरलाल नेहरू की समझ में यह नहीं आता था कि आखिर इनको सुलह की इतनी क्यों पड़ी है, या ये इससे क्या नतीजा निकालना चाहते हैं। बाद को जवाहरलाल नेहरू को मालूम हुआ कि उन्हें इस बात का उत्साह मिला है। मोतीलाल नेहरू के छोटे से बयान से, जो उन्होंने बम्बई में अपनी गिरफ्तारी से कुछ पहले दिया था। वक्तव्य का खर्रा मि0 स्लोकॉम्ब (लन्दन के डेली हेरल्ड के सम्वाददाता जो उन दिनों हिन्दुस्तान में थे) का बनाया हुआ था, जो मोतीलाल नेहरू से बातचीत करके तैयार किया गया था और जिसे उन्होंने पसन्द भी कर लिया था। इस वक्तव्य में यह बताया गया था कि अगर सरकार कुछ शर्तें मान ले तो सम्भव है कि कांग्रेस सत्याग्रह को वापिस ले लेगी। यह एक गोल–मोल और कच्ची बात थी उसमें भी यह साफ कह दिया गया था कि उन स्पष्ट शर्तों पर भी तब तक विचार नहीं किया जा सकेगा, जब तक मोतीलाल जी गाँधी जी से और जवाहरलाल से मशविरा न कर लें। जवाहरलाल से जरूरत इसलिये पड़ती थी कि जवाहरलाल नेहरू उस साल कांग्रेस के प्रधान थे। उनकी गिरफ्तारी के बाद मोतीलाल जी ने इसका जिक्र नैनी में जवाहरलाल से किया था, और उन्हें इस बात का दुख ही रहा कि उन्होंने जल्दी में ऐसा गोलमोल वक्तव्य दे डाला। और सम्भव था कि उसका गलत अर्थ लगाया जाये और दरअसल में ऐसा हुआ भी क्योंकि जिन लोगों की विचारधारा जवाहरलाल से बिल्कुल जुदा थी उनके द्वारा तो बिल्कुल स्पष्ट और यथार्थ वक्तव्यों को भी गलत अर्थ लगाये जाने की सम्भावना रहती थी। 27 जुलाई को सर तेजबहादुर सप्रू और जयकर अचानक नैनी–जेल में उनसे मिलने आ पहुंचे वे गाँधी जी का एक पत्र साथ लाये थे। उस दिन तथा दूसरे दिन इन लोगों में बड़ी देर तक बातचीत हुई। मोतीलाल जी को हरारत थी। इस बातचीत से वे बहुत थक

गये उनकी बातचीत और बहस घूमघाम कर वहीं आ जाती थी जहाँ से शुरू हुई थी। इन लोगों के राजनैतिक दृष्टि—बिन्दु इतने जुदा—जुदा थे कि ये लोग मुश्किल से एक—दूसरे की भाषा और भावों को समझ पाते थे। इन लोगों को यह साफ दिखाई देता था कि मौजूदा हालत में कांग्रेस और सरकार के बीच सुलह होने का कोई मौका नहीं है। इन लोगों ने अपने साथियों—कार्य—समिति के सदस्यों और खासकर गांधी जी से सलाह किये बिना अपनी तरफ से कुछ भी कहने से इन्कार कर दिया, और जवाहरलाल ने इस आशय की एक चिट्ठी गांधी जी को लिख भी दी।[1]

ग्यारह दिन बाद, 8 अगस्त को, डाक्टर सप्रू का जबाव लेकर फिर जवाहरलाल से मिलने आये। वाइसराय को इस बात पर कोई ऐतराज न था कि ये लोग यरवदा जायें (यरवदा पूना के पास है और यहीं की जेल में गांधी जी रखे गये थे); लेकिन वह तथा उनकी कौसिंल जवाहरलाल नेहरू, सरदार बल्लभभाई, मौलाना अबुलकलाम आजाद और कार्य—समिति के दूसरे मेम्बरों से मिलने की इजाजत नहीं दे सकती थी, जो कि बाहर थे और सरकार के खिलाफ सक्रिय आन्दोलन कर रहे थे। डाक्टर सप्रू ने जवाहरलाल से पूछा कि ऐसी हालत में आपलोग यरवदा जाने को तैयार हैं या नहीं ? जवाहरलाल ने कहा कि हमें तो कभी भी गांधी जी से मिलने जाने में कोई उज्र नहीं है, न हो सकता है; लेकिन जब तक हम अपने दूसरे साथियों से न मिल लें, तब तक अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकेगा। इत्तिफाक से उसी दिन या शायद एक दिन पहले के अखबार में यह खबर पढ़ी कि बम्बई में भयंकर लाठी—चार्ज हुआ और सरदार बल्लभभाई, मालवीय जी, तसद्दूकअहमद शेरवानी बग़ैरा कार्य—समिति के स्थायी या स्थानापन्न मेम्बर गिरफ्तार कर लिये गये हैं। जवाहरलाल ने डाक्टर सप्रू से कहा कि इस घटना से मामला सुधरा नहीं है और जवाहरलाल नेहरू ने उनसे कह दिया कि वह सारी स्थिति वाइसराय के सामने साफ कर दें। फिर भी डाक्टर सप्रू ने कहा कि गांधी जी से तो जल्दी मिलने में हर्ज ही क्या है? जवाहरलाल ने यह बात पहले ही कह दी थी "कि यदि उनका यरवदा जाना हुआ तो हमारे साथी डाक्टर सैयद महमूद भी, जो हमारे साथ नैनी में ही थे, बहैसियत कांग्रेस—सेक्रेटरी हमारे साथ चलेंगे।"

---

1. नेहरू, जवाहरलाल— मेरी कहानी, पृ0सं0 279

दो दिन बाद 10 अगस्त को, मोतीलाल नेहरू, महमूद और जवाहरलाल एक स्पेशल ट्रेन से नैनी से पूना भेजे गये। वह गाड़ी बड़े–बड़े स्टेशनों पर नहीं ठहरी, वह उन्हें सपाटे से पार करती चली गई, कहीं–कहीं छोटे और किनारे के स्टेशनों पर ट्रेन ठहराई गई। फिर भी इन लोगों के जाने की खबर उनके आगे दौड़ गई और लोगों की बड़ी भीड़ स्टेशनों पर जहां वह लोग ठहरे वहां भी और जहां नहीं ठहरे वहां भी–इकट्ठी हो गई। वे लोग 11 की रात को पूना के नजदीक खिड़की स्टेशन पर पहुंचे।[1]

जवाहरलाल ने उम्मीद तो यह की थी कि हम गांधी जी की ही बैरक में ठहराये जायेंगे, या कम–से–कम उनसे जल्दी ही मुलाकात हो जायेगी। यरवदा के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने तो यही तजबीज़ कर रखी थी; लेकिन ऐन वक़्त पर उन्हें अपना प्रबन्ध बदल देना पड़ा जो पुलिस अफ़सर हमारे साथ नैनी से आया था उसके द्वारा यरवदा बालों को ऐसी ही कुछ हिदायतें मिली थी। सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल मार्टिन ने तो इन लोगों को इस रहस्य का पता न दिया, परन्तु मोतीलाल ने कुछ ऐसे मार्मिक प्रश्न किये, जिनसे यह मालूम हो गया कि इन्हें गांधी जी से (कम–से–कम पहली बार तो) सप्रू और जयकरसाहब के सामने ही मिलने दिया जायेगा। यह अन्देशा किया गया था कि अगर यह लोग पहले मिल लेंगे तो इनका रुख़ कड़ा हो जायेगा और यह सब और भी मजबूत हो जायेंगे। लिहाजा वह सारी रात और दूसरे दिन भर और रातभर यह लोग दूसरी बैरक में रखे गये। इस पर मोतीलाल को बहुत बुरा मालूम हुआ। वहां ले जाकर गांधीजी से न मिलने देना, जिनसे मिलने के लिये इन लोगों को इतनी दूर नैनी से लाये गये, गोया इन्हें तरसाना और तड़पाना था। आख़िर 13 तारीख को दोपहर के पहले इन्हें ख़बर की गई कि सर सप्रू और जयकर साहब तशरीफ़ ले आये हैं और गांधीजी भी जेल के दफ्तर में उनके साथ मौजूद हैं और आप सबको वहीं बुलाया है। मोतीलाल ने जाने से इन्कार कर दिया और जब जेलवालों की तरफ़ से बहुतेरी सफाइयां दी गई और माफ़ियां मांगी गई और यह तय पाया कि यह लोग अकेले गांधी जी से ही मिलाये जायेंगे, तब वह वहां जाने

---

1. नेहरू, जवाहरलाल– मेरी कहानी, पृ0सं0 280

को राज़ी हुये। आगे चलकर इन सबके सम्मिलित अनुरोध पर सरदार पटेल और जयरामदास दौलतराम, जो दोनों यरवदा ले आये गये थे, और सरोजिनी नायडू भी, जो इनके सामने की स्त्री—बैरक में ही रखी गई थीं इनके साथ बातचीत में शरीक किये गये। उसी रात मोतीलाल नेहरू, महमूद और जवाहरलाल तीनों गांधी जी के अहाते में ले जाये गये और यरवदा से चलने तक वे लोग वहीं रहे। बल्लभभाई और जयरामदास भी वहां लाये गये और वे भी वहीं रखे गये, जिससे इन लोगों के आप़स में सलाह—मशवरा किया जा सके। 13, 14 और 15 अगस्त तक सप्रू और जयकर साहब से इनलोगों का मशवरा जेल के दफ्तर में होता रहा और इन्होंने आपस में चिट्ठी—पत्री के द्वारा अपने—अपने विचार भी प्रदर्शित कर दिये जिनमें इन लोगों की तरफ़ से वे कम—से—कम शर्तें बता दी गई, जिनके पूरा होने पर सविनय अवज्ञा वापस लिया जा सकता था और सरकार के साथ सहयोग किया जा सकता था। बाद में ये चिट्ठियां अख़बारों में भी छाप दी गई थीं।[1]

यरवदा सेण्ट्रल जेल, पूना से 15 अगस्त, 1930 को कांग्रेस—नेताओं द्वारा सर तेजबहादुर सप्रू और श्री मुकुन्दराव जयकर को लिखा गया सुलह की शर्तोंवाला पत्र—[2]

आप लोगों ने ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस में शांतिपूर्ण समझौता करने का जो भार अपने ऊपर लिया है, उसके लिये हम लोग आपके बहुत—बहुत आभारी हैं। आपका वाइसराय के साथ जो पत्र व्यवहार हुआ है और आपके साथ हम लोगों की जो बहुत अधिक बातें हुई हैं और हम लोगों में आपस में जो कुछ परामर्श हुआ है, उन सबका ध्यान रखते हुये हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि अभी ऐसे समझौते का समय नहीं आया है, जो हमारे देश के लिये सम्मानपूर्ण हो। पिछले पांच महीनों में देश में जो ग़ज़ब की जागृति हुई है और भिन्न—भिन्न सिद्धान्त व मत रखने वाले लोगों में से छोटे—बड़े सभी प्रकार और वर्ग के लोगों

---

1. नेहरू, जवाहरलाल— मेरी कहानी, पृ0सं0 280, 281
2. Ibid, P- 723 to 726

ने जो बहुत अधिक कष्ट सहन किया है, उसे देखते हुये हम लोग यह अनुभव करते हैं कि न तो वह कष्ट–सहन काफी हुआ है और न वह इतना बड़ा ही हुआ है कि उससे तुरन्त ही हमारा उद्देश्य पूरा जो जाये। शायद वहां यह बतलाने की कोई आवश्यकता न होगी कि हम आपके या वाइसराय के इस मत से सहमत नहीं हैं कि सत्याग्रह–आन्दोलन से देश को हानि पहुची है या वह आन्दोलन कुसमय में खड़ा किया गया है या वह अवैध है। अंग्रेजों का इतिहास ऐसी–ऐसी रक्तपूर्ण क्रान्तियों के उदाहरणों से भरा पड़ा है, जिनकी प्रशंसा के राग गाते हुये लोग कभी नहीं थकते और उन्होंने हम लोगों को भी ऐसा ही करने की शिक्षा दी है। इसलिये जो क्रांति विचार की दृष्टि से बिल्कुल शांतिपूर्ण है और जो कार्यरूप में भी बहुत बड़े पैमाने में और अद्भुत रूप से शांतिपूर्ण ही है, उसकी निन्दा करना वाइसराय या किसी और समझदार अंग्रेज को शोभा नहीं देता। पर जो सरकारी या गैर–सरकारी आदमी वर्तमान सत्याग्रह–आन्दोलन की निन्दा करते हैं, उनके साथ झगड़ा करने की हमारी कोई इच्छा नहीं है। हम मानते हैं कि सर्वसाधारण जिस आश्चर्यजनक रूप से इस आन्दोलन में शामिल हुये, वही इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि यह उचित और न्यायपूर्ण है। यहां करने की बात यही है कि हम लोग भी प्रसन्नतापूर्वक आपके साथ मिलकर इस बात की कामना करते हैं कि अगर किसी तरह सम्भव हो तो यह सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया जाये या स्थगित कर दिया जाये। अपने देश के पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों तक को अनावश्यक रूप से ऐसी परिस्थिति में रखना कि उन्हें जेल जाना पड़े, लाठियां खानी पड़ें, और इनसे भी बढ़कर दुर्दशायें भोगनी पड़ें, हम लोगों के लिये कभी आनन्ददायक नहीं हो सकता। इसलिये जब हम आपको और आपके द्वारा वाइसराय को यह विश्वास दिलाते हैं कि सम्मानपूर्ण शांति और समझौते के लिये जितने मार्ग हो सकते हैं, उन सबको ढूंढ़कर उनका सहारा लेने के लिये हम अपनी ओर से कोई बात न उठा रखेंगे तो आशा है कि आप हम लोगों की इस बात पर विश्वास करेंगे। लेकिन फिर भी हम जानते हैं कि अभी तक हमें क्षितिज पर ऐसी शांति का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता। हमें अभी तक इस बात का कोई आसार नहीं दिखाई पड़ता कि ब्रिटिश सरकारी दुनिया का अब यह विचार हो गया है कि खुद हिन्दुस्तान के स्त्री–पुरुष ही इसबात का निर्णय कर सकते हैं कि हिन्दुस्तान के लिये

सबसे अच्छा कौन सा रास्ता है। सरकारी कर्मचारियों ने अपने शुभ विचारों की जो निष्ठापूर्ण घोषणायें की हैं और जिनमें से बहुत–सी प्रायः अच्छे उद्देश्य से की गई हैं, उन पर हम विश्वास नहीं करते। इधर मुद्दतों से अंग्रेज इस प्राचीन देश के निवासियों की धन–सम्पत्ति का जो बराबर अपहरण करते आये हैं, उनके कारण उन अंग्रेजों में अब इतनी शक्ति और योग्यता नहीं रह गई कि वे यह बात देख सकें कि उनके इस अपहरण के कारण हमारे देश का कितना अधिक नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक ह्रास हुआ है। वे अपने आपको यह देखने के लिये तैयार ही नहीं कर सकते कि उनके करने का सबसे बड़ा एक काम यही है कि वे जो हमारी पीठ पर चढ़े बैठे हैं, उस पर से उतर जायें और लगभग सौ बरसों तक भारत पर उनका राज्य रहने के कारण सब प्रकार से हम लोगों का नाश और ह्रास करने वाली जो प्रणाली चल रही है, उससे बाहर निकलकर विकसित होने में हमारी सहायता करें और अब तक उन्होंने हमारे साथ जो अन्याय किये हैं, उनका इस रूप में प्रायश्चित कर डालें। पर हम यह बात जानते हैं कि आपके और हमारे देश के कुछ और विज्ञ लोगों के विचार हमारे इन विचारों से भिन्न हैं। आप यह विश्वास करते हैं कि शासकों के भावों में परिवर्तन हो गया है और अधिक नहीं तो कम–से–कम इतना परिवर्तन जरूर हो गया है कि जिससे हम लोगों को प्रस्तावित परिषद् में जरूर शरीक होना चाहिये। इसलिये हालांकि हम इस समय एक खास तरह के बंधन में पड़े हुये हैं, तो भी जहां तक हमारे अन्दर शक्ति है, वहां तक हम इस काम में खुशी से आप लोगों का साथ देंगे। हम जिस परिस्थिति में पड़े हुये हैं, उसे देखते हुये, आपके मित्रतापूर्ण प्रयत्न में हम अधिक–से–अधिक जिस रूप में और जिस हद तक सहायता दे सकते हैं, वह इस प्रकार है–

(1) हम यह समझते हैं कि वाइसराय ने आपके पत्र का जो जबाव दिया है उसमें प्रस्तावित परिषद् के सम्बन्ध में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, यह भाषा ऐसी अनिश्चित है कि पार साल लाहौर में जो राष्ट्रीय मांग पेश की गई थी, उसका ध्यान रखते हुये हम वाइसराय के उस कथन का कोई मूल्य या महत्व ही निर्धारित नहीं कर सकते और न हमारी स्थिति ही ऐसी है कि कांग्रेस की कार्य–समिति, और जरूरत हो तो महासमिति के नियमित अधिवेशन में बिना विचार किये हम लोग अधिकारपूर्ण रूप से कोई बात कह

सकें। पर हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि व्यक्तिगत तौर पर हम लोगों के लिये इस समस्या का कोई ऐसा निराकरण तब तक संतोषजनक न होगा, जबतक कि—

(क) पूरे और स्पष्ट शब्दों में यह बात न मान ली जाये कि भारत को इस बात का अधिकार प्राप्त होगा कि वह, जब चाहे तब, ब्रिटिश साम्राज्य से अलग हो जायें;

(ख) भारत में ऐसी पूर्ण राष्ट्रीय सरकार स्थापित न हो जाये जो उसके निवासियों के प्रति उत्तरदायी हो ताकि उसे देश की रक्षक शक्तियों (सेना आदि) पर और तमाम आर्थिक विषयों पर पूरा अधिकार और नियंत्रण प्राप्त हो और जिसमें उन 11 शर्तों का भी समावेश हो जाये जो गांधीजी ने वाइसराय को अपने पत्र में लिखकर भेजी थीं; और

(ग) हिन्दुस्तान को इस बात का अधिकार न प्राप्त हो जाये कि जरूरत हो तो वह एक ऐसी स्वतंत्र पंचायत बैठाकर इस बात का निर्णय करा सके कि अंग्रेजों को जो अधिकार और रिआयतें बगैरा प्राप्त हैं, जिसमें भारत का सार्वजनिक ऋण भी शामिल होगा और जिनके सम्बन्ध में राष्ट्रीय सरकार का यह मत होगा कि ये न्यायपूर्ण नहीं है या भारत की जनता के लिये हितकर नहीं हैं, वे सब अधिकार, रिआयतें और ऋण आदि उचित, न्यायपूर्ण और मान्य हैं या नहीं।

नोट— अधिकार हस्तांतरित होते वक्त भारत के हित के विचार से इस किस्म के जिस लेन—देन आदि की जरूरत होगी, उसका निर्णय भारत के चुने हुये प्रतिनिधि करेंगे।

(2) ऊपर बतलाई हुई बातें ब्रिटिश सरकार को अगर ठीक जचें और वह इस सम्बन्ध में संतोषजनक घोषणा कर दे तो हम कांग्रेस की कार्य—समिति से इस बात की सिफारिशें करेंगे कि सत्याग्रह—आन्दोलन या सविनय—अवज्ञा का आन्दोलन बन्द किया जाये; अर्थात केवल आज्ञा—भंग करने के लिये ही कुछ विशिष्ट कानूनों को भंग न किया जाये। पर विलायती कपड़े और शराब, ताड़ी वगैरा की दुकानों पर तबतक शांतिपूर्ण पिकेटिंग

जारी रहेगा, जबतक कि सरकार खुद कानून बनाकर शराब, ताड़ी आदि और विलायती कपड़े की बिक्री बन्द न कर दे। सब लोग अपने घरों में बराबर नमक बनाते रहेंगे और नमक—कानून की दण्ड सम्बन्धी धारायें काम में नहीं लाई जायेंगी। नमक के सरकारी या लोगों के निजी गोदामों पर धावा नहीं किया जायेगा।

(3) ज्योंही सत्याग्रह—आन्दोलन रोक दिया जायेगा, त्योंही:

(क) वे सब सत्याग्रही कैदी और राजनैतिक कैदी, जो सजा पा चुके हैं पर जो हिंसा के अपराधी नहीं हैं या जिन्होंने लोगों को हिंसा करने के लिये उत्तेजित नहीं किया है, सरकार द्वारा छोड़ दिये जायेंगे;

(ख) नमक—कानून, प्रेस—कानून, लगान—कानून और इसी प्रकार के और कानूनों के अनुसार, जो तमाम सम्पत्तियां जब्त की गई हैं, वे सब लोगों को वापस कर दी जायेंगी,

(ग) सजायाफ्ता सत्याग्रहियों से जो जुर्माने वसूल किये गये हैं या जो जमानतें ली गई हैं, उन सबकी रकमें लौटा दी जायेंगी;

(घ) वे सब राज—कर्मचारी, जिनमें गांवों के कर्मचारी भी शामिल हैं, जिन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है या जो आन्दोलन के समय नौकरी से छुड़ा दिये गये हैं, अगर फिर से सरकारी नौकरी करना चाहें तो अपने पद पर नियुक्त कर दिये जायेंगे।

नोट— ऊपर जो उपधारायें दी गई हैं उनका व्यवहार असहयोग—काल के सजायाफ्ता लोगों के लिये भी होगा।

(ड.) वाइसराय ने अब तक जितने आर्डिनेंस जारी किये हैं, वे सब रद्द कर दिये जायेंगे।

(च) प्रस्तावित परिषद में कौन—कौन लोग सम्मिलित किये जायेंगे और उसमें कांग्रेस

का प्रतिनिधित्व किस प्रकार होगा, इसका निर्णय उसी समय होगा, जब पहले ऊपर बताई हुई आरम्भिक बातों का संतोषजनक निपटारा हो जायेगा।

भवदीय

मोतीलाल नेहरू,मोहनदास करमचन्द गांधी,

सरोजिनी नायडू, बल्लभभाई पटेल,

जयरामदास दौलतराम, सैयद महमूद,

जवाहरलाल नेहरू

जिस दिन और जिस वक्त जवाहरलाल नेहरू के पिताजी की मृत्यु हुई, उसी दिन और लगभग उसी समय बम्बई में गोलमेज–कान्फ्रेन्स के कुछ हिन्दुस्तानी मेम्बर जहाज से उतरे। श्रीनिवास शास्त्री और सर तेजबहादुर सप्रू और शायद दूसरे कुछ लोग, जिनका खयाल अब जवाहरलाल को नहीं है, सीधे इलाहाबाद आये। गांधी जी तथा कार्य समिति के कुछ और सदस्य वहां पहले ही मौजूद थे। हमारे मकान पर खानगी बैठकें हुई जिनमें यह बताया गया कि गोलमेंज–कांफ्रेंस में क्या–क्या हुआ। मगर शुरू में ही एक छोटी–सी घटना हुई। श्री श्रीनिवास शास्त्री ने खुद–ब–खुद अपने एडिनबरा वाले भाषण पर खेद प्रकट किया। उन्होंने यह भी कहा कि ''अपने आसपास के वातावरण का मुझ पर अक्सर असर हो जाता है और मैं अत्युक्ति और शब्दाडम्बर में बह जाता हूं।'' इन प्रतिनिधियों ने हमें गोलमेंज–कांफ्रेंस के सम्बन्ध में ऐसी मार्के की कोई बात नहीं कही, जिसे हम पहले से न जानते हों। हां, उन्होंने यह अलबत्ता बताया कि वहां परदे के पीछे कैसी–कैसी साजिशें हुई, और फलां 'लॉर्ड' या फलां 'सर' ने खनगी में क्या–क्या किया। हमारे हिन्दुस्तानी लिबरल दोस्त हमेशा सिद्धान्तों की और हिन्दुस्तान की परिस्थिति की वास्तविकताओं की बनिस्बत इस बात को ज्यादा महत्व देते हुये दिखाई देते थे कि बड़े अफसरों ने खानगी बातचीत में या गपशप में क्या–क्या कहा। लिबरल नेताओं के साथ हमारी जो कुछ बातचीत हुई, उसका कोई नतीजा न निकला। इनकी पिछली

राय ही और मजबूत हो गई कि गोलमेंज—कांफ्रेंस से निर्णयों की कुछ भी वक्त नहीं है। किसी ने जवाहरलाल नेहरू का नाम भूल था— सुझाया कि गांधी जी वाइसराय को मुलाकात के लिये लिखें और उनके साथ खुलकर बातचीत कर लें। इस पर गांधी जी राजी हो गये, हालांकि जवाहरलाल नहीं समझ सके कि उन्होंने परिणाम की कोई आशा की हो। मगर अपने सिद्धान्त को सामने रखते हुये वह सदा विरोधियों के साथ, कुछ कदम आगे जाकर भी, मिलने और बातचीत करने को तैयार रहते हैं। और चूंकि अपने पक्ष की सच्चाई का उन्हें पूरा विश्वास रहता है, इसलिये वह दूसरे पक्ष के लोगों को भी कायल करने की आशा रखते थे। मगर जो वह चाहते थे वह बौद्धिक विश्वास से शायद कुछ ज्यादा था। वह हमेशा हृदय—परिवर्तन की कोशिश करते हैं। राग—द्वेष के बन्धनों को तोड़कर दूसरे की सदिच्छा और ऊंची भावनाओं तक पहुंचने की कोशिश करते हैं वह जानते थे कि यदि यह परिवर्तन हो गया तो विश्वास का जमाना आसान हो जायेगा, या अगर विश्वास न भी जम सका तो विरोध ढीला हो जायेगा और संघर्ष की तीव्रता कम हो जायेगी। अपने व्यक्तिगत व्यवहारों में अपने विरोधियों पर उन्होंने इस तरह की बहुतेरी विजय प्राप्त की हैं, और यह ध्यान देने योग्य बात है कि वह महज अपने व्यक्तित्व के जोर पर किसी विरोधी को कैसे अपनी तरफ कर लेते हैं। कितने ही आलोचक और निन्दक उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके प्रशंसक बन गये, और हालांकि वह नुक्ताचीनी करते रहते हैं मगर उसमें कहीं उपहास का नामोनिशान नहीं रहता। चूंकि गांधी जी को अपने सामर्थ्य का पता है, वह हमेशा उन लोगों से मिलना पसन्द करते हैं, जो उनसे मतभेद रखते हैं। मगर व्यक्तिगत या छोटे मामलों में व्यक्तियों से व्यवहार करना एक बात है और ब्रिटिश सरकार जैसी अमूर्त वस्तु से, जो विजयी साम्राज्यवाद की प्रतिनिधि है, व्यवहार करना बिलकुल दूसरी बात है। इस बात को जानते हुये, गांधी जी कोई बड़ी आशा लेकर लॉर्ड इर्विन से मिलने नहीं गये थे। सविनय अवज्ञा आन्दोलन अब भी चल रहा था। मगर वह ढीला पड़ गया था; क्योंकि सरकार से 'सुलह करने की बातों का बड़ा जोर हो रहा था।

बातचीत का इन्तजाम फौरन हो गया और गांधीजी दिल्ली रवाना हुये। जवाहरलाल नेहरू से कहते गये कि अगर वाइसराय से काम—चलाऊ समझौते के

बारे में कोई बातचीत गम्भीर रूप से हुई तो मैं कार्य–समिति के मेम्बरों को बुला लूंगा। कुछ ही दिनों बाद जवाहरलाल नेहरू को दिल्ली का बुलावा आया। वह तीन हफ्ते तक वहां रहे। रोज मिलते और लम्बी–लम्बी बहस करते–करते थक जाते। गांधीजी कई बार लॉर्ड इर्विन से मिले। मगर कभी–कभी बीच में तीन चार रोज खाली भी जाते। शायद इसलिये कि भारत सरकार लन्दन में इण्डिया–आफिस से सलाह–मशविरा किया करती थी। कभी–कभी देखने में जरा–जरा सी बात या कुछ शब्दों के कारण ही गाड़ी रुक जाती। एक ऐसा शब्द था सविनय अवज्ञा को स्थगित कर देना। गांधी जी बराबर इस बात को स्पष्ट करते रहे कि सविनय अवज्ञा आखिरी तौर पर न तो बन्द ही किया जा सकता है, न छोड़ा ही जा सकता है; क्योंकि यही एक मात्र हथियार हिन्दुस्तान के लोगों के हाथों में है। हां वह स्थगित किया जा सकता है। लार्ड इर्विन को इस बात पर आपत्ति थी। वह ऐसा शब्द चाहते थे जिसका अर्थ निकलता हो, सविनय अवज्ञा छोड़ दिया गया। लेकिन यह गांधी जी को मंजूर नहीं होता था। आखिर 'डिसकन्टिन्यू' (रोक देना) शब्द इस्तेमाल किया गया। विदेशी कपड़े और शराब की दुकानों पर धरना देने की बाबत भी लम्बी चौड़ी बहस हुई। जवाहरलाल नेहरू और गांधी जी का बहुतेरा समय समझौते की अस्थायी तजबीजों पर गौर करने में लगा और मूलभूत बातों पर कम ध्यान दिया गया। शायद यह सोचा गया कि जब यह कामचलाऊ समझौता हो जायेगा और रोज–रोज की लड़ाई रोक दी जायेगी तब अधिक अनुकूल वातावरण में बुनियादी बातों पर गौर किया जा सकेगा। जवाहरलाल नेहरू और गांधी जी उस बातचीत को विराम–सन्धि की वार्ता मान रहे थे, जिसके बाद असली प्रश्नों पर आगे और बातचीत की जायेगी।

उन दिनों दिल्ली में हर तरह के लोग खिंच–खिंचकर आते थे। बहुत से विदेशी, खासकर अमरीकी पत्रकार थे और वे जवाहरलाल और गांधी जी की खामोशी पर कुछ नाराज से थे। वे कहते कि आपकी बनिस्वत तो हमें गांधी–इर्विन बातचीत के बारे में नई दिल्ली के सेक्रेटरियट से ज्यादा खबरें मिल जाती है और यह बात सही थी। इसके बाद बड़े–बड़े पदधारी लोग थे; जो गांधी जी के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करने के लिये दौड़े आते थे; क्योंकि अब तो महात्मा जी का सितारा बुलन्द हो रहा था। उन लोगों को, जो अब तक

गांधी जी से और कांग्रेस से दूर रहे, और जब–तब उनकी बुराई करते रहे थे अब उसका प्रायश्चित करने के लिये आते देखना मजेदार लगता था। कांग्रेस का बोलबाला होता हुआ दिखाई देता था और कौन जाने आगे क्या–क्या होकर रहे, इसलिये बेहतर यही है कि कांग्रेस और उसके नेताओं के साथ मेल–जोल करके रहा जाये। एक साल के बाद ही उनमें दूसरे परिवर्तन की लहर आती दिखाई दी। वे कांग्रेस के प्रति तथा उसके तमाम कार्यों के प्रति जोरों के साथ अपनी घृणा प्रदर्शित करने लगे और कहने लगे कि हमारा इनसे कोई वास्ता नहीं है।

फरवरी 1931 को दिल्ली में गांधी–इर्विन की बातचीत होती रहती थी, वह एकाएक रुक गई। कई दिनों तक वाइसराय ने गांधी जी को नहीं बुलाया और जवाहरलाल नेहरू को ऐसा लगा कि बातचीत टूट गई। कार्य–समिति के सदस्य दिल्ली से अपने–अपने सूबों में जाने की तैयारी कर रहे थे। जाने से पहले इन लोगों ने आपस में भावी कार्य की रूप–रेखाओं और सविनय अवज्ञा पर (जो कि अभी उसूलन जारी था) विचार–विनिमय किया। जवाहरलाल नेहरू को यकीन था कि ज्योंहि बातचीत के टूटने की बात पक्के–तौर पर जाहिर हो जायेगी, त्योंही हम सबके लिये फिर मिलकर बातचीत करने का मौका नहीं रह जायेगा। जवाहरलाल नेहरू गिरफ्तारियों की उम्मीद ही रखते थे। जवाहरलाल से कहा गया था और यह सम्भव भी दिखता था कि अबकी बार सरकार कांग्रेस पर जोर का धावा बोलेगी। वह अब तक के दमन से बहुत भयंकर होगा। सो ये सब आपस में आखिर–तौर पर मिल लिये और आन्दोलन को भविष्य में चलाने के विषय में कई प्रस्ताव किये। एक प्रस्ताव खासतौर पर मौके का था। अब तक रिवाज यह था कि कार्यवाहक सभापति अपने गिरफ्तार होने पर अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देता था और कार्य–समिति में जो स्थान खाली हो उनके लिये भी मेम्बरों को नामजद कर देता था। स्थानापन्न कार्य–समितियों की शायद ही कभी बैठकें होती थीं और उन्हें किसी भी विषय में नई बात करने के सीमित अधिकार थे। वे सिर्फ जेल जाने भर को थीं। इसमें एक जोखिम हमेशा ही लगी रहती थी और वह यह कि लगातार स्थानापन्न बनाने की कार्रवाई से सम्भव था कि कांग्रेस की स्थिति थोड़ी अटपटी हो जाये। इसमें खतरे भी थे। इसलिये दिल्ली में कार्य–समिति ने यह तय किया कि अब आगे से कार्यवाहक सभापति और स्थानापन्न सदस्य नामजद नहीं किये जाने चाहिये। जब तक मूल समिति के कुछ मेम्बर जेल

के बाहर रहेंगे तब तक वही पूरी कमेटी की हैसियत से काम करेंगे। जब सब मेम्बर जेल चले जायेंगे तब कोई समिति नहीं रहेगी, और जवाहरलाल नेहरू ने जरा दिखावे के तौर पर कहा कि सत्ता उस हालत में देश के प्रत्येक स्त्री—पुरुष के पास चली जायेगी। और जवाहरलाल उनसे आह्वान करते हैं कि वे बिना झुके लड़ाई को जारी रखें। इस प्रस्ताव में संग्राम को जारी रखने का वीरोचित मार्ग दिखाया गया था और समझौते के लिये कोई गली—कुचा नहीं रखा गया था। इसके द्वारा यह बात भी मंजूर की गई थी कि हमारे सदर मुकाम के लिये देश के हर हिस्से से अपना सम्पर्क रखने और नियमित रूप से आदेश भेजने में कठिनाई अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी। यह लाजिमी था, क्योंकि हमारे बहुतेरे कार्यकर्ता नामी स्त्री पुरुष थे और वे खुल्लमखुल्ला काम करते थे। वे कभी भी गिरफ्तार हो सकते थे। 1930 में छिपे तौर पर आदेश भेजने, रिपोर्ट मंगवाने और देखभाल करने के लिये कुछ आदमी भेजे जाते थे। व्यवस्था चली तो अच्छी और उसने यह भी दिखा दिया कि हम गुप्त खबरें देने के काम को बड़ी सफलता के साथ कर सकते हैं, लेकिन कुछ हद तक यह हमारे खुले आन्दोलन के साथ मेल नहीं खाती थी, और गांधी जी इसके खिलाफ थे। तो अब प्रधान कार्यालय से हिदायतें मिलने के अभाव में हमें काम की जिम्मेदारी स्थानीय लोगों पर ही छोड़नी पड़ी थी, वरना वे ऊपर से आदेश आने की राह देखते बैठे रहते और कुछ काम नहीं करते। हां, जब—जब मुमकिन होता आदेश भेजे भी जाते थे।

इस तरह जवाहरलाल नेहरू ने यह और दूसरे कई प्रस्ताव पास किये, (इनमें से कोई न तो प्रकाशित किया गया और न उन पर अमल ही किया गया। क्योंकि बाद को हालत बदल गई थी) और अपनी—अपनी जगह जाने के लिये बिस्तर बांध लिये। ठीक इसी वक्त लार्ड इर्बिन की तरफ से बुलावा आया और बातचीत फिर शुरू हो गई। 4 मार्च की रात को जवाहरलाल नेहरू आधी रात तक गांधी जी के वाइसराय—भवन से लौटने का इन्तजार कर रहे थे वह रात को कोई 2 बजे आये, और जवाहरलाल को जगाकर कहा कि समझौता हो गया है।[1]

---

1. नेहरू, जवाहरलाल— मेरी कहानी, पृ0सं0 301 से 310

गाँधी इर्विन समझौता[1]

एस.481/31 राजनीतिक (Political)

भारत सरकार (गृह विभाग)

नई दिल्ली,5 मार्च,1931

आख्यापन (सूचना) (Notification)

अधोलिखित विज्ञप्ति गवर्नर जनरल इन कौंसिल द्वारा प्रकाशित की गयी है सूचनार्थ—

1. सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस लिया जायेगा।
2. वैधानिक सरकार की संस्थापना हेतु गोलमेज कान्फ्रेन्स में विचार होगा और उसी में सुरक्षा, विदेशी सम्बन्धों के मामले, अल्पसंख्यकों की स्थिति आदि पर विचार होगा।
3. वैधानिक संशोधन को ध्यान में रखकर कांग्रेस के प्रतिनिधि गोलमेज कान्फ्रेन्स में भाग लेंगे।
4. समझौता सविनय अवज्ञा आन्दोलन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित कार्यवाही पर लागू होगा।
5. सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस लिया जायेगा अर्थात तद्विषयक समस्त कार्यवाही रोक दी जायेगी जैसे— मालगुजारी न देने के लिये चलाया जा रहा आन्दोलन।
6. राजनीतिक हथियार के रूप में ब्रिटिश सामान का बहिष्कार नहीं किया जायेगा।
7. नियमानुसार मद्यपान रोकने हेतु धरना जारी रह सकेगा बशर्ते उसमें सरकार पर दबाव डालने की इच्छा न हो।
8. पुलिस कार्यवाही व रुख की जांच नहीं होगी क्योंकि इससे परस्पर तर्क—वितर्क बढ़ेगा।

---

1. भटनागर, राजेन्द्र मोहन — भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पृ०सं० 219, 220

9. सविनय अवज्ञा आन्दोलन से सम्बन्धित आर्डिनेंस वापस ले लिये जायेंगे।

10. 'क्रिमिनल ला' संशोधन कानून 1908 वापस ले लिया जायेगा।

11. ओर्डिनेंस नं0 1 (1931 का) अप्रभावी हो जायेगा।

12. सविनय अवज्ञा आन्दोलन में गिरफ्तार लोगों पर चल रहे मुक़दमे वापस ले लिये जायेंगे।

13. सविनय अवज्ञा आन्दोलन में गिरफ्तार उन कैदियों को छोड़ दिया जायेगा जिन्होंने हिंसा की वारदात नहीं की है।

14. यदि अभी तक जमानतें या जुर्माना अदा न हुआ तो अब जमानतों की आवश्यकता नहीं रहेगी और न जुर्माना अदा करना पड़ेगा।

15. अतिरिक्त पुलिस वापस बुली ली जायेगीं।

16. वह जब्त चल सम्पत्ति, जो सरकार के कब्जे गें है, लौटा दी जायेगी। यदि चल सम्पत्ति बेच दी गई तो उसका मुआवजा नहीं दिया जायेगा।

17. यदि अचल सम्पत्ति आर्डिनेंस 1930 के अन्तर्गत सरकार ने जब्त की है तो वह लौटा दी जायेगी।

18. यदि सरकार यह महसूस करेगी कि वसूली अनुचित हुई है तो वह क्षतिपूर्ति करेगी।

19. उन राज्य कर्मचारियों को जिन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था, नौकरी में पुनः लेने पर सरकार उदारता से विचार करेगी।

20. वर्तमान में सरकार आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुये यह नहीं कर सकती कि नमक कानून को समाप्त कर दे अथवा उसमें कुछ संशोधन कर दे। परन्तु यह सम्भव होगा कि सरकार कुछ गरीब वर्गों को यह सुविधा दे सकेगी कि वे अपने उपयोग के लिये नमक बना सके। परन्तु वे नमक बेच नहीं सकेंगे।

21. कांग्रेस द्वारा यह समझौता लागू न करने पर सरकार शान्ति व व्यवस्था बनाये

रखने के लिये आवश्यक कार्यवाही कर सकेगी।

हस्ताक्षर (एच0डब्लयू0इर्विन)

सचिव भारत सरकार

मशविदा देखा। बहुतेरी धाराओं को तो जवाहरलाल जानते थे, क्योंकि अक्सर उनपर चर्चा होती रहती थी; लेकिन धारा नं. 2, जो कि सबसे ऊपर ही थी और संरक्षण आदि के बारे में थी उसे देखकर जवाहरलाल नेहरू को जबरदस्त धक्का लगा। जवाहरलाल नेहरू उसके लिये कतई तैयार न थे, मगर जवाहरलाल उस वक्त कुछ न बोल सके और फिर वह सब सो गये। अब कुछ करने की गुंजाइश भी कहां रह गई थी? बात तो हो चुकी थी। हमारे नेता अपना वचन दे चुके थे और अगर हम राजी न भी हों तो कर क्या सकते थे? क्या उनका विरोध करें, क्या उनसे अलहदा हो जायें! अपने मतभेद की घोषणा करें? हो सकता है कि इससे किसी व्यक्ति को अपने लिये सन्तोष हो जायें। परन्तु अन्तिम फैसले पर उसका क्या असर पड़ सकता था? कम–से–कम कुछ समय के लिये तो सविनय–अवज्ञा आन्दोलन खत्म हो चुका था। अब जबकि सरकार यह घोषित कर सकती थी कि गांधीजी समझौता कर चुके हैं तो कार्य–समिति तक उसे आगे नहीं बढ़ा सकती थी।

जवाहरलाल इस बात के लिये तो बिल्कुल राजी थे, जैसे कि उनके दूसरे साथी भी थे, कि सविनय अवज्ञा स्थगित कर दिया जाय और सरकार के साथ अस्थायी समझौता कर लिया जाये। इनमें से किसी के लिये यह आसान बात न थी कि अपने साथियों को वापस जेल भेज दें या जो कई हजार लोग पहले से जेलों में पड़े हुये हैं, उनको वहीं पड़ा रहने देने के साधन बनें। जेलखाना ऐसी जगह नहीं जहां जवाहरलाल नेहरू अपने दिन और रात गुजारा करें। हालांकि वे सब अपने को उसके लिये तैयार रखते हैं और आत्मा को कुचल डालनेवाले उसके दैनिक कार्यक्रम के बारे में बड़े हल्के दिल से बातें करते हैं। इसके अलावा तीन हफ्ते से ज्यादा दिन गांधीजी और लार्ड इर्विन के बीच जो बातें चलीं, उनसे लोगों

के दिलों में ये आशायें बंध गई कि समझौता होने वाला है और अब अगर उसके आखिरी तौर पर टूट जाने की खबर मिले तो उससे उनको निराशा होगी। यह सोचकर कार्य–समिति के सब मेम्बर अस्थायी समझौते के (क्योंकि इससे अधिक वह हो भी नहीं सकता था) पक्ष में थे, बशर्ते कि उसके द्वारा अपनी कोई अत्यन्त महत्व की बात छोड़नी पड़ती हो। जहां तक जवाहरलाल नेहरू से सम्बन्ध है, जिन दूसरी बातों पर काफी बहस–मुबाहिसा हुआ, उनसे जवाहरलाल को इतनी ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी; जवाहरलाल को सबसे ज्यादा खयाल दो बातों का था। एक तो यह कि हमारा स्वतन्त्रता का ध्येय किसी भी तरह नीचा न किया जाय, और दूसरा यह कि समझौते का संयुक्त प्रान्त के किसान की स्थिति पर क्या असर होगा। हमारा लगानबन्दी–आन्दोलन अब तक बहुत कामयाब रहा था, और कुछ इलाकों में तो मुश्किल से लगान वसूल हो पाया था। किसान खूब रंग में थे। और संसार की कृषि–सम्बन्धी अवस्थायें और चीजों के भाव बहुत खराब थे जिससे उनके लिये लगान अदा करना और मुश्किल हो गया था। करबन्दी आन्दोलन राजनैतिक और आर्थिक दोनों तरह का था। अगर सरकार के साथ कोई क्षणिक समझौता हो जाता है तो सविनय अवज्ञा वापस ले लिया जायेगा और उसका राजनैतिक आधार निकल जायेगा। लेकिन उसके आर्थिक पहलू के भावों की इतनी गिरावट के और किसानों की मुकर्रर की हुई किस्त के मुकाबले में कुछ देने की असमर्थता के विषय में क्या होगा? गांधीजी ने लार्ड इर्विन से यह प्रश्न बिल्कुल साफ कर लिया था। उन्होंने कहा था–करबन्दी आन्दोलन बन्द कर दिया जायेगा, तो भी हम किसानों को यह सलाह नहीं दे सकते कि वे अपनी ताकत या हैसियत से ज्यादा दें। चूंकि यह प्रान्तीय मामला था, भारत सरकार के साथ इसकी ज्यादा चर्चा नहीं हो सकती थी। जवाहरलाल को यह यकीन दिलाया गया था कि प्रान्तीय सरकार इस विषय में खुशी के साथ हमसे बातचीत करेगी और अपने बस–भर किसानों की तकलीफें दूर करने की कोशिश करेगी। यह एक गोलमोल आश्वासन था। लेकिन उन हालतों में इससे ज्यादा पक्की बात होना मुश्किल था। इस तरह यह मामला उस वक्त के लिये तो खत्म ही हो गया था। अब हमारी स्वाधीनता का, अर्थात हमारे उद्‌देश्य का, महत्वपूर्ण प्रश्न बाकी रहा और समझौते की धारा नंबर दो से जवाहरलाल को यह मालूम पड़ा कि यह भी खतरे में जा पड़ा है। क्या इसीलिये इन लोगों ने एक साल तक अपनी बहादुरी दिखाई? क्या इनकी बड़ी–बड़ी जोरदार बातों और

कामों का खात्मा इसी तरह होना था? क्या कांग्रेस का स्वाधीनता प्रस्ताव और 26 जनवरी की प्रतिज्ञा इसीलिये की गई थी? इस तरह के विचारों में डूबे हुये जवाहरलाल मार्च की उस रात भर पड़े रहे और अपने दिल में ऐसी शून्यता महसूस करने लगे कि मानो उसमें से कोई कीमती चीज सदा के लिये निकल गई हो–[1]

तरीका ये दुनिया का देखा सही–

गरजते बहुत वे बरसते नहीं।

गांधीजी ने किसी से जवाहरलाल की मानसिक व्यथा का हाल सुना और दूसरे दिन सुबह घूमने के वक्त अपने साथ चलने के लिये जवाहरलाल से कहा। बड़ी देर तक जवाहरलाल ने बातचीत की, जिसमें गांधीजी ने जवाहरलाल को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि न तो कोई अत्यन्त महत्व की बात छोड़ दी गई है और न कोई सिद्धान्त ही त्यागा गया है। उन्होंने धारा नम्बर दो का एक विशेष अर्थ लगाया, जिससे वह हमारी स्वतन्त्रता की मांग से मेल खा सके। इसमें उनका आधार खासकर 'भारत के हित में' शब्द थे। यह अर्थ जवाहरलाल को खींचातानी का मालूम हुआ। जवाहरलाल नेहरू उनके कायल तो नहीं हुये लेकिन उनकी बातचीत से जवाहरलाल को कुछ सांत्वना जरूर हुई; जवाहरलाल नेहरू ने उनसे कहा कि समझौते के गुण–दोष को एक तरफ रख दें तो भी एकाएक कोई नई बात खड़ी कर देने के आपके तरीके से जवाहरलाल डरते हैं। आप में कुछ ऐसी अज्ञात वस्तु है, जिसे चौदह साल के निकट सम्पर्क के बाद भी जवाहरलाल नेहरू बिल्कुल नहीं समझ सके और इसने उनके मन में भय पैदा कर दिया है। उन्होंने अपने अन्दर ऐसे अज्ञात तत्व का होना तो स्वीकार किया; मगर कहा कि जवाहरलाल खुद भी इसके लिये जबावदेह नहीं हो सकते, न यही पहले से बता सकते हैं कि वह जवाहरलाल को कहां और किस ओर ले जायेंगे। एक–दो दिन तक जवाहरलाल नेहरू बड़ी दुविधा में पड़े रहे। समझ न सके कि क्या करें। अब समझौते के विरोध का या उसे रोकने का कोई सवाल ही नहीं था। वह वक्त गुजर चुका था और जवाहरलाल नेहरू जो कुछ कर सकते थे वह यह कि व्यवहार में उसे स्वीकार करते हुये सिद्धान्ततः अपने को

---

1. नेहरू, जवाहरलाल– मेरी कहानी, पृ0सं0 311, 312

उससे अलग रखें। इससे जवाहरलाल के अभिमान को कुछ सान्त्वना मिल जाती लेकिन पूर्ण स्वराज के बड़े प्रश्न पर इसका क्या असर पड़ सकता था? जब क्या यह अच्छा न होगा कि जवाहरलाल नेहरू उसे खूबसूरती के साथ मंजूर कर लें और उसका अधिक से अधिक अनुकूल अर्थ लगायें, जैसा कि गांधीजी ने उसी अर्थ पर जोर दिया और कहा कि हम स्वतंत्रता के प्रश्न पर पूरे–पूरे अटल हैं। वह लार्ड इर्विन के पास गये और इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया जिससे कि उस समय या आगे कोई गलतफहमी न होने पाये। उन्होंने उनसे कहा कि यदि कांग्रेस गोलमेज–कान्फ्रेंस में अपना प्रतिनिधि भेजें, तो उसका आधार एकमात्र स्वतंत्रता ही हो सकता है और उसे पेश करने के लिये ही वहां जाया जा सकता है। अवश्य ही लार्ड इर्विन इस दावे को मान तो नहीं सकते थे लेकिन उन्होंने यह मंजूर किया कि हां कांग्रेस को उसे पेश करने का हक है।

इसलिये जवाहरलाल ने समझौते को मान लेना और दिल से उसके लिये काम करना तय किया। यह बात नहीं कि ऐसा करते हुये जवाहरलाल को बहुत मानसिक और शारीरिक क्लेश न हुआ हो। मगर जवाहरलाल नेहरू को बीच का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता था। समझौते के पहले तथा बाद में लार्ड इर्विन के साथ बातचीत के दरमियान गांधीजी ने सत्याग्रही कैदियों के अलावा दूसरे राजनैतिक कैदियों की रिहाई की भी पैरवी की थी। सत्याग्रही कैदी तो समझौते के फलस्वरूप अपने–आप रिहा हो ही जाने वाले थे। लेकिन दूसरे ऐसे हजारों कैदी थे, जो मुकदमा चलाकर जेल भेजे गये थे और ऐसे नजरबन्द भी थे, जो बिना मुकदमा चलाये, बिना इल्जाम लगाये या सजा दिये ही जेलों में ठूंस दिये गये थे। इनमें से कितने ही नजरबन्द वर्षों से जेलों में पड़े हुये थे और उनके बारे में सारे देश में नाराजगी फैली हुई थी—खासकर बंगाल में जहां कि बिना मुकदमा चलाये कैद कर देने के तरीके से बहुत ज्यादा काम लिया गया। पेनग्विन आईलैण्ड के जनरल स्टाफ के मुखिया की तरह (या शायद ड्रेफस के मामले की तरह) भारत सरकार का भी मानना था कि सबूत का न होना ही बढ़िया सबूत है। सबूत का न होना तो गैरसाबित किया ही नहीं जा सकता। नजरबन्दों पर सरकार का यह आरोप था कि वे हिंसात्मक प्रकार के असली या अप्रत्यक्ष क्रान्तिकारी हैं। गांधीजी ने समझौते के अंग–स्वरूप तो नहीं परन्तु इसलिये कि बंगाल में राजनैतिक तनातनी कम हो जाये

और वातावरण अपनी मामूली स्थिति में आ जाये, उनकी रिहाई की पैरवी की थी। मगर सरकार इस पर रजामन्द नहीं हुई। भगत सिंह की फांसी की सजा रद्द कराने के लिये गांधीजी ने जो जोरदार पैरवी की उसको भी सरकार ने मंजूर नहीं किया। उसका भी समझौते से कोई सम्बन्ध न था। गांधीजी ने इस पर भी अलहदा तौर पर जोर इसलिये दिया कि इस विषय पर भारत में बहुत तीव्र लोक—भावना थी। मगर उनकी पैरवी बेकार गई।

उन्हीं दिनों की एक कौतूहलवर्धक घटना जवाहरलाल नेहरू को याद थी, जिसने हिन्दुस्तान के आतंकवादियों की मनःस्थिति का आन्तरिक परिचय जवाहरलाल नेहरू से कराया। जवाहरलाल के जेल से छूटने के पहले ही या मोतीलाल की मृत्यु से पहले या बाद यह घटना हुई। एक अजनबी जवाहरलाल से मिलने आया। उसने जवाहरलाल से कहा गया कि वह चन्द्रशेखर आजाद है। जवाहरलाल नेहरू ने उसे पहले कभी नहीं देखा था। हां, दस वर्ष पहले उन्होंने उसका नाम जरूर सुना था, जबकि 1921 के असहयोग—आन्दोलन के जमाने में स्कूल से असहयोग करके वह जेल गया था। इस समय वह कोई पन्द्रह साल का रहा होगा और जेल के नियम भंग करने के अपराध में जेल में उसे बेंत लगाये गये थे। बाद को उत्तर भारत में वह आतंकवादियों का एक मुख्य आदमी बन गया। इसी तरह का कुछ—कुछ हाल जवाहरलाल नेहरू ने सुन रखा था। मगर इन अफवाहों में जवाहरलाल ने कोई दिलचस्पी नहीं ली थी। इसलिये वह आया तो उनको ताज्जुब हुआ।[1]

वह जवाहरलाल नेहरू से इसलिये मिलने को तैयार हुआ था कि उनके छूट जाने से आमतौर पर ये आशायें बंधने लगीं कि सरकार और कांग्रेस में कुछ—न—कुछ समझौता होने वाला है। वह जवाहरलाल नेहरू से जानना चाहता था कि अगर कोई समझौता हो तो उनके दल के लोगों को भी कुछ शान्ति मिलेगी या नहीं? क्या उनके साथ तब भी विद्रोहियों का—सा बर्ताव किया जायेगा? जगह—जगह उनका पीछा इसी तरह किया जायेगा? उनके सिरों के लिये इनाम घोषित होते ही रहेंगे और फांसी का तख्ता हमेशा लटकता रहा करेगा, या उनके लिये शान्ति के साथ काम—धन्धे में लग जाने की भी कोई सम्भावना होगी?

---

1. नेहरू, जवाहरलाल— मेरी कहानी, पृ0सं0 314, 315

उसने कहा कि खुद मेरा तथा मेरे दूसरे साथियों का यह विश्वास हो चुका है कि आतंकवादी तरीके बिल्कुल बेकार हैं और उनसे कोई लाभ नहीं है। हां वह यह मानने के लिये तैयार नहीं था कि शान्तिमय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायेगी। उसने कहा, "आगे कभी सशस्त्र लड़ाई का मौका आ सकता है। मगर वह आतंकवाद न होगा।" हिन्दुस्तान की आजादी के लिये उसने आतंकवाद को खारिज ही कर दिया था। पर उसने फिर पूछा कि अगर मुझे शान्ति के साथ जमकर बैठने का मौका न दिया जाय रोज–रोज मेरा पीछा किया जाय, तो मैं क्या करूंगा? उसने कहा " इधर हाल में जो आतंककारी घटनायें हुई हैं वे ज्यादातर आत्म–रक्षा के लिये ही की गई हैं।"

जवाहरलाल नेहरू को आजाद से यह खबर सुनकर खुशी हुई थी और बाद में उसका और सबूत भी मिल गया कि आतंकवाद पर से उन लोगों का विश्वास हट गया है। एक दल के विचार के रूप में तो वह अवश्य ही लगभग मर गया है और जो कुछ व्यक्तिगत इक्की–दुक्की घटनायें हो जाती हैं वे या तो किसी कारण बदले के लिये या बचाव के लिये या किसी की व्यक्तिगत लहर के फलस्वरूप हुई घटनायें हैं न कि आम धारणा के फलस्वरूप। अवश्य ही इसके यह मानी नहीं है कि पुराने आतंकवादी ओर उनके नये साथी अहिंसा के हामी बन गये हैं या ब्रिटिश सरकार के भक्त बन गये हैं। हां अब वे पहले की तरह आतंकवादियों की भाषा में नहीं सोचते। जवाहरलाल को तो ऐसा मालूम हुआ कि उनमें से बहुतों की मनोवृत्ति निश्चित रूप से फासिस्ट बन गई थी। जवाहरलाल नेहरू ने चन्द्रशेखर आजाद को अपना राजनैतिक सिद्धान्त समझाने की कोशिश की और यह भी कोशिश की कि वह जवाहरलाल नेहरू के दृष्टिबिन्दु का कायल हो जाये। लेकिन उसके असली सवाल का, कि "अब मैं क्या करूं"? उनके पास कोई जबाव न था। ऐसी कोई बात होती हुई नहीं दिखाई देती थी कि जिससे उसको या उसके जैसों को कोई राहत या शान्ति मिले। मैं जो कुछ उसे कह सकता था वह इतना ही कि वह भविष्य में आतंकवादी कार्यों को रोकने की कोशिश करे, क्योंकि उससे हमारे बड़े कार्य को तथा खुद उसके दल को भी नुकसान पहुंचेगा।

दो–तीन हफ्ते बाद ही, जब गांधी–इर्विन बातचीत चल रही थी जवाहरलाल नेहरू ने दिल्ली में सुना कि चन्द्रशेखर आजाद पर इलाहाबाद में पुलिस ने गोली

चलाई और वह मर गये। दिन के वक्त एक पार्क में वह पहचाने गये और पुलिस के एक बड़े दल ने आकर उन्हें घेर लिया। एक पेड़ के पीछे से उन्होंने अपने को बचाने की कोशिश की। दोनों तरफ से गोलियां चलीं। एक–दो पुलिस वालों को घायल कर अन्त में गोली लगने से वह मर गये।

अस्थायी समझौता होने के बाद शीघ्र ही जवाहरलाल दिल्ली से लखनऊ पहुंचे। उन्होंने सारे देश में सविनय–अवज्ञा बन्द करने के लिये आवश्यक तमाम कार्रवाई की, और कांग्रेस की तमाम शाखाओं ने जवाहरलाल के आदेशों का पालन बड़े ही अनुशासन से किया। उनके साथियों में से ऐसे कितने ही लोग थे जो समझौते से नाराज थे, और कितने ही तो आगबबूला भी थे। उन्हें सविनय–अवज्ञा से रोकने पर मजबूर करने के लिये जवाहरलाल के पास कोई साधन न था। मगर जहां तक जवाहरलाल नेहरू को मालूम था, बिना एक भी अपवाद के उस सारे विशाल संगठन ने इस नई व्यवस्था को स्वीकार करके उस पर अमल किया, हालांकि कितने ही लोगों ने उसकी बड़ी आलोचना भी की थी। जवाहरलाल नेहरू को खासतौर पर दिलचस्पी थी कि हमारे सूबे में इसका क्या असर होगा। क्योंकि वहां कुछ क्षेत्रों में करबन्दी आन्दोलन तेजी से चल रहा था। जवाहरलाल का पहला काम यह देखना था कि सत्याग्रही कैदी रिहा हो जायें। वे हजारों की तादाद में प्रतिदिन छूटते थे और कुछ समय बाद उन हजारों नजरबन्दों के और उन लोगों के अलावा जो हिंसात्मक कार्यों के लिये सजा पाये हुये थे और रिहा नहीं किये गये थे– सिर्फ वही लोग जेल में रह गये जिनका मामला विवादास्पद था।

ये जेल से छूटे हुये कैदी जो अपने गांवों और कस्बों में गये तो स्वभावतः लोगों ने उनका स्वागत किया। कई लोगों ने सजावट भी की, बन्दनवारें लगाई, जुलूस निकाले, सभायें कीं, भाषण हुये और स्वागत में मानपात्र भी दिये गये। यह सब कुछ होना बहुत स्वाभाविक था और इसी की आशा भी की जा सकती थी। वह जमाना, जब कि चारों ओर पुलिस की लाठियां ही लाठियां दिखाई देती थीं। सभा और जुलूस जबरदस्ती बिखेर दिये जाते थे। एकाएक बदल गया था इससे पुलिसवाले जरा बेचैनी अनुभव करने लगे और कदाचित जवाहरलाल के बहुतेरे जेल से आने वालों में विजय का भाव भी आ गया था। यों अपने को

विजयी मानने का शायद ही कोई कारण था; लेकिन जेल से आने पर (अगर जेल में आत्मा कुचल न दी गई हो तो) हमेशा एक आनन्द और अभिमान की भावना पैदा होती है, और झुण्ड के झुण्ड लोगों के एक साथ जेल से छूटने पर तो यह आनन्द और अभिमान और अधिक बढ़ जाता है।

जवाहरलाल नेहरू ने इस बात का जिक्र इसलिये किया है कि आगे जाकर सरकार ने इस 'विजय भाव' पर बड़ा ऐतराज किया था, और जवाहरलाल पर इसके लिये इल्जाम लगाया गया था। हमेशा हुकूमत–परस्ती के वातावरण में रहने और पाले–पोसे जाने के कारण और शासन के सम्बन्ध में ऐसे फौजी स्वरूप की धारणा होने से जिसको जनता का आधार या समर्थन प्राप्त नहीं होता, उनके नजदीक अपने तथाकथित रोब के घट जाने से बढ़कर दुःखदायी बात दूसरी नहीं हो सकती। जहां तक जवाहरलाल नेहरू को पता है, कि उनमें से किसी को इसका कोई खयाल न था और जब उन्होंने बाद को यह सुना कि लोगों की इस गुस्ताखी पर सरकारी अफसर ठेठ शिमला से लेकर नीचे मैदान तक आग–बबूला हो गये हैं और ऐसा अनुभव करने लगे हैं मानो उनके अभिमान पर चोट पड़ी है, तो हम आश्चर्य से दंग रह गये। जो अखबार उनके विचारों की प्रतिध्वनि करते हैं वे अब तक भी उससे बरी नहीं हुये हैं। अब भी वे हालांकि तीन–साढ़े तीन साल हो गये हैं उन साहसिक और बुरे दिनों का जिक्र भय से कांपते हुये करते हैं जबकि उनके मतानुसार कांग्रेसी इस तरह विजय–घोष करते फिरते थे कि मानो उन्होंने कोई बड़ी भारी विजय प्राप्त की हो। अखबारों में सरकार ने और उनके दोस्तों ने जो गुस्सा उगला वह उनके लिये एक नई बात थी। उससे पता लगा कि वे कितने घबरा गये थे, उन्हें अपने दिल को कितना दबा–दबाकर रखना पड़ता था, जिससे उनके मन में कैसी गांठ पड़ गई थी; यह एक अनोखी बात है कि थोड़े से जुलूसों से और उनके साथियों के कुछ भाषणों से उनमें इतना तहलका मच गया।[1]

सच पूछो तो कांग्रेस के साधारण लोगों में ब्रिटिश सरकार को 'हरा देने का कोई भाव' नहीं था; और नेताओं में तो और भी नहीं। लेकिन हां अपने भाइयों और

---

1. नेहरू, जवाहरलाल– मेरी कहानी, पृ0सं0 316, 317

बहनों के त्याग और साहस पर इन लोगों के अन्दर एक विजय की भावना जरूर थी। देश ने 1930 में जो कुछ किया उस पर जवाहरलाल को अवश्य गर्व था। उसने इनको अपनी ही निगाहों में ऊंचा उठा दिया; हममें आत्मविश्वास पैदा किया और इस बात के खयाल से हमारे छोटे–से–छोटे स्वयंसेवक की भी छाती तन जाती और सिर ऊंचा हो जाता था। जवाहरलाल यह भी अनुभव करते थे कि इस महान आयोजन ने जिसने सारी दुनिया का ध्यान अपनी तरफ खींच लिया था, ब्रिटिश सरकार पर बहुत भारी दबाव डाला और इनको अपने ध्येय के ज्यादा नजदीक पहुंचाया। इन सबका 'सरकार को हराने' से कोई ताल्लुक न था; और वास्तव में तो इनमें से बहुतों का यही खयाल रहा कि दिल्ली–समझौता में तो सरकार ही ज्यादा फायदे में रही है। इसमें से जिन लोगों ने यह कहा कि अभी तो हम अपने ध्येय से बहुत दूर हैं और एक बड़ा और एक मुश्किल संग्राम सामने आने को है वे सरकार के मित्रों के द्वारा लड़ाई को उकसाने और दिल्ली–समझौते की भावना को भंग करने के दोषी तक बताये गये। संयुक्त प्रांत में अब हमें किसानों के मामले का सामना करना था। हमारी नीति अब यह थी कि जहां तक मुमकिन हो, ब्रिटिश सरकार से सहयोग किया जाय और इसलिये जवाहरलाल ने तुरन्त ही संयुक्त प्रान्तीय सरकार के साथ उसकी कार्यवाही शुरू कर दी। बहुत दिनों के बाद सूबे के कुछ बड़े अफसरों से कोई बारह साल तक इन्होंने इधर सरकारी तौर पर कोई व्यवहार नहीं रखा था। जवाहरलाल नेहरू किसानों के मामलों पर चर्चा करने के लिये मिले। इस विषय में इनकी लम्बी लिखा–पढ़ी भी चली। प्रान्तीय कमेटी ने प्रान्त के प्रमुख नेता श्री गोविन्दवल्लभ पन्त को एक मध्यस्थ के तौर पर नियत किया, जो लगातार प्रान्तीय सरकार के सम्पर्क में रहें। सरकार की तरफ से यह बात मान ली गई कि हां, किसान वाकई संकट में हैं। अनाज के भाव बहुत बुरी तरह गिर गये हैं और एक औसत किसान लगान देने में असमर्थ है। सवाल सिर्फ यह था कि छूट कितनी दी जाय। इस विषय में कुछ कार्रवाई करना प्रान्तीय सरकार के हाथ में था। साधारणतया सरकार जमींदारों से ही ताल्लुक रखती है, सीधे काश्तकारों से नहीं और लगान कम करना या उसमें छूट देना जमींदारों का ही काम था। लेकिन जमींदारों ने तब तक ऐसा करने से इन्कार कर दिया, जब तक कि सरकार भी उनको उतनी ही छूट न दे दे और उन्हें तो किसी भी सूरत में अपने काश्तकारों को छूट देने की ऐसी जरूरत नहीं पड़ी थी इसलिये

फैसला तो आखिर सरकार को ही करना था।

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने किसानों से कह दिया था कि कर–बन्दी की लड़ाई रोक दी गई है और जितना हो सके उतना लगान दे दो। मगर उनके प्रतिनिधि की हैसियत से उसने काफी छूट चाही थी। बहुत दिनों तक सरकार ने कुछ भी कार्रवाई नहीं की। शायद गवर्नर सर माल्कम हेली के छुट्टी या स्पेशल ड्यूटी पर चले जाने से वह दिक्कत महसूस कर रही थी। और इस मामले में तुरन्त और व्यापक परिणाम लाने वाली कार्रवाई करने की जरूरत थी। कार्यवाहक गवर्नर और उनके साथी ऐसी कार्यवाही करने में हिचकते थे, और सर माल्कम हेली के आने तक (गर्मियों तक) मामले को आगे धकेलते रहे। इस देरी और ढील–ढाल ने उस मुश्किल हालत को और भी खराब बना दिया जिससे काश्तकारों को बहुत नुकसान बर्दाश्त करना पड़ा।

दिल्ली–समझौते के बाद ही जवाहरलाल नेहरू की तन्दरुस्ती कुछ खराब हो गई। जेल में भी उनकी तबियत कुछ खराब रही थी। उसके बाद उनके पिताजी मोतीलाल नेहरू की मृत्यु से गहरा धक्का लगा और फिर फौरन ही दिल्ली में सुलह की चर्चा का जोर पड़ा। यह सब उनके स्वास्थ्य के लिये हानिकर साबित हुआ। लेकिन कराची–कांग्रेस में जाने तक जवाहरलाल कुछ–कुछ ठीक हो चले थे।

कराची हिन्दुस्तान के ठेठ उत्तर–पश्चिम कोने में है, जहां की यात्रा जरा मुश्किल होती है। बीच में बड़ा रेतीला मैदान है, जिससे वह हिन्दुस्तान के शेष हिस्सों से बिलकुल जुदा–सा पड़ जाता है। लेकिन फिर भी वहां दूर–दूर के हिस्सों से बहुत से लोग आये थे और वे उस समय देश का जैसा मिजाज था उसको सही तौर पर जाहिर करते थे। उनके दिलों में शान्ति के भाव थे और राष्ट्रीय आन्दोलन की जो ताकत देश में बढ़ रही थी, उसके प्रति गहरा सन्तोष था। कांग्रेस–संगठन के प्रति, जिसने कि देश की भारी पुकार और मांग का बड़ी योग्यतापूर्वक जबाव दिया था और जिसने अनुशासन और त्याग के द्वारा अपने अस्तित्व की पूरी सार्थकता दिखलाई थी, उनके मन में अभिमान था। अपने लोगों के प्रति विश्वास का भाव था और उस उत्साह में संयम भी दिखलाई पड़ता था इसके साथ ही आगे आने वाले जबरदस्त प्रश्नों और खतरों के प्रति जिम्मेदारी का भी गहरा भाव था। हमारे शब्द और प्रस्ताव अब राष्ट्रीय

पैमाने पर किये जाने वाले कार्यों के मंगलाचरण—से थे और वे यों ही बिना सोचे—विचारे न बोले जाते थे, न पास किये जाते थे। दिल्ली समझौता यद्यपि भारी बहुमत से पास हो गया था, तो भी वह लोकप्रिय नहीं था, ओर न पसन्द ही किया गया था और लोगों के अन्दर यह भय काम कर रहा था कि यह हमें तरह—तरह की भद्‌दी और विषम स्थितियों में लाकर डाल देगा। कुछ ऐसा दिखाई पड़ता था कि देश के सामने जो सवाल हैं उनको अस्पष्ट कर देगा। कांग्रेस—अधिवेशन के ठीक पहले ही देश की नाराजगी का एक ओर कारण पैदा हो गया था भगतसिंह का फांसी पर लटकाया जाना। उत्तर भारत में इस भावना की लहर तेज थी और कराची उत्तर में ही होने के कारण वहां पंजाब से बड़ी तादाद में लोग आये थे। पिछली किसी भी कांग्रेस की बनिस्बत कराची—कांग्रेस में तो गांधीजी की और भी बड़ी निजी विजय हुई है। उसके सभापति सरदार बल्लभभाई पटेल हिन्दुस्तान के बहुत ही लोकप्रिय और जोरदार आदमी थे और उन्हें गुजरात के सफल नेतृत्व की सुकीर्ति प्राप्त थी। फिर भी उसमें प्रधानता तो गांधीजी की ही थी। वह अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में सीमाप्रांत से भी लालकुर्तीवालों का एक अच्छा दल वहां पहुंचा था। लालकुर्तीवाले बड़े लोकप्रिय थे। जहां कहीं भी जाते लोग तालियों से उनका स्वागत करते क्योंकि अप्रैल 1930 के बाद से अब तक गहरी उत्तेजना दिखाई जाने पर भी उन्होंने असाधारण शान्ति और साहस की छाप हिन्दुस्तान पर डाली थी। लालकुर्ती नाम से कुछ लोगों को यह गुमान हो जाता था कि वे कम्युनिस्ट या वामपक्षीय मजदूर दल के थे। उनका असली नाम तो 'खुदाई खिदमतगार' था और वह संगठन कांग्रेस के साथ मिलकर काम करता था। (और 1931 में बाद को कांग्रेस का एक अभिन्न अंग बना लिया गया था)। वे लालकुर्ती महज इसलिये कहलाते थे कि उनकी वर्दी जरा पुराने ढंग की लाल थी। उनके कार्यक्रम में कोई आर्थिक नीति शामिल न थी, वह पूर्णरूप से राष्ट्रीय था और उसमें सामाजिक सुधार का काम भी शामिल था।[1]

कराची के मुख्य प्रस्ताव में दिल्ली समझौता और गोलमेज—कांफ्रेंस का विषय था। कार्यसमिति ने जिस अन्तिम रूप में उसे पास किया था उसे जवाहरलाल नेहरू ने अवश्य ही मंजूर कर लिया था, मगर जब गांधीजी ने जवाहरलाल नेहरू को खुले अधिवेशन

---

1. नेहरू, जवाहरलाल— मेरी कहानी, पृ0सं0 318, 319

में उसे पेश करने के लिये कहा तो वह जरा हिचकिचाये। यह उनकी तबीयत के खिलाफ था। पहले तो उन्होंने इन्कार कर दिया, मगर बाद को यह उनको अपनी कमजोरी और असन्तोषजनक स्थिति दिखाई दी। या तो जवाहरलाल को इसके पक्ष में होना चाहिये या इसके खिलाफ; यह मुनासिब न था कि ऐसे मामले में वे टालमटोल करें और लोगों को अटकलें बांधने के लिये खुला छोड़ दें। अतः बिलकुल आखिरी घड़ी पर, खुले अधिवेशन में, प्रस्ताव आने के कुछ ही मिनट पहले जवाहरलाल नेहरू ने उसे पेश करने का निश्चय किया। अपने भाषण में उन्होंने अपने हृदय के भाव ज्यों–के–त्यों उस विशाल जनसमूह के सामने रख दिये और उनसे पैरवी की कि वे उस प्रस्ताव को हृदय से स्वीकार कर लें। जवाहरलाल नेहरू का वह भाषण–जो ऐन मौके पर अन्तःस्फूर्ति से दिया गया था और हृदय की गहराई से निकला था, जिसमें न अलंकार था न सुन्दर शब्दावली–शायद उनके उन कई भाषणों से ज्यादा सफल रहा, जिनके लिये पहले से ध्यान देकर तैयारी करने की जरूरत हुई थी।

जवाहरलाल नेहरू और प्रस्तावों पर भी बोले थे। इनमें भगतसिंह, मौलिक अधिकार और आर्थिक नीति के प्रस्ताव उल्लेखनीय हैं। आखिरी प्रस्ताव में उनकी खास दिलचस्पी थी; क्योंकि एक तो उसका विषय ही ऐसा था और दूसरे उसके द्वारा कांग्रेस में एक नये दृष्टिकोण का प्रवेश होता था। अब तक कांग्रेस सिर्फ राष्ट्रीयता की ही दिशा में सोचती थी और आर्थिक प्रश्न से बचती रहती थी। जहां तक ग्रामोद्योग से और आमतौर पर स्वदेशी को बढ़ावा देने से ताल्लुक था, उसको छोड़कर कराचीवाले इस प्रस्ताव के द्वारा मूल उद्योगों और नौकरियों के राष्ट्रीयकरण और ऐसे ही दूसरे उपायों के प्रचार के द्वारा गरीबों का बोझा कम करके अमीरों पर बढ़ाने के लिये एक बहुत छोटा कदम, समाजवाद की दिशा में उठाया गया; लेकिन वह समाजवाद कतई न था। पूंजीवादी राज्य भी उसकी प्रायः हर बात को आसानी से मंजूर कर सकता है। इस बहुत ही नरम और निस्सार प्रस्ताव ने भारत सरकार के बड़े–बड़े लोगों को गहरे विचार में डाल दिया। शायद उन्होंने अपनी हमेशा की अन्दरूनी निगाह से यह खयाल कर लिया कि बोल्शेविकों का रुपया लुक–छिपकर कराची जा पहुंचा है और कांग्रेस के नेताओं को नीति–भ्रष्ट कर रहा है। एक तरह के राजनैतिक अन्तःपुर में रहते–रहते, बाहरी दुनिया से कटे, गोपनीयता के वातावरण से घिरे हुये उनके दिमाग को रहस्य और भेद

की कहानियां और कल्पित कथायें सुनने का बड़ा शौक रहता है, और फिर ये किस्से एक रहस्यपूर्ण ढंग से थोड़ा–थोड़ा करके उनके प्रीति–भाजन पात्रों में दिये जाते हैं और साथ में यह झलकाया जाता है कि यदि परदा खोल दिया जाय तो और भी कई गुल खिल सकते हैं। उनके इस मान्य प्रचलित तरीके से मौलिक अधिकार आदि सम्बन्धी कराची के प्रस्तावों का बार–बार जिक्र किया गया है, और जवाहरलाल नेहरू उनसे यही नतीजा निकाल सके कि वे, इस प्रस्ताव पर सरकारी सम्मति क्या है, यह बतलाते हैं। किस्सा यहां तक कहा जाता है कि एक छिपे व्यक्ति ने, जिसका कम्युनिस्टों से सम्बन्ध है, पूरे प्रस्ताव का या उसके ज्यादातर हिस्से का ढांचा बनाया है और उसने कराची में वह उनके हत्थे मढ़ दिया। उस पर जवाहरलाल नेहरू ने गांधीजी को चुनौती दे दी कि या तो इसे मंजूर कीजिये या दिल्ली–समझौते पर उनके विरोध के लिये तैयार रहिये। गांधीजी ने उनको चुप करने के लिये यह रिश्वत दे दी और आखिरी दिन, जबकि विषय समिति और कांग्रेस थकी हुई थी, उन्होंने इसे उनके सिर पर लाद दिया। उस छिपे हुये व्यक्ति का नाम, जहां तक जवाहरलाल को पता था, यों साफ–साफ लिया नहीं गया है। लेकिन तरह–तरह के इशारों से मालूम हो जाता है कि उनकी मंशा किनसे हैं। जवाहरलाल नेहरू को छिपे तरीकों और घुमाव–फिराव से बात कहने की आदत नहीं थी इसलिये उन्होंने सीधे ही कह दिया कि उनकी मंशा शायद एम.एन. राय से है। शिमला और दिल्ली के ऊंचे आसनवालों के लिये यह जानना दिलचस्प और शिक्षाप्रद होगा कि एम.एन.राय या दूसरे 'कम्युनिस्ट विचारवाले' कराची के उस सीधे–सादे प्रस्ताव के बारे में क्या खयाल करते हैं। उन्हें यह जानकर ताज्जुब होगा कि उस तरह के आदमी तो उस प्रस्ताव को कुछ–कुछ घृणा की दृष्टि से देखते हैं; क्योंकि उनके मतानुसार तो यह मध्यम वर्ग के सुधारवादियों की मनोवृत्ति का एक खासा उदाहरण है।

जहां तक गांधीजी से ताल्लुक है, उनसे जवाहरलाल नेहरू की घनिष्ठता पिछले 17 बरसों से है और जवाहरलाल को उन्हें बहुत नजदीक से जानने का सौभाग्य प्राप्त है। यह खयाल कि जवाहरलाल नेहरू उन्हें चुनौती दें या उनसे सौदा करें उनकी निगाह में भयानक है। हां, वह एक–दूसरे का खूब लिहाज रखते थे और कभी किसी विशेष मसले पर अलग–अलग भी हो सकते थे लेकिन उनके आपस के व्यवहारों में बाजारू तरीकों

से हरगिज काम नहीं लिया गया। कांग्रेस में इस तरह के प्रस्ताव को पास कराने का खयाल पुराना है। कुछ सालों से युक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी इस विषय में हलचल मचा रही थी और कोशिश कर रही थी कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी समाजवादी प्रस्ताव को स्वीकार कर ले। 1929 में उसने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में कुछ हद तक उसके सिद्धान्त को स्वीकार करा लिया था। उसके बाद सत्याग्रह आ गया। दिल्ली में फरवरी 1931 में जबकि जवाहरलाल नेहरू गांधी जी के साथ सुबह घूमने जाया करते थे, उन्होंने इस मामले का जिक्र किया था और उन्होंने आर्थिक विषयों पर एक प्रस्ताव रखने के विचार का स्वागत किया था। उन्होंने जवाहरलाल नेहरू से कहा था कि कराची में इस विषय को उठाना और इस विषय में एक प्रस्ताव बनाकर मुझे दिखाना। कराची में जवाहरलाल नेहरू ने मसविदा बनाया और उन्होंने उसमें बहुतेरे परिवर्तन सुझाये और तजवीजें कीं। वह चाहते थे कि कार्यसमिति में पेश करने के पहले हम दोनों उसकी भाषा पर सहमत हो जायें। जवाहरलाल को कई मसौदे बनाने पड़े और इससे इस मामले में कुछ,दिन की देरी हो गई। आखिर गांधीजी और जवाहरलाल नेहरू दोनों एक मसविदे पर सहमत हो गये और तब वह कार्य समिति में और उसके बाद विषय–समिति में पेश किया गया। यह बिल्कुल सच है कि विषय–समिति के लिये यह एक नया विषय था और कुछ मेम्बरों को उसे देखकर ताज्जुब हुआ था। फिर भी वह कमेटी में और कांग्रेस में आसानी से पास हो गया और बाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को सौंप दिया गया कि वह निर्दिष्ट दिशा में उसको और विशद और व्यापक बनायें।[1]

हां, जब जवाहरलाल नेहरू इस प्रस्ताव का मसविदा तैयार कर रहे थे तब कितने ही लोगों से जो उनके डेरे पर आया करते थे, इसके बारे में जवाहरलाल नेहरू कभी–कभी कुछ सलाह ले लिया करते थे। मगर एम.एन. राय से इसका कोई ताल्लुक नहीं था और जवाहरलाल नेहरू यह अच्छी तरह जानते थे कि वह इसको बिलकुल पसन्द नहीं करेंगे और इसकी खिल्ली तक उड़ायेंगे।

अलबत्ता कराची आने के कुछ दिन पहले इलाहाबाद में एम.

---

1. नेहरू, जवाहरलाल– मेरी कहानी, पृ0सं0 321, 322

एन. राय से जवाहरलाल नेहरू की मुलाकात हुई थी। वह एक रोज शाम को अकस्मात उनके घर चले आये। उनको पता नहीं था कि वह हिन्दुस्तान में हैं। फिर भी जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें फौरन पहचान लिया, क्योंकि उनको जवाहरलाल नेहरू ने 1927 में मास्को में देखा था। कराची में वह जवाहरलाल नेहरू से मिले थे, मगर शायद पांच मिनट से ज्यादा नहीं। पिछले कुछ सालों में राजनैतिक दृष्टि से उनकी निन्दा करते हुये उनके खिलाफ उन्होंने बहुत—कुछ लिखा था। और अक्सर जवाहरलाल नेहरू को चोट पहुंचाने में कामयाब भी हुये थे। क्यों कि उनके और जवाहरलाल नेहरू के बीच बहुत मतभेद हैं, फिर भी जवाहरलाल नेहरू का आकर्षण उनकी ओर हुआ और बाद को जब वह गिरफ्तार हुये और मुसीबत में थे, तब जवाहरलाल नेहरू का जी हुआ कि जो कुछ जवाहरलाल से हो सके (और वह बहुत थोड़ा था) उनकी मदद करें। जवाहरलाल नेहरू उनकी तरफ आकर्षित हुये उनकी विलक्षण बौद्धिक क्षमता को देखकर उनकी तरफ इसलिये भी खिचे कि जवाहरलाल को वह सब तरह अकेले मालूम हुये, जिनको हर आदमी ने छोड़ दिया था। ब्रिटिश सरकार उनके पीछे पड़ी हुई थी ही। हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय दल के लोगों को उनकी ओर दिलचस्पी नहीं थी। और जो लोग हिन्दुस्तान में अपने को कम्युनिस्ट कहते हैं, वे विश्वासघाती समझकर उनकी निन्दा करते थे। जवाहरलाल नेहरू को मालूम हुआ कि सालों तक रूस में रहने और कमिण्टर्न के साथ घनिष्ठ सहयोग करने के बाद वह उनसे जुदा पड़ गये थे, या जुदा कर दिये गये थे। ऐसा क्यों हुआ, इसका उन्हें पता नहीं है और सिवा कुछ आभास के न अब तक यही जानते थे कि उनके मौजूदा विचार क्या हैं और पुराने कम्युनिस्टों से किस बात में उनका मतभेद है। लेकिन उनके जैसे पुरुष को इस तरह प्रायः हरेक के द्वारा अकेला छोडे जाते देखकर उनको पीड़ा हुई और अपनी आदत के खिलाफ वे उनके लिये बनाई गई डिफेंस कमेटी में शामिल हुये। 1931 की गर्मियों से अब से कोई तीन वर्ष पहले से, वह जेल में हैं, बीमार हैं और प्रायः तन्हाई में रह रहे हैं।

कराची में कांग्रेस—अधिवेशन का एक आखिरी काम था कार्य—समिति का चुनाव। यों तो उसका चुनाव अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा होता है, मगर ऐसा रिवाज पड़ गया था कि उस साल का सभापति (गांधीजी और कभी—कभी दूसरे साथियों की सलाह से) नाम पेश करता और वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में मंजूर कर लिये

जाते। लेकिन कराची में हुये कार्य–समिति के चुनाव का बुरा नतीजा निकला, जिसका पहले किसी को खयाल नहीं हुआ था। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कुछ मुसलमान मेम्बरों ने इस चुनाव पर ऐतराज किया था। खास तौर पर एक (मुस्लिम) नाम पर। शायद उन्होंने उसमें अपनी तौहीन समझी थी कि उनके दल का कोई आदमी नहीं था। एक ऐसी अखिल भारतीय कमेटी में, जिसमें केवल पन्द्रह ही मेम्बर हों, यह बिलकुल असम्भव था कि सभी हितों के प्रतिनिधि उसमें रहें। और असली झगड़ा था, जिसके बारे में हमें कुछ भी इल्म नहीं था, बिल्कुल निजी और पंजाब का स्थानीय। लेकिन उसका नतीजा यह हुआ कि जिन लोगों ने विरोध की आवाजें उठाई थीं वे (पंजाब में) कांग्रेस से हट कर मजलिसे–अहरार में शरीक हो गये। कांग्रेस के कुछ बहुत ही मुस्तैद और लोकप्रिय कार्यकर्ता उसमें शामिल हो गये और पंजाब के कितने ही मुसलमानों को उसने अपनी ओर खींच लिया। वह निचले मध्यमवर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व करती थी और मुस्लिम जनता से उसका बहुत सम्पर्क था। इस तरह वह एक जबरदस्त संगठन बन गया। उच्च श्रेणी के मुस्लिम साम्प्रदायिक लोगों के उस लुंज संगठन की बनिस्बत यह कहीं ज्यादा मजबूत था, जो कि हवा में काम करता था या यों कहिये, कि दीवानखाने में या कमेटियों में। अहरार लोग वैसे तो साम्प्रदायिकतावाद की तरफ चले गये, मगर मुस्लिम जनता के साथ उन्होंने अपना सिलसिला बांध रखा था। इसलिये वे एक जिन्दा जमात बने रहे, जिसका एक धुंधला–सा आर्थिक दृष्टिकोंण है। देशी राज्यों के मुसलमान–आन्दोलन में, खासकर कश्मीर में, उन्होंने बड़ा काम किया है, जिनमें कि आर्थिक कष्ट और साम्प्रदायिकता दोनों अजीब तरह से और बदकिस्मती से घुल–मिल गये हैं। कांग्रेस से अहरार पार्टी के कुछ नेताओं का कट जाना पंजाब में कांग्रेस के लिये बहुत ही हानिकारक हुआ। मगर कराची में इसका जवाहरलाल को पता क्या था? बाद में जाकर धीरे–धीरे उनको इसका भान होने लगा। लेकिन यह न समझना चाहिये कि कार्य–समिति के चुनाव के कारण ही वे लोग कांग्रेस से अलग हो गये। वह तो एक तिनका था, जिसने हवा के रुख को बताया। उसके असली कारण तो और ही हैं, और वे गहरे हैं।

जवाहरलाल सहित सब कराची में ही थे कि कानपुर से हिन्दू–मुस्लिम दंगे की खबर उन्हें मिली। इसके बाद ही दूसरा समाचार यह मिला कि

गणेशशंकर विद्यार्थी को कुछ मजहबी दीवाने लोगों ने, जिनकी मदद के लिये वह वहां गये थे, कत्ल कर डाला। वे भयंकर और पाशविक दंगे ही क्या कम बुरे थे? लेकिन गणेश जी की मृत्यु ने उनकी वीभत्सता जिस तरह उनके हृदय पर अंकित कर दी, वैसी और कोई चीज नहीं कर सकती थी। उस कांग्रेस कैम्प में हजारों आदमी उन्हें जानते थे और संयुक्त प्रान्त के इन सब लोगों के वह अत्यन्त प्यारे साथी और दोस्त थे। जवां मर्द और निडर, दूरदर्शी और निहायत अक्लमन्द सलाहकार, कभी हिम्मत न हारने वाले, चुपचाप काम करने वाले, नाम, पद और प्रसिद्धि से दूर भागनेवाले। अपनी जवानी के उत्साह में झूमते हुये वह हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिये, जो उन्हें इतनी प्यारी थी और जिसके लिये उन्होंने जब तक कार्य किया था, अपना सिर हथेली पर लेकर खुशी–खुशी आगे बढ़े कि बेवकूफ हाथों ने उन्हें जमीन पर मार गिराया और कानुपर को और सूबे को एक अत्यन्त उज्जवल रत्न से वंचित कर दिया। जब यह खबर पहुंची तो कराची के यू.पी. कैम्प में शोक की घटा छा गई और ऐसा मालूम हुआ कि उसकी शान चली गई। लेकिन फिर भी उनके दिल में यह अभिमान था कि गणेश जी ने बिना पीछे कदम उठाये मौत का मुकाबला किया और उन्हें ऐसी गौरवपूर्ण मौत नसीब हुई।[1]

---

1. नेहरू, जवाहरलाल– मेरी कहानी, पृ0सं0 323, 324

४. दूसरी गोलमेज़-परिषद् व प्रतिक्रिया - नेहरू के कार्य

एक अंग्रेज पत्रकार ने हाल ही में एक किताब लिखी थी और उसका दावा था कि उसने गांधीजी को हिन्दुस्तान में और लंदन में गोलमेज–परिषद् में बहुत काफी देखा था। अपनी किताब में उसने लिखा था– "मुल्तान नामक जहाज में जो लीडर बैठे थे वे यह जानते थे कि गांधीजी के खिलाफ कार्य–समिति के भीतर एक साजिश की गई थी और वे यह भी जानते थे कि वक्त आते ही कांग्रेस उन्हें निकाल फेंकेगी। लेकिन कांग्रेस गांधीजी को निकालकर गालिबन अपने आधे के करीब मेम्बरों को निकाल देती। इन आधे मेम्बरों को सर तेजबहादुर सप्रू और जयकर साहब लिबरल पार्टी में मिला लेना चाहते थे। वे इस बात को कभी नहीं छिपाते थे। उन्हीं के शब्दों में, गांधीजी का दिमाग साफ नहीं था, लेकिन अगर कोई मट्ठर दिमागवाला नेता अपने साथ दस लाख मट्ठर दिमागवाले अनुयायी आपको दे तो उनको अपनी तरफ करना अच्छा ही था।

जवाहरलाल नेहरू को पता नहीं था कि इस उद्धरण में जो बातें की गई थी वे सर तेजबहादुर सप्रू और जयकर साहब या गोलमेज–कांफ्रेंस के दूसरे मेम्बरों के विचारों को , जो सन् 1931 में लंदन जा रहे थे, कहां तक प्रकट करती थीं। लेकिन जवाहरलाल नेहरू को यह बात जरूर आश्चर्यजनक मालूम होती थी कि हिन्दुस्तान की राजनीति से थोड़ी–सी जानकारी रखनेवाला कोई शख्स, फिर चाहे वह पत्रकार हो या नेता, इस तरह की बात कह सकता था। जवाहरलाल नेहरू तो उसे पढ़कर दंग रह गये, क्योंकि इससे पहले उन्होंने किसी को इशारे में भी इस तरह की बात कहते हुये नहीं सुना। लेकिन इसमें ऐसी कोई बात नहीं थी, जो समझ में न आये,क्योंकि तभी से जवाहरलाल नेहरू जेल में रह रहे थे। तो ये साजिश करने वाले शख्स कौन थे इनका मकसद क्या था? कभी–कभी यह कहा जाता था कि जवाहरलाल नेहरू और कांग्रेस के सभापति सरदार बल्लभभाई पटेल कार्य–समिति के मेम्बरों में सबसे ज्यादा गरम स्वभाव के थे, और इनका खयाल था, इसलिये साजिश के नेताओं में इन लोगों की भी गिनती होगी। लेकिन शायद गांधीजी का बल्लभभाई से ज्यादा सच्चा भक्त

हिन्दुस्तान–भर में दूसरा कोई न था। अपने काम में वह कितने ही कड़े और मजबूत क्यों न हों, लेकिन गांधीजी के आदर्शों, उनकी नीति और उनके व्यक्तित्व के प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी। जवाहरलाल नेहरू जरूर इस बात का दावा नहीं कर सकते कि उन्होंने भी उसी तरह से इन आदर्शों को माना था, लेकिन उन्हें बहुत नजदीक रहकर गांधी जी के साथ काम करने का सौभाग्य मिला था। जवाहरलाल के लिये उनके खिलाफ साजिश करने का खयाल ही कमीना था। सच बात तो यह थी कि कार्य–समिति के सभी मेम्बरों के बारे में यही बात सही थी। वह कमेटी असल में गांधीजी की बनाई हुई थी। अपने कुछ साथियों के सलाह–मशविरे से उन्होंने इस कमेटी को नामजद किया था। उसके चुनाव की तो सिर्फ रस्म पूरी की गई थी। कमेटी के ज्यादातर मेम्बर तो उसके स्तम्भ–रूप थे। ऐसे जो उसमें बरसों से रह रहे थे– करीब–करीब उसके हमेशा मेम्बर खयाल किये जाते थे। उनमें राजनैतिक मतभेद था, लेकिन वह स्वभाव व दृष्टिकोण का मतभेद था, और बरसों तक एक साथ और कंधे से कंधा मिलाकर काम करते–करते तथा एक से खतरों का सामना करते हुये वे एक–दूसरे से हिल–मिल गये थे। उनमें आपस में दोस्ती, भाईचारा और एक–दूसरे के लिये आदर पैदा हो गया था। वे 'संयुक्त–मण्डल' न होकर एक इकाई, एक शरीर थे और उनमें से किसी की बाबत यह सोचा तक नहीं जा सकता था कि वह दूसरों के खिलाफ साजिश करेगा। कमेटी में गांधीजी की चलती थी और सब लोग नेतृत्व के लिये उन्हीं की तरफ देखते थे। कई सालों से यही होता आ रहा था और सन् 1930 और उसके बाद 1931 में हमारी लड़ाई को जो बड़ी कामयाबी मिली थी उसमें तो यह बात और भी ज्यादा बढ़ गई थी। कार्य–समिति के गरम खयाल के मेम्बरों को उन्हें निकालने की कोशिश करने में क्या मकसद हो सकता था? शायद यह सोचा जाता था कि उन्हें जल्दी समझौता करने के लिये राजी हो जाने वाला और इसलिये एक किस्म का बोझ समझा जाता था। लेकिन उनके बिना लड़ाई का क्या होता? असहयोग और सत्याग्रह का क्या होता? वह तो इस जीवित आन्दोलन के अंग थे। बल्कि, सच बात तो यह थी कि वह खुद ही आन्दोलन थे। जहां तक उस लड़ाई से ताल्लुक था, सब कुछ उन्हीं पर निर्भर था।यह ठीक था कि यह राष्ट्रीय लड़ाई उनकी ही पैदा की हुई नहीं थी, न वह किसी एक शख्स पर निर्भर ही थी। उसकी जड़ें इससे ज्यादा गहरी थीं। लेकिन लड़ाई का वह खास पहलू, जिसकी निशानी सविनय

अवज्ञा थी, खासतौर पर गांधीजी पर ही अवलम्बित था। उनके अलग होने के मानी थे इस आन्दोलन को बंद करना और नई नींव पर नये सिरे से इमारत खड़ी करना। यह काम किसी भी वक्त काफी मुश्किल साबित होता, लेकिन 1931 में तो कोई उसका खयाल भी नहीं कर सकता था। यह खयाल बड़ा ही मजेदार था कि कुछ लोगों की राय में जवाहरलाल आदि लोग 1931 में गांधीजी को कांग्रेस से निकालने की कोशिश कर रहे थे। जब कि उनको जरा सा इशारा करने से ही काम चल सकता था, तो फिर इन लोगों को उनके खिलाफ साजिश करने की क्या जरूरत थी? ज्यों ही गांधीजी कभी ऐसी बात कहते कि मैं कांग्रेस से अलग होना चाहता हूं, त्योंही तमाम कार्य–समिति और सारे मुल्क में तहलका मच जाता था। वह इस लड़ाई के एक ऐसे अंग बन गये थे कि जवाहरलाल इस खयाल को भी बरदाश्त नहीं कर सकते थे कि वह उनसे अलग हो जायें। बल्कि ये लोग तो गांधीजी को लंदन भेजने में भी हिचकिचाते थे क्योंकि उनकी गैरहाजिरी में हिन्दुस्तान के काम का तमाम बोझ इन लोगों के ऊपर आकर पड़ता था, और यह बात ऐसी न थी कि जिसको यह पसन्द करते। यह लोग उनके कंधों पर तमाम बोझ डाल देने के आदी हो गये थे। कार्य–समिति के मेम्बरों को ही नहीं, उससे बाहर के बहुत से लोगों को भी जो बंधन गांधीजी से बंधे हुये थे, वे ऐसे थे कि उनसे अलग होकर थोड़े वक्त के लिये कुछ फायदा उठाने के बजाय वे उनके साथ रह कर नाकामयाब होना ज्यादा पसन्द करते थे।

गांधीजी का दिमाग साफ था या नहीं, इसका फैसला तो जवाहरलाल नेहरू अपने लिबरल दोस्तों के लिये ही छोड़ देते थे। हां, यह बात बिल्कुल सच थी कि कभी–कभी उनकी राजनीति बहुत आध्यात्मिक होती थी, जो मुश्किल से समझ में आती थी। लेकिन उन्होंने यह दिखा दिया था कि वह कर्मवीर थे, उनमें आश्चर्यजनक साहस था और वह एक ऐसे शख्स थे, जो अक्सर अपनी जिम्मेदारी को पूरा करके दिखा सकते थे और अगर 'दिमाग के साफ न होने' से इतने व्यावहारिक नतीजे निकलते थे, तो शायद वह उस व्यावहारिक राजनीति के मुकाबले बुरे साबित न होते, जिसकी शुरूआत और जिसका खात्मा स्टडी–रूमों और ऊंचे हलकों में ही हो जाता था। यह सच था कि उनके करोड़ों अनुयायियों का दिमाग साफ नहीं था। वे राजनैतिक और शासन–विधानों की बाबत कुछ नहीं जानते थे।वे तो सिर्फ

अपनी इन्सानी जरूरतों खाना, घर, कपड़ों और जमीन की बातें ही सोच सकते थे।

जवाहरलाल नेहरू को यह बात हमेशा ही अचम्भे की मालूम हुई कि मानव–प्रकृति को देखने की विद्या को भली–भांति सीखे हुये विलायती पत्रकार किस तरह हिन्दुस्तान के मामलों में गलती कर जाते थे। क्या यह उनके बचपन की उस अमिट धारणा की बजह से था कि ''पूर्व तो बिल्कुल दूसरी चीज थी। उसको आप मामूली पैमानों से नहीं नाप सकते? या अंग्रेजों के लिये, यह साम्राज्य का वह पीलिया रोग था, जो उनकी आंखों को खराब कर देता था? कोई चीज कैसी भी अनहोनी क्यों न हो, उस पर वे करीब–करीब फौरन ही इत्मीनान कर लेंगे, बिना किसी तरह का अचम्भा किये, क्योंकि वे समझते थे कि रहस्य भरे पूर्व में हर बात मुमकिन हो सकती थी। कभी–कभी वे ऐसी किताबें छापते थे, जिनमें काफी योग्यतापूर्ण निरीक्षण होता था और तीव्र अवलोकन–शक्ति के नमूने भी, लेकिन बीच–बीच में विलक्षण गलतियां भी होती थीं। जवाहरलाल को याद था कि जब गांधी जी 1931 में यूरोप रवाना हुये, तब उसके बाद फौरन ही, जवाहरलाल नेहरू ने पेरिस के एक प्रसिद्ध संवाददाता का एक लेख पढ़ा था। उन दिनों वह लंदन के एक अखबार का संवाददाता था। उसका वह लेख हिन्दुस्तान के बारे में था। उस लेख में एक ऐसी घटना का जिक्र था, जो उसके कहने के मुताबिक, 1921 में उस वक्त हुई जब असहयोग के दौरान में प्रिंस ऑव वेल्स ने यहां दौरा किया था। उसमें कहा गया था कि किसी जगह (शायद वह दिल्ली थी), महात्मा गांधी एकाएक, जैसे नाटक में होता है, बिना इत्तिला के ही, युवराज के सामने जा पहुंचे और उन्होंने घुटने टेक कर युवराज के पैर पकड़ लिये और ढाड़ मार–मारकर रोते हुये उनसे विनती की कि इस अभागे देश को शांति दीजिये। यह किसी ने, गांधी जी ने भी, यह मजेदार कहानी कभी नहीं सुनी थी। इसलिये जवाहरलाल ने उस पत्रकार को एक खत लिखा। उसने अफसोस जाहिर किया लेकिन साथ में यह भी लिखा कि मैने यह कहानी बड़े विश्वस्त सूत्रों से सुनी थी। जिस बात पर जवाहरलाल को आश्चर्य हुआ वह यह थी कि उसने बिना किसी तरह की जांच की कोशिश किये एक ऐसी कहानी पर इत्मीनान कर लिया, जो जाहिर तौर पर बिल्कुल गैरमुमकिन थी और जिसका कोई भी शख्स, जो गांधीजी, कांग्रेस या हिन्दुस्तान के बारे में कुछ भी जानता था, इत्मीनान कर नहीं सकता था। बदकिस्मती से यह बात सही थी कि हिन्दुस्तान में बहुत से ऐसे

अंग्रेज थे, जो यहां बहुत दिनों तक रहने के बाद भी कांग्रेस या गांधीजी या मुल्क की बाबत कुछ नहीं जानते थे। कहानी कतई इत्मीनान के काबिल नहीं थी। वह बिलकुल बेहूदा थी, उतनी ही बेहूदा जितनी यह कहानी होती कि कण्टरबरी के बड़े पादरी साहब एका एक मुसोलिनी के सामने जा पहुंचे और सिर के बल खड़े होकर, हवा में अपने पैर हिलाकर, उनको सलाम करने लगे। हाल ही में एक अखबार में जो रिपोर्ट छपी थी, उसमें एक दूसरी किस्म की कहानी दी गई थी। उसमें कहा गया था कि गांधीजी के पास अपार दौलत है, जो कई करोड़ होगी। वह उनके दोस्तों के पास छिपी रखी थी। कांग्रेस उस रुपये को हड़पना चाहती थी। कांग्रेस को डर था कि अगर गांधीजी कांग्रेस से अलहदा हो जायेंगे तो वह दौलत उसके हाथ से निकल जायेगी। यह कहानी भी सरासर बेहूदा थी, क्योंकि गांधीजी कभी किसी फण्ड को न अपने पास रखते थे और न छिपाकर रखते थे। जो कुछ रुपया वह इकट्ठा करते थे, उसे सार्वजनिक संस्थाओं को दे देते थे। ठीक ठीक हिसाब रखने के मामले में उनमें बनियों की सी सहजबुद्धि थी, और उन्होंने जितने चंदे किये उनको खुलेआम आडिट कराया था। कांग्रेस ने सन् 1921 में एक करोड़ का जो मशहूर चंदा किया था, यह अफवाह शायद उसी की कहानी पर आधारित थी। यह रकम वैसे तो बहुत बड़ी मालूम होती थी लेकिन अगर हिन्दुस्तान–भर पर फैलाई जाय तो ज्यादा नहीं मालूम होती। इस रकम का इस्तेमाल भी विद्यापीठें और स्कूल कायम करने, घरेलू धंधों को तरक्की देने और खासतौर पर खद्दर की तरक्की के लिये, अछूतपन मिटाने के कार्यों में तथा ऐसे ही दूसरी तरह के रचनात्मक कार्यों में किया गया था। उसमें से काफी तादाद खास–खास स्कीमों के लिये तय कर दी गई थी। फण्ड अब तक मौजूद था और रुपये जिन खास कार्यों के लिये तय किये गये थे उन्हीं में लगाये जा रहे थे। बाकी जो रुपया इकट्ठा हुआ था, वह स्थानीय कमेटियों के पास छोड़ दिया गया था और वह कांग्रेस के संगठन के काम में तथा राजनैतिक कामों में खर्च किया गया था। असहयोग–आन्दोलन का काम इसी फण्ड से चला था और कुछ साल बाद तक कांग्रेस का काम उसी से चला था। गांधीजी ने और मुल्क की गरीबी ने जवाहरलाल को यह सिखा दिया था कि बहुत थोड़े से रुपयों से भी अपना राजनैतिक आन्दोलन कैसे चलाना चाहिये। उन लोगों का ज्यादातर काम तो लोगों ने अपनी खुशी से बिना कुछ लिये ही किया था। और जिस किसी को कुछ देना भी पड़ा था, तो सिर्फ

उतना ही जितना कि पेट भरने को काफी होता हो। हमारे अच्छे से अच्छे ऐसे कार्यकर्ताओं को, जो विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट थे और जिन्हें अपने परिवार का पालन करना पड़ता था, जो तनख्वाहें दी गई वे उस भत्ते से भी कम थीं, जो इंग्लैण्ड में बेकारों को दिया जाता था। पिछले पन्द्रह सालों के दौरान में कांग्रेस का आन्दोलन जितने कम रुपये से चला था, उतने कम रुपये से बड़े पैमाने पर और कोई राजनैतिक या मजदूरों का आन्दोलन, जवाहरलाल को शक था कि, किसी भी मुल्क में, शायद ही चलाया गया हो और कांग्रेस के तमाम फण्ड और उसका तमाम हिसाब खुलेआम हर साल ऑडिट होता रहा था, उसका कोई हिस्सा गुप्त नहीं था। हाँ, उन दिनों की बात बिल्कुल दूसरी थी जब सत्याग्रह की लड़ाई चल रही थी और कांग्रेस गैर—कानूनी जमात थी।

गांधीजी गोलमेज—परिषद् में शामिल होने के लिये कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि की हैसियत से लंदन गये थे। बड़ी लम्बी बहस के बाद जवाहरलाल और उनके साथियों ने यही तय किया था कि किसी दूसरे प्रतिनिधि की जरूरत नहीं। यह बात कुछ हद तक तो इसलिये की गई कि यह लोग यह चाहते थे कि ऐसे नाजुक वक्त में अपने सब अच्छे आदमियों को हिन्दुस्तान में ही रखें। उन दिनों हालात को बहुत होशियारी के साथ सम्हालते रहने की सख्त जरूरत थी। जवाहरलाल और उनके साथी यह महसूस करते थे कि लंदन में गोलमेज—कांफ्रेंस होने के बाबजूद आकर्षण का केन्द्र तो हिन्दुस्तान ही था और हिन्दुस्तान में जो कुछ होगा लंदन में उसकी प्रतिध्वनि जरूर होगी। जवाहरलाल नेहरू चाहते थे कि अगर मुल्क में कोई गड़बड़ हो तो हम उसे देखें और अपने संगठन को ठीक हालत में बनाये रखें। लेकिन सिर्फ एक प्रतिनिधि भेजने का उनका असली कारण यही न था। अगर वे वैसा करना जरूरी और मुनासिब समझते तो जवाहरलाल नेहरू बिलाशक दूसरे को भी भेज सकते थे, लेकिन जवाहरलाल के साथियों ने जान—बूझकर ऐसा नहीं किया।[1]

जवाहरलाल नेहरू और उनके साथी गोलमेज—कांफ्रेंस में इसलिये शामिल नहीं हो रहे थे कि वे विधान सम्बन्धी छोटी—छोटी बातों पर ऐसी बातें और

---

1. नेहरू, जवाहरलाल— मेरी कहानी, पृ0सं0 346, 347

बहस करें, जिनका कभी खात्मा ही न हो। उस अवस्था में जवाहरलाल नेहरू को इन तफसीलों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन पर तो तभी गौर किया जा सकता था जबकि खास–खास बुनियादी मामलों में ब्रिटिश सरकार के साथ कोई समझौता हो जाता। असली सवाल तो यह था कि लोकतंत्री हिन्दुस्तान को कितनी ताकत सौंपी जाती। यह बात तय हो जाने के बाद राजीनामे का मसविदा बनाने और उसकी तफसीलें तय करने का काम तो कोई भी वकील कर सकता था। इन मूल बातों पर कांग्रेस की स्थिति बहुत साफ और सीधी थी और उस पर बहस करने का भी ऐसा ज्यादा मौका न था। जवाहरलाल और उनके साथियों को यह मालूम होता था कि उनके लिये यही गौरवपूर्ण रास्ता था कि उनका सिर्फ एक ही प्रतिनिधि जाय और वह प्रतिनिधि उन लोगों का लीडर हो। वह वहां जाकर सारी स्थिति साफ कर दे। यह बताये कि हमारी स्थिति कितनी युक्तिसंगत है और किस तरह उसको मंजूर किये बिना गति नहीं दी जा सकती थी। अगर हो सके तो ब्रिटिश सरकार को इस बात के लिये राजी कर लें कि वह कांग्रेस की बात मान लें। जवाहरलाल तो जानते थे कि यह बात तो बहुत मुश्किल थी, और उस वक्त जैसी हालत थी उसको देखते हुये तो वह बिलकुल ही सम्भव नहीं था, लेकिन जवाहरलाल के पास भी तो इसके सिवा कोई चारा न था। जवाहरलाल अपनी उस स्थिति को नहीं छोड़ सकते थे। न जवाहरलाल उन उसूलों और आदर्शों को ही छोड़ सकते थे जिनसे वे बंधे हुये थे और जिनमें उन्हें पूर्ण विश्वास था। अगर तकदीर सिकंदर हो और इन बुनियादी बातों में राजीनामे की कोई सूरत निकल आती तो बाकी बातें अपने आप आसानी से तय हो जातीं। बल्कि सच बात तो यह थी कि इन लोगों में आपस में यह तय हो गया था कि अगर किसी तरह से ऐसा राजीनामा हो जाय तो गांधीजी जवाहरलाल और कुछ को या कार्य–समिति के तमाम मेम्बरों को फौरन लंदन बुला लेंगे, जिससे कि वहां जाकर समझौते की तफसील तय करने का काम कर सकें। इन सबको वहां जाने के लिये तैयार रहना था और जरूरत पड़ती तो ये लोग हवाई जहाजों में उड़कर भी जाते। इस तरह बुलाये जाने पर यह सब दस दिन के अन्दर उनके पास पहुंच सकते थे। लेकिन अगर बुनियादी बातों में शुरू में कोई समझौता नहीं होता तो आगे और तफसील में समझौते की बातें करने का सवाल ही नहीं पैदा होता और न कांग्रेस के दूसरे प्रतिनिधियों को गोलमेज–कांफ्रेंस में जाने की कोई जरूरत पड़ती। इसीलिये जवाहरलाल नेहरू

ने सिर्फ गांधीजी को ही वहां भेजना तय किया। कार्य–समिति की एक और सदस्या श्रीमती सरोजिनी नायडू भी गोलमेज–कांफ्रेंस में शामिल हुई, लेकिन वह वहां कांग्रेस की प्रतिनिधि होकर नहीं गई थीं, उनको तो वहां हिन्दुस्तानी स्त्रियों के प्रतिनिधि स्वरूप बुलाया गया था और कार्य–समिति ने उन्हें इजाजत दी थी कि वह इस हैसियत से उस कांफ्रेंस में शामिल हो सकती थीं। लेकिन ब्रिटिश सरकार का इस तरह का कोई इरादा न था कि इस मामले में वह इन लोगों की मर्जी के मुताबिक काम करें। उसकी कार्य–पद्धति तो यह थी कि परिषद् गौण और बेमतलब की छोटी–छोटी बातों पर चर्चा करके थक जाय। तब तक मूल और असली सवालों पर विचार करने का काम टलता रहे। जब कभी बड़े बड़े सवालों पर गौर भी हुआ तब सरकार ने चुप्पी साध ली। उसने हां या ना करने से साफ इन्कार कर दिया और सिर्फ यह वादा किया कि सरकार अपनी राय बाद में अच्छी तरह सोच विचार कर देगी। असल में उसके पास तुरप का पत्ता तो था साम्प्रदायिक सवाल, और उसका उसने पूरा–पूरा इस्तेमाल किया। कान्फ्रेंस में इसी सवाल का बोलबाला था।

कान्फ्रेंस के ज्यादातर हिन्दुस्तानी मेम्बर सरकार की इन चालों के जाल में फंस गये। ज्यादा तो राजी खुशी से और कुछ थोड़े से मजबूरी से। कान्फ्रेंस क्या थी, भानमती का पिटारा था। उसमें शायद ही कोई ऐसा हो, जो अपने अलावा किसी दूसरे का प्रतिनिधि हो। कुछ आदमी काबिल थे और मुल्क में उनकी इज्जत भी थी, लेकिन बाकी बहुत से लोगों की बाबत यह बात भी नहीं कही जा सकती। कुल मिलाकर राजनैतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से वे हिन्दुस्तान में राजनैतिक उन्नति के सबसे ज्यादा विरोधी दलों के प्रतिनिधि थे। ये लोग इतने फिसड्डी और प्रगति विरोधी थे कि हिन्दुस्तान के लिबरल, जो हिन्दुस्तान में बहुत ही माडरेट और फूंक फूंककर कदम रखने वाले माने जाते थे, इस जमात में वही प्रगति के बड़े भारी हामी बनकर चमके। ये लोग हिन्दुस्तान में ऐसे स्थापित स्वार्थ रखने वालों के प्रतिनिधि थे, जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से बंधे हुये थे और तरक्की और रखवाली के लिये उसी का भरोसा रखते थे। सबसे ज्यादा मशहूर प्रतिनिधि तो साम्प्रदायिक झगड़ों के सिलसिले में जो 'छोटी और बड़ी' जातियां थीं उनके थे। ये टोलियां उन उच्च वर्ग वालों की थीं, जो कुछ भी मानने को तैयार न थे और जो आपस में कभी मिल ही नहीं सकते थे। राजनैतिक दृष्टि से वे हर किस्म की प्रगति

के एकदम विरोधी थे और उनकी दिलचस्पी केवल एक बात में थी कि किसी तरह अपने फिरके के लिये कुछ फायदे की बात हासिल कर लें फिर चाहे ऐसा करने में हमें अपनी राजनैतिक प्रगति को भी छोड़ना पड़े। बल्कि सच बात तो यह थी कि उन्होंने खुल्लम खुल्ला यह ऐलान कर दिया था कि जब तक उनकी साम्प्रदायिक मांगें पूरी नहीं की जायेंगी, तब तक वे राजनैतिक आजादी लेने को राजी न होंगे। यह एक असाधारण दृश्य था और उससे उन्हें बड़े दुःख के साथ यह बात साफ–साफ दिखाई देती थी कि एक गुलाम कौम किस हद तक गिर सकती थी और वह साम्राज्यवादियों के खेल में किस तरह शतरंज का मोहरा बन सकती थी। यह सही था। हाईनेसों लार्डों, सरों और दूसरे बड़े–बड़े उपाधिधारी लोगों की उस भीड़ की बाबत यह नहीं कहा जा सकता कि वे हिन्दुस्तान के लोगों के प्रतिनिधि थे। गोलमेज–कांफ्रेंस के मेम्बर ब्रिटिश सरकार के नामजद थे और अपनी दृष्टि से सरकार ने जो चुनाव किया था वह बहुत अच्छा किया था। फिर भी महज यह बात कि ब्रिटिश अधिकारी इन सब लोगों का ऐसा इस्तेमाल कर सकते थे, यह दिखाता था कि इन लोगों में कितनी कमजोरियां थीं और यह लोग कैसी अजीब आसानी के साथ असली बातों से हटाकर एक–दूसरे की कोशिशों को बेकार करने के काम में लगाये जा सकते थे। उच्चवर्ग के लोग अभी तक साम्राज्यवादी शासकों की विचारधारा के असर में थे और वे उन्हीं का खेल खेलते थे। क्या यह इसलिये था कि वे उनकी चालों को समझ नहीं पाते थे? या वे उसके असली मानों को समझते हुये, जानबूझकर उसे इसलिये मंजूर कर लेते थे कि उन्हें हिन्दुस्तान में आजादी और लोकतंत्र कायम होने से डर लगता था?

यह तो ठीक ही था कि साम्राज्यवादी, मांडलिकवादी, महाजन, व्यवसायी, और धार्मिक तथा साम्प्रदायिक लोगों के स्थापित स्वार्थों के इस समाज में ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व हमेशा के मुताबिक सर आगाखां के हाथ में रहे; क्योंकि वह कुछ हद तक इन सब स्वार्थों से स्वयं सम्पन्न थे। कोई एक पुश्त से ज्यादा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से और ब्रिटिश शासक–श्रेणी से उनका बहुत नजदीकी सम्बन्ध रहा था। वह ज्यादातर इंग्लैण्ड में ही रहते थे। इसलिये वह हमारे शासकों के स्वार्थों और उनके दृष्टिकोण को पूरी तरह समझ सकते और उनका प्रतिनिधित्व कर सकते थे। उस गोलमेज–कान्फ्रेंस में साम्राज्यवादी इंग्लैण्ड के वह बहुत योग्य प्रतिनिधि हो सकते थे। लेकिन आश्चर्य तो यह था कि वह हिन्दुस्तान के

प्रतिनिधि समझे जाते थे।

कांफ्रेंस में जवाहरलाल के खिलाफ पलड़ा बुरी तरह से भारी था और यद्यपि जवाहरलाल को उससे कभी कोई उम्मीद न थी, फिर भी उसकी कार्रवाइयों को पढ़–पढ़कर जवाहरलाल को हैरत होती थी और दिन ब दिन उससे जवाहरलाल का जी ऊबता जाता था। जवाहरलाल नेहरू ने देखा कि राष्ट्रीय और आर्थिक समस्याओं की सतह को खरोंचने की कैसी दयनीय और वाहियात ढंग से मामूली कोशिश की जा रही थी। कैसे कैसे पैक्ट और कैसी–कैसी साजिशें हो रही थीं। कैसी कैसी चालें चली जा रही थी। हमारे ही कुछ देश–भाई ब्रिटिश अनुदार दल के सबसे ज्यादा प्रतिगामी लोगों से मिल गये थे। टुच्चे टुच्चे मामलों पर बातें चलती थी और जो खत्म ही नहीं होती थी। जो असली बातें थी, उनको जान बूझकर टाला जा रहा था। ये प्रतिनिधि बड़े बड़े स्थापित स्वार्थों के और खासकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हाथ की कठपुतली बने हुये थे। वे कभी तो आपस में लड़ते झगड़ते थे और कभी एक साथ बैठ कर दावतें खाते तथा एक दूसरे की तारीफ करते थे। शुरू से लेकर अखीर तक सब मामला नौकरियों का था। छोटे ओहदे, बड़े ओहदे, हिंदुओं के लिये कितनी नौकरियां और कुर्सियां तथा सिखों और मुसलमानों के लिये कितनी? और एंग्लो–इंडियनों तथा यूरोपियनों के लिये कितनी? लेकिन ये सब ओहदे ऊंचे दरजे के अमीर लोगों के लिये थे, जन–साधारण के लिये उनमें कुछ न था। अवसरवादिता का दौरा दौरा था और ऐसा मालूम पड़ता था कि नये शासन विधान में टुकड़े रूपी जो शिकार था उसकी फिराक में भिन्न भिन्न गिरोह भूखे भेड़ियों की तरह घात लगाये फिरते थे। उनकी आजादी की कल्पना ने भी तो बड़े पैमाने पर नौकरियां तलाश करने का रूप धारण कर लिया था। इसे ये लोग "भारतीयकरण" के नाम से पुकारते थे। फौज में, मुल्की नौकरियों में और दूसरी जगहों में हिन्दुस्तानियों को ज्यादा नौकरियां मिलें, यही इनकी पुकार थी। कोई यह नहीं सोचता था कि हिन्दुस्तानियों को ज्यादा नौकरियों मिलें, यही इनकी पुकार थी। कोई यह नहीं सोचता था कि हिन्दुस्तान के लिये आजादी की, असली स्वतंत्रता की, भारत को लोकतंत्री सत्ता सौंपे जाने की, हिन्दुस्तान के लोगों के सामने जो भारी और जरूरी आर्थिक समस्यायें मौजूद थीं उनके हल करने की भी कोई जरूरत थी? क्या इसी के लिये हिन्दुस्तान में इतनी मर्दानगी से लड़ाई लड़ी गई थी? क्या हम सुन्दर आदर्शवाद और त्याग की

दुर्लभ मलय समीर को छोड़कर इस गंदी हवा को ग्रहण करेंगे?

उस राजसी महल में और इतनी विभिन्न लोगों की भीड़ में गांधीजी बिल्कुल अकेले मालूम होते थे। उनकी पोशाक से, या उनकी कोई पोशाक ही न होने की वजह से, बाकी सब लोगों में उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता था। लेकिन उनके आस पास अच्छे सजे–धजे लोगों की जो भीड़ बैठी हुई थी उसके विचार और दृष्टिकोण में तथा गांधीजी के विचारों और उनके दृष्टि बिन्दु में और भी ज्यादा फर्क था। उस कांफ्रेंस में उनकी स्थिति बहुत ही मुश्किल थी। इतनी दूर बैठे बैठे जवाहरलाल इस बात पर अचरज कर रहे थे कि वह इसे कैसे बर्दाश्त कर रहे थे? लेकिन आश्चर्यजनक धीरज के साथ वह अपना काम करते रहे थे, और समझौते की कोई न कोई बुनियाद ढूढ़ने के लिये उन्होंने कई कोशिशें कीं। एक विलक्षण बात उन्होंने ऐसी की जिसने फौरन यह दिखला दिया कि किस तरह साम्प्रदायिक भाव ने दरअसल राजनैतिक प्रतिगामिता को अपनी ओट में छिपा रखा था। मुसलमान प्रतिनिधियों की तरफ से कांफ्रेंस में जो सांप्रदायिक मांगें पेश की गई थीं उनको गांधी जी पसंद नहीं करते थे। उनका खयाल था और उनके साथी कुछ राष्ट्रीय विचार के मुसलमानों का भी यही खयाल था, कि इनमें से कुछ मांगें तो आजादी और लोकतंत्र के रास्ते में रोड़ा अटकाने वाली थी। लेकिन फिर भी उन्होंने कहा कि मैं इन सब मांगों को "बिना किसी ऐतराज के मानने को तैयार हूं बशर्ते कि मुसलमान प्रतिनिधि राजनैतिक मांग यानी आजादी के मामले में मेरा तथा कांग्रेस का साथ दें।"

उनका यह प्रस्ताव खुद अपनी तरफ से था; क्योंकि उनकी जैसी हालत थी, उसमें कांग्रेस को वह किसी बात से नहीं बांध सकते थे। लेकिन उन्होंने वादा किया कि मैं कांग्रेस में इस बात के लिये जोर दूंगा कि ये मांगें मान ली जायें और कोई भी शख्स, जो कांग्रेस में उनके असर को जानता था, इस बात में किसी तरह का शक नहीं कर सकता था कि वह कांग्रेस से उन मांगों को मनवाने में कामयाबी हासिल कर सकते थे। लेकिन मुसलमानों ने गांधीजी के इस प्रस्ताव को मंजूर नहीं किया। सचमुच इस बात की कल्पना करना जरा मुश्किल था कि आगाखां साहब हिन्दुस्तान की आजादी के हामी हो जायेंगे। लेकिन इससे इतनी बात साफ–साफ दिखाई दे गई कि असली झगड़ा साम्प्रदायिक नहीं था, यद्यपि कांफ्रेंस

में साम्प्रदायिक प्रश्न की ही धूम थी। असल में तो राजनैतिक प्रतिगामिता ही तरक्की के रास्ते को रोक रही थी और वही साम्प्रदायिक प्रश्न की आड़ में छिपी हुई टट्टी की ओट से शिकार करती थी। कांफ्रेंस के लिये अपने नामजद प्रतिनिधियों का चुनाव बड़ी चालाकी से करके ब्रिटिश सरकार ने इन उन्नति–विरोधी लोगों को वहां जमा किया था और कांफ्रेंस की कार्रवाई की गतिविधि अपने हाथ में रखकर उसने साम्प्रदायिक सवाल को मुख्य और एक ऐसा सवाल बना दिया था, जिस पर आपस में कभी न मिल सकने वाले वहां पर इकट्ठे हुये लोगों में कभी कोई समझौता हो ही नहीं सकता था। इस कोशिश में ब्रिटिश सरकार को कामयाबी मिली और इस कामयाबी से उसने यह साबित कर दिया कि अभी तक उसमें न सिर्फ अपने साम्राज्य को कायम रखने की बाहरी ताकत ही थी, बल्कि कुछ दिनों तक और साम्राज्यवादी परम्परा को चला ले जाने के लिये चालाकी और कूटनीति भी उसके पास थी। हिन्दुस्तान के लोग नाकामयाब रहे, यद्यपि गोलमेज–कांफ्रेंस न तो उनकी प्रतिनिधि ही थी, और न उसकी ताकत से हिन्दुस्तान के लोगों की ताकत का अंदाजा ही लगाया जा सकता था। उनके नाकामयाब होने की खास वजह यह थी कि उनके पास उनके उद्देश्य के पीछे कोई विचारधारा न थी, इसीलिये उन्हें आसानी से अपनी असली जगह से हटाया तथा गुमराह किया जा सकता था। वे इसलिये असफल हुये कि वे अपने में इतनी ताकत नहीं महसूस करते थे कि उन स्थापित स्वार्थ रखने वालों को धता बता दें, जो उनकी तरक्की के लिये भार–स्वरूप बने हुये थे। वे असफल रहे थे, क्योंकि उनमें मजहबीपन की अति थी और उनके सांप्रदायिक भाव आसानी से भड़काये जा सकते थे। थोड़े में, वे इसलिये असफल हुये थे कि अभी तक इतने आगे नहीं बढ़े हुये थे, न इतने मजबूत ही थे, कि कामयाब होते।

असल में इस गोलमेज–कांफ्रेंस में तो सफलता या विफलता का सवाल ही न था। उससे तो कोई उम्मीद ही नहीं की जा सकती थी। फिर भी उसमें पहले से कुछ फर्क था। पहली गोलमेज–कांफ्रेंस थी तो अपने किस्म की सबसे पहली कांफ्रेंस, लेकिन हिन्दुस्तान में बहुत ही कम लोगों का ध्यान उसकी तरफ गया और बाहर भी यही बात रही; क्योंकि उन दिनों सब लोगों का ध्यान सविनय अवज्ञा की लड़ाई की तरफ था। ब्रिटिश सरकार द्वारा जो नामजद उम्मीदवार 1930 में कांफ्रेंस में शामिल होने गये, अक्सर उनके साथ–साथ

काले झण्डे निकाले गये और विरोधी नारे लगाये गये। लेकिन 1931 में सब बातें बदल गई थीं। क्यों ? इसलिये कि गांधीजी कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से, जिसके पीछे करोड़ों लोग चलते थे, उसमें शामिल हुये; इस बात से कांफ्रेंस की शान जम गई और हिन्दुस्तान ने दिलचस्पी के साथ रोज–ब–रोज उसकी कार्रवाइयों पर ध्यान दिया। और वजह जो कुछ भी हो, यह जरूर था कि इस कांफ्रेंस में जितनी असफलता हुई उससे हिन्दुस्तान की बदनामी हुई। अब जवाहरलाल नेहरू की समझ में यह बात साफ साफ आ गई थी कि ब्रिटिश सरकार गांधीजी के उसमें शामिल होने को इतना महत्व क्यों देती थी। वह कांफ्रेंस, जहां साजिशों, मौकापरस्ती और जालसाजियों का बोलबाला था, हिन्दुस्तान की विफलता नहीं कहला सकती। वह तो बनाई ही ऐसी गई थी, जिससे असफल होती। उसकी नाकामयाबी का कसूर हिन्दुस्तान के लोगों के मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता था। लेकिन उसे इस बात में जरूर सफलता मिली थी कि उसने हिन्दुस्तान के असली सवालों से दुनिया का ध्यान हटा दिया और खुद हिन्दुस्तान में उसकी वजह से लोगों की आंखें खुल गईं, उनका उत्साह मर गया तथा उन्होंने उससे अपनी जिल्लत–सी महसूस की। उसने प्रतिगामी लोगों को फिर अपना सिर उठाने का मौका दे दिया था।

हिन्दुस्तान के लोगों के लिये तो सफलता या असफलता खुद हिन्दुस्तान में होने वाली घटनाओं से हो सकती थी। हिन्दुस्तान में जो मजबूत राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था वह लंदन में होने वाली चालबाजियों से ठंडा नहीं पड़ सकता था। राष्ट्रीयता मध्यम वर्ग के लोगों और किसानों की, असली और तात्कालिक जरूरतों को दिखलाती थी। उसी के जरिए वे अपने मसलों को हल करना चाहते थे; इसलिये उस आन्दोलन की दो ही सूरतें हो सकती थीं—एक तो यह कि वह कामयाब होता, अपना काम पूरा करता और किसी ऐसे दूसरे आन्दोलन के लिये जगह खाली कर देता, जो लोगों को प्रगति और आजादी की सड़क पर और भी आगे ले जाता; दूसरी यह कि कुछ वक्त के लिये उसे जबर्दस्ती दबा दिया जाता। असल में कांफ्रेंस के बाद फौरन हिन्दुस्तान में लड़ाई छिड़ने को और कुछ वक्त के लिये बेबसी से खत्म हो जाने को थी। दूसरी गोलमेल–कांफ्रेंस का इस लड़ाई पर कोई ऐसा ज्यादा असर नहीं पड़ सका; पर उसने कुछ हद तक हमारी लड़ाई के खिलाफ वातावरण जरूर बना दिया।[1]

---

1. नेहरू, जवाहरलाल– मेरी कहानी, पृ०सं० 352, 353

५. मेकडानल्ड का साम्प्रदायिक पंचाट की प्रतिक्रिया व नेहरू के कार्य

अगस्त 1932 में ब्रिटिश सरकार ने 'साम्प्रदायिक समझौते' की घोषणा की, क्योंकि विधान सभाओं में सीटों के बंटवारे में किसी प्रकार का मतैक्य नहीं हो सका था। इस समझौते की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि मुसलमान, ईसाई, एंग्लोइण्डियन, अल्पसंख्यकों की ही भांति हिन्दू समाज के दलित वर्ग को भी पृथक चुनाव प्रणाली के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार दिया गया। गांधीजी ने जो इस समय यरवदा–कारागार में थे, और जवाहरलाल नेहरू देहरादून–कारागार में थे, गांधीजी ने इस समझौते का विरोध किया और कारागार में उन्होंने आमरण अनशन प्रारम्भ किया।[1] जब जवाहरलाल नेहरू को इस निर्णय की सूचना मिली तो वे बहुत बेचैन हो उठे। इससे जवाहरलाल का स्थिर मन उद्विग्न हो उठा। काफी दिनों से जवाहरलाल ने गांधीजी को देखा नहीं था। इस पीड़ा का कारण जवाहरलाल नेहरू का गांधीजी के प्रति व्यक्तिगत प्रेम था। वे यह सोचकर सिहर उठते थे कि गांधीजी की मृत्यु हो गई तो देश की क्या दशा होगी? राजनैतिक प्रगति का क्या होगा? यह सोच सोच कर उन्हें भविष्य अंधकारमय दिखने लगा। जेल की बन्द कोठरी में जवाहरलाल स्वयं को असहाय महसूस कर रहे थे। जवाहरलाल नेहरू सोच नहीं पा रहे थे कि इस स्थिति में उन्हें क्या करना चाहिये? इससे जवाहरलाल अधिक चिड़चिड़े और बद–मिजाज हो गये थे। तभी जवाहरलाल को गांधीजी का तार द्वारा संदेश मिला–

"इन वेदना के दिनों में मुझे हमेशा तुम्हारा ध्यान रहा है। तुम्हारी राय जानने को मैं बहुत उत्सुक हूँ। तुम्हें मालूम है, मैं तुम्हारी राय की कितनी कदर करता हूँ। इन्दु और स्वरूप के बच्चे मिले। इन्दु खुश और कुछ तगड़ी दीखती थी। मेरी तबियत बहुत ठीक है। तार से जबाव दो।[2]

स्नेह!"

---

1. सिंह, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद – भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, पृ0सं0 93, 94
2. श्री शरण, – "महामानव नेहरू", पृष्ठ सं0 121.

"गांधीजी की जीवन रक्षा के लिये हिन्दू समाज के उच्च जातियों और दलित–वर्ग के प्रतिनिधियों के बीच एक समझौता हुआ जिसे 'पूना समझौता' कहते हैं। इस समझौते के अन्तर्गत विभिन्न विधान परिषदों में मिश्रित चुनाव मण्डल के ही अन्तर्गत, ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त 71 सीटों की तुलना में दलित वर्ग के प्रतिनिधियों की संख्या 147 कर दी गई।[1]

"जब जवाहरलाल नेहरू को खबर मिली कि चुनाव के मामले पर 'पूना समझौता' हो गया है। इस समाचार से जवाहरलाल नेहरू को राहत मिली और जेल अधिकारी की कृपा से जवाहरलाल को गांधीजी को तार देने की आज्ञा भी मिल गई। जवाहरलाल ने तार भेजा–

"आपके तार और यह संक्षिप्त समाचार मिलने से कि 'पूना समझौता' हो गया है, जवाहरलाल को बड़ी राहत और खुशी हुई। पहले तो आपके अनशन के निश्चिय से मानसिक क्लेश और बड़ी दुविधा पैदा हुई, पर आखिर ये आशावाद की विजय हुई और जवाहरलाल को मानसिक शांति मिली। दलित–वर्गो के लिये बड़े–से–बड़े बलिदान भी कम ही हैं। स्वतन्त्रता की कसौटी सब से छोटे की स्वतंत्रता से होनी चाहिये, लेकिन भय है कि कहीं हमारे एकमात्र लक्ष्य को दूसरी समस्यायें न ढक लें। मैं धार्मिक दृष्टिकोण से निर्णय करने में असमर्थ हूँ। यह भी भय है कि दूसरे लोग आपके तरीकों का दुरूपयोग करेंगे लेकिन एक जादूगर को मैं कैसे सलाह दे सकता हूँ ? सप्रेम"[2]

तभी पूना में एकत्रित भिन्न–भिन्न लोगों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये और ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने उसे तत्काल स्वीकार कर लिया तथा उसके अनुसार अपना पिछला निर्णय बदल डाला। गांधीजी ने अपना अनशन तोड़ दिया। जवाहरलाल नेहरू ऐसे समझौतों और इकरारनामों को बहुत नापसन्द करते थे, किन्तु पूना के समझौते में क्या–क्या निश्चय किया गया था, इसका विचार न करते हुये, जवाहरलाल ने पूना समझौते का स्वागत

---

1. सिंह, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद – भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, पृ0सं0 94

2. नेहरू, जवाहरलाल– मेरी कहानी, पृ0सं0 226

ही किया। उन दिनों सविनय अवज्ञा आन्दोलन की गति मद्धम पड़ गई थी; पर उसे स्थगित करने का वह उपयुक्त अवसर न था। इसके कुछ मास बाद मई में गांधीजी ने अपने इक्कीस दिन के उपवास रखने का निश्चय कर लिया। इसका कारण था, उन्हें जेल में हरिजन कार्य करने के लिये सुविधाओं का न मिलना। इसके कुछ दिन पूर्व ही उन्होंने नेहरू जी को एक विशेष ढंग का पत्र भेजा, जिसको पढ़कर उनका दिल हिल उठा। उन्होंने उसके प्रत्युत्तर में यह तार भेजा, आपका पत्र मिला। जिन मामलों को मैं नहीं समझता, उनके बारे में मैं क्या कह सकता हूँ? मैं तो एक विचित्र देश में अपने को खोया हुआ सा अनुभव करता हूँ, जहाँ आप ही एकमात्र दीप स्तम्भ हैं, अंधेरे में अपना रास्ता टटोलता हूँ, लेकिन ठोकर खाकर गिर जाता हूँ। नतीजा जो कुछ हो, मेरा स्नेह और मेरे विचार हमेशा आपके साथ रहेंगे।[1]

हांलाकि जवाहरलाल नेहरू गांधीजी के कार्यों को बिल्कुल नापसन्द करते थे, पर उन्हें किसी तरह का भी कष्ट पहुंचाना नहीं चाहते थे। इसलिये वे प्रयास करते थे कि वे जितना भी बन सके, उन्हें प्रसन्न रखें। उनका मनोबल बनाये रखने के लिये उन्होंने दूसरा तार भेजा,......अब जब आपने अपना महान तप शुरू कर ही दिया है, मैं फिर अपना स्नेह और अभिनन्दन आपको भेजता हूँ, और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अब मुझे यह ज्यादा स्पष्ट दिखाई देता है कि जो कुछ होता है, अच्छा ही होता है और परिणाम कुछ भी हो, आपकी विजय ही है।[2]

इस उपवास के एक सप्ताह बाद गांधी जी की दशा तेजी से बिगड़ने लगी। सरकार घबड़ा गई। उसने गांधीजी को अस्पताल भेज दिया, वहाँ भी वे बन्दी की हैसियत से रहे, क्योंकि सरकार हरिजन कार्य के लिये सुविधायें देने के मामले में झुकी नहीं थी। इस बीच गांधीजी ने अपने जीवन की आशा छोड़ दी और अपने स्वास्थ्य को गिरने दिया। उनका अंत समीप दिखाई देने लग गया। उन्होंने आसपास के लोगों से विदाई ले ली और अपने पास पड़ी हुई, अपनी थोड़ी सी चीजों को बांट देने का प्रबन्ध कर लिया; जिनमें से कुछ नर्सों को भी

---

1. श्री शरण, – ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 122
2. Ibid, P-122, 123

दे दीं, किन्तु सरकार उनकी मृत्यु की जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेना चाहती थी। अतः उसी संध्या को वे रिहा कर दिये गये। इससे गांधीजी मरते—मरते बच गये थे। एक दिन और बीत जाता तो फिर उनका जीवन बचाना कठिन हो जाता। इसका श्रेय कुछ हद तक श्री एस0एफ0 एण्ड्रयूज को जाता है जो गांधीजी के मना करने पर भी जल्दी से भारत आ गये थे। गांधीजी के अनुरोध पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन छह सप्ताह के लिये स्थगित कर दिया गया। उधर अण्डमान द्वीप में अधिकारियों के बुरे व्यवहार के कारण राजनैतिक बन्दियों ने अनशन कर रखा था। इसमें एक—दो परलोक भी सिधार गये थे। तब गांधीजी ने पूना में दो—तीन सौ कांग्रेसियों को बुलाकर अनौपचारिक सम्मेलन किया तथा उनके परामर्श पर आन्दोलन के स्थगन की अवधि छह सप्ताह के लिये और बढ़ा दी गई। किन्तु व्यक्तिगत रूप से सविनय अवज्ञा आन्दोलन करने की अनुमति प्रदान कर दी गई और आन्दोलन के समस्त गुप्त तरीके प्रतिबंधित कर दिये गये। देहरादून बंदीगृह में बैठे जवाहरलाल नेहरू को यह निर्णय प्रेरणादायक प्रतीत नहीं हुये; पर नेहरू जी ने गाँधीजी का विरोध नहीं किया, क्योंकि उनकी दृष्टि में सविनय अवज्ञा आन्दोलन दम तोड़ चुका था। उधर संवैधानिक सुधारों पर ब्रिटेन का श्वेत पत्र प्रकाशित हुआ था और उसके फलस्वरूप संयुक्त प्रवर समिति के सामने भारतीय राजनीतिज्ञ नाटकीय कलाबाजियाँ तथा कोरे दिखावे की तालें ठोकने लग गये थे। इस बीच 23 अगस्त, सन् 1933 को जवाहरलाल नेहरू देहरादून जेल में डेढ़ वर्ष बिताने के बाद नैनी जेल भेज दिये गये थे। वहां उन्हें आशा थी कि शीघ्र ही बंदीगृह से मुक्ति मिल जायेगी क्योंकि नेकचलनी के कारण सामान्य छूटें मिली थीं। तभी श्रीमती स्वरूप रानी असाध्य रोग से पीड़ित हो गईं और जवाहरलाल नेहरू को निश्चित समय से पहले ही 30 अगस्त को जेल से मुक्ति मिल गई।[1]

---

1. श्री शरण, — ''महामानव नेहरू'', पृष्ठ सं0 123

६. कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन और नेहरू

यह अधिवेशन जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 12 से 14 अप्रैल तक सन् 1936 में लखनऊ में आयोजित हुआ। सन् 1934 से 1938 तक सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित रहा। '35—36' तक आतंकवादियों का प्रभाव कम होता गया। सत्याग्रह कार्यक्रम स्थगित होने से श्रमजीवियों, किसानों और नवयुवकों में आक्रोश ओर उद्विग्नता बनी रही। कौंसिलों के कार्यक्रम से जनता को सन्तोष नहीं था। महात्मा गांधी कांग्रेस से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर चुके थे। इससे पूर्व एक अध्यादेश जारी कर कम्युनिस्टों तथा ट्रेड यूनियन नेताओं को बिना मुकदमा चलाये गिरफ्तार किया जा सकता था। कम्युनिस्ट पार्टी तथा एक दर्जन से ज्यादा ट्रेड यूनियनों को गैरकानूनी घोषित कर उनके अस्तित्व को नकार दिया था। लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस मिलकर एक हो गये थे। कांग्रेस सन् 1934 से संघर्षों तथा सरकार की दमनकारी नीति से अप्रभावित हुये अपनी स्थिति को बरकरार बनाये रखने के लिये जी तोड़ प्रयास कर रही थी। कांग्रेस के सदस्यों की संख्या घटकर 4,57,000 रह गई थी। लखनऊ अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू को यह स्वीकार करना पड़ा कि "हम मोटे तौर पर जनता के साथ अपना सम्पर्क खो चुके हैं।" नेहरू समाजवादी देशों का दौरा करके लौटै थे। उनके दिलोदिमाग पर समाजवादी लक्ष्यों का जुनून सवार था। उन्होंने सम्राज्यवादी ताकतों से निपटने के लिये यह आवश्यक समझा कि मजदूरों व किसानों को प्रतिनिधित्व में हिस्सा बंटाने के लिये प्रयत्न किये जायें। उन्होंने जी तोड़ यह प्रयास किया कि मजदूरों तथा किसानों के संगठन को सामूहिक तौर पर कांग्रेस से सम्बद्ध कर दिया जाये, परन्तु वह इस प्रस्ताव को पारित नहीं करा सके। अब तक कांग्रेस का ध्यान चरखे और जीवन—स्तर सुधारने पर था, परन्तु अब किसानों की वास्तविक मांगों को लेकर ठोस कार्यक्रम लागू करने की दिशा में प्रयत्न शुरू किये जाने लगे।[1]

यहां से कांग्रेस के इतिहास को नया मोड़ मिला और नवीन

---

1. भटनागर, राजेन्द्र मोहन— भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पृ0 सं0 230, 231

जागृति पैदा हुई। कार्यक्रम में भी तेजी आई और जो निराशा जनता व कांग्रेसियों पर छाने लगी थी, वह भी हटने लगी। कांग्रेस में भी अब कई विचारधारायें जड़ पकड़ चुकी थीं। नेहरू का झुकाव समाजवाद की ओर था। नेहरूजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस बात को स्पष्ट करते हुये कहा था कि समाजवाद मेरे लिये न केवल आर्थिक सिद्धान्त है, जिसे मैं पसन्द करता हूं बल्कि एक महत्वपूर्ण मत है, जिसे मैं अपने दिलोदिमाग से मानता हूं। मैं भारतीय स्वतन्त्रता के लिये इस कारण काम करता हूं कि मेरा मन राष्ट्रवादी विदेशी दासता को सहन नहीं कर सकता है। मैं इसके लिये और अधिक काम इसलिये करता हूं कि मैं इसे सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के लिये अनिवार्य कदम मानता हूं। उन्होंने बराबर इस बात पर जोर दिया कि वह अपने विचारों को थोप कर भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम को कमजोर नहीं करना चाहते हैं।[1]

जवाहरलाल नेहरू का यह दृढ़ निश्चय था कि भारत की समस्याओं का समाधान समाजवाद के जरिये ही हो सकेगा। समाजवाद से वह वैज्ञानिक—आर्थिक क्रान्ति को अभिव्यक्त करते हुये कह रहे थे कि "समाजवाद न केवल आर्थिक सिद्धान्त है, बल्कि इससे बढ़कर जीवन का एक दर्शन है और उस रूप में मैं भी उसकी तरफ आकृष्ट हूं।"

जयप्रकाश नारायण का भी सारा जोर समाजवाद पर था। यद्यपि जयप्रकाश और नेहरू में अनेक मुद्दों पर मतभेद था और यही बात गांधी, जयप्रकाश और नेहरू पर भी लागू होती थी तथापि जवाहरलाल अनेक अर्थों में जयप्रकाश के सन्निकट थे। रात्रि के सात बजे जवाहरलाल ने अपना ढाई घण्टे का अध्यक्षीय भाषण शुरू किया था। उन्होंने अपना यह भाषण हिन्दुस्तानी में दिया था। अनेक भाषण के ध्यातव्य बिन्दु अधोलिखित थे—[2]

1. सोवियत रूस के कारण आज विश्व का भविष्य आशाजनक है। नई सभ्यता तभी फैलेगी जब समाजवादी विचारधारा जीने का विश्वास बनेगी और पूंजीवादी युद्ध—संरचना का अन्त होगा।
2. नवयुवक, किसान और मजदूर को उन्होंने विशेष महत्व दिया।

---

1. भटनागर, राजेन्द्र मोहन— भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पृ0 सं0 231
2. Ibid, P-232

3. कांग्रेस में समाजवादी गुट को महत्व मिला– अगले अधिवेशन में कांग्रेस के एक तिहाई सदस्य समाजवादी विचारधारा के हो चुके थे। इस अधिवेशन में कतिपय नवीन योजनायें प्रस्तुत की गईं जो निम्नलिखित हैं–

(1) कांग्रेस पार्लियामेण्टरी बोर्ड की स्थापना– यह बोर्ड धारा सभाओं के संचालन में मदद करेगा और चुनाव घोषणापत्र तैयार करेगा।

(2) कार्य समिति देश के कृषकों की स्थिति सुधारने के लिये कार्य करेगी। यह इस अधिवेशन की एक सशक्त उपलब्धि मानी जा सकती थी कि इस अधिवेशन में एक नवीन जागृति की लहर पैदा हुई थी, जिसने पुनः भारतीयों में जोश व उत्साह पैदा कर दिया था। फिर भी, कांग्रेस की सक्रियता में कमी स्पष्ट दृग्गोचर हो रही थी। उसमें वह सक्रियता नहीं आ पाई थी, जिसकी उस वक्त जरूरत थी।

७. १९३७ में निर्वाचन व नेहरू के कार्य

कांग्रेस का बावनवां अधिवेशन पुनः जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 27 व 28 दिसम्बर को सन् 1936 में महाराष्ट्र के फैजपुर गांव में सम्पन्न हुआ। गांव में कांग्रेस के अधिवेशन हुआ करें, यह गांधीजी की इच्छा थी। अगस्त 1936 में जारी किये चुनाव घोषणा पत्र का अनुमोदन इस अधिवेशन में किया गया। कांग्रेस ने चुनाव मैदान में उतरने का पहले ही फैसला कर लिया था। नेहरू जी ने बारह से अठारह घण्टे तक चुनाव अभियान का दौरा किया था। उन्होंने मुस्लिम लीग और उदारवादी दल के खिलाफ धुआंधार प्रचार किया था।[1] इस संदर्भ में कांग्रेस का चुनाव लड़ने का दृष्टिकोण द्रष्टव्य है। उसमें कहा गया कि "देश की जनता की घोषित आकांक्षा के विरुद्ध भारत पर थोपे गये संविधान और 1935 के भारत रक्षा शासन अधिनियम को यह अधिवेशन एक बार फिर पूरी तरह अस्वीकार करने की घोषणा करता है। अधिवेशन की यह धारणा है कि इस संविधान के साथ किसी भी तरह का सहयोग भारत के स्वतंत्रता–संग्राम के साथ विश्वासघात होगा, ब्रिटिश साम्राज्य की पकड़ को मजबूत बनाना होगा तथा साम्राज्यवादी प्रभुत्व के जुये तले बेहद गरीबी की चक्की में पहले से ही पिस रही जनता का शोषण और अधिक बढ़ाना होगा। इसलिये अधिवेशन एकबार फिर अपने इस संकल्प को दोहराता है कि कांग्रेस न तो इस संविधान के सामने आत्मसमर्पण करेगी और न इसके साथ सहयोग करेगी बल्कि वह विधानमण्डल के बाहर और भीतर हर जगह इसके खिलाफ संघर्ष करेगी ताकि इसका अंत कर सके। कांग्रेस किसी विदेशी शक्ति या सत्ता द्वारा भारत के राजनीतिक और आर्थिक ढांचे को संचालित करने की बात को कभी मान्यता नहीं देती है और न देगी, इस तरह के हर प्रयास का भारतीय जनता के संगठित और दृढ़ प्रतिज्ञ विरोध द्वारा मुकाबला किया जायेगा। भारतीय जनता केवल उस सांवैधानिक ढांचे को अपनी मंजूरी देगी जिसका समर्थन स्वयं उसने किया हो और जो एक राष्ट्र के रूप में भारत की आजादी पर आधारित हो तथा जो उनकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुसार विकास का उन्हें पूर्ण

---

1. भटनागर, राजेन्द्र मोहन– भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पृ0 सं0 232

अवसर दें।" उसकी यह चेष्टा थी कि सरकार जनता के प्रभावकारी नियन्त्रण में रहे। बालिग मताधिकार के द्वारा ऐसे राज्य की स्थापना सम्भव है। कांग्रेस इस दिशा में देश में काम कर रही है और जनता को संगठित कर रही है। विधान मण्डल में कांग्रेस के प्रतिनिधि इस बात का पूरा–पूरा ध्यान रखेंगे। इस अधिवेशन में यह फैसला स्थगित रखा गया कि विधानमण्डल के निर्वाचित सदस्य कोई पद स्वीकार करें या अस्वीकार करें।

कांग्रेस के चुनाव घोषणा पत्र में पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता और संविधान सभा के महत्व को स्वीकार कर लिया गया। इसमें नागरिक स्वातंत्रता और समान अधिकारों की व्यवस्था भी की गई थी। इसके अन्तर्गत सामाजिक तथा आर्थिक ठोस कार्यक्रमों की घोषणा की गई थी। इसके कतिपय महत्वपूर्ण बिन्दु अधोलिखित हैं[1]–

(1) कांग्रेस ने यह जानते हुये कि विधानमंडलों से न तो आजादी मिल सकेगी और न बेरोजगार व गरीबी की समस्या का निदान हो सकेगा परन्तु इससे कांग्रेस शासन की बागडोर अपने हाथों में होने के कारण से लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हो सकेगी।

(2) कांग्रेस ने कराची अधिवेशन की घोषणाओं को पुनः दोहराया अर्थात्

(अ) मौलिक अधिकारों से संबद्ध प्रस्ताव में परिभाषित किया, आम लक्ष्य को वह आज भी ज्यों–का–त्यों स्वीकारती है।

(ब) कांग्रेस जमीन की काश्त, मालगुजारी और लगान प्रणाली में सुधार की आवश्यकता को स्वीकारती है।

(स) किसानों द्वारा भुगतान की जाने वाली लगान और मालगुजारी की राशि में पर्याप्त कमी करने के पक्ष में हैं।

(द) किसानों पर जबर्दस्त कर्ज है अतः ऐसा प्रयास होना चाहिये जिससे ऋण स्थगन की घोषणा की जाये। राज्य द्वारा छोटी जोत वालों, खेतिहर

---

1. भटनागर, राजेन्द्र मोहन– भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पृ0 सं0 233, 234

काश्तकारों और छोटे व्यापारियों को कम ब्याज पर ऋण देने की व्यवस्था की जाये।

(3) मजदूरों का जीवन–स्तर उठाने का प्रयत्न किया जाये। उनके काम के घंटे और श्रम की स्थितियां अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों के अनुसार तय की जायें।

(4) मजदूर अपने हितों के लिये यूनियन बना सकें व हड़ताल कर सकें।

(5) खादी व ग्रामोद्योग को संवर्द्धित करने का कार्यक्रम कांग्रेस की मुख्य योजना है।

(6) कांग्रेस छुआछूत मिटाने तथा हरिजनों और पिछड़ी जाति का सामाजिक तथा आर्थिक विकास करने की पक्षधर है।

(7) लिंग के आधार पर किसी को अयोग्य नहीं ठहराया जा सकेगा।

(8) कांग्रेस महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार देने की पक्षधर है। इसका फल यह हुआ कि कांग्रेस को अभूतपूर्व सफलता मिली, जिसकी सरकार को कतई उम्मीद नहीं थी। कांग्रेस को बम्बई, बिहार (ऊपरी सदन में भी) संयुक्त प्रांत, उड़ीसा और मध्य प्रांत में पूर्ण बहुमत मिला और बंगाल तथा असम में यह सबसे बड़ी पार्टी सिद्ध हुई। मुस्लिम लीग को इसमें सफलता नहीं मिल सकी। कांग्रेस की स्थिति पंजाब व सिंध में अच्छी नहीं रही। जस्टिस पार्टी जिसे सरकार की अनुकंपा प्राप्त थी और जो मद्रास में अपनी धाक जमाये थी, बुरी तरह पिट गई।

'लंदन टाइम्स' को अपनी इस धारणा को बदलना पड़ा कि कांग्रेस साधारण अल्पमत का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी है। इससे उसे कांग्रेस का व्यापक प्रभाव स्वीकारना पड़ा। 17 व 18 मार्च, 1937 को यह निर्णय दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में लिया गया कि कांग्रेस सशर्त मंत्रिमण्डल बना सकेगी। शर्त यह थी कि गवर्नर विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं करेंगे। पहले तो सरकार ने कांग्रेस की इस शर्त को स्वीकार नहीं किया। परन्तु जब 11 में से छह प्रान्तों में मंत्रिमंडल का गठन नहीं हो सका तब लार्ड

1937 के प्रान्तीय चुनाव परिणाम: एक दृष्टि

क्रम सं०	प्रांत	कुल सीटें	सबके लिये सामान्य सीटें	कांग्रेस	मुस्लिम लीग	मुस्लिम सीटें निर्दलीय	अन्य	प्रतिशत जो कांग्रेस को मिला	28 लाख व्यक्तियों या 55% मतदान किया जिसमें कांग्रेस का प्रतिशत रहा।
1.	मद्रास	215	116	159	11	—	45	74.5	65
2.	बम्बई	175	99	88	20	10	57	49	56
3.	बंगाल	250	48	50	40	43	117[2]	22	25
4.	संयुक्तप्रांत	228	120	134	27	30	37[3]	59	65
5.	पंजाब	175	34	18	1	—	156[4]	10.5	13
6.	बिहार	152	71	98	—	15	39	65	75
7.	मध्यप्रांत	112	64	71	—	14	27	62.5	61
8.	असम	108	40	35	9	14	50	31	—
9.	सरहदीप्रांत	50	9	19	—	2	29	38	—
10.	उड़ीसा	60	38	36	—	—	24	60	—
11.	सिंध	60	18	7	—	—	53	11.5	12
कुल योग		1585	637	715	108	128	634	—	—

लिनलिथगो ने कांग्रेस से बातचीत की और आश्वासन दिया कि गवर्नर बहुत कम मामलों में विशेषाधिकार का प्रयोग कर सकते हैं और वे जब ऐसा करें तो कांग्रेस को यह अधिकार है कि वह जनता को स्पष्ट कर दे कि यह कार्य उसने नहीं किया।

फलतः 17 जुलाई को कांग्रेस महासमिति ने मंत्रिमंडल बनाने का आदेश इस शर्त पर दे दिया कि कांग्रेस का कोई पदाधिकारी 500 रुपये माह से अधिक वेतन नहीं लेगा। कराची प्रस्ताव के अनुसार यह व्यवस्था की गई थी। मंत्री सामान्य जीवन व्यतीत करेंगे। कांग्रेस अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू ने अप्रैल माह के दिल्ली में आयोजित किये गये सम्मेलन में सभी उपस्थित निर्वाचित सदस्यों को अधोलिखित प्रतिज्ञा दिलवाई[1]–

> मैं, जो कि अखिल भारतीय सम्मेलन का सदस्य हूं, इस बात
> की शपथ लेता हूं कि मैं हिन्दुस्तान की सेवा करूंगा।
> धारा सभा के बाहर और भीतर हिन्दुस्तान की आजादी के
> लिये काम करूंगा और हिन्दुस्तान की जनता की गरीबी और
> उसके शोषण को समाप्त करने के लिये यत्न करूंगा।
> मैं इस बात की शपथ लेता हूं कि मैं कांग्रेस के आदर्श
> और उद्‌देश्य प्राप्त करने के लिये कांग्रेस के अनुशासन में
> काम करूंगा, ताकि भारत स्वतंत्रत हो, और करोड़ों
> निवासी जिस बोझ के नीचे पिस रहे हैं,
> उससे छुटकारा पा सकें।

इस प्रकार कांग्रेस ने सरकार में प्रवेश किया और चाहा कि वह अपने दिये गये वचनों व आदर्शों के अनुसार कार्य करके जनता को कुछ दिखा सके। हालांकि यह बात वह भली प्रकार जानती थी कि वहइन परिस्थितियों में कुछ नहीं कर पाएगी। फिर भी, वह कोशिश करेगी कि कुछ कर सके। कांग्रेस ने मंत्रिमंडल बनाकर अपना काम शुरू कर दिया। अब कांग्रेस पर दोहरा भार आ पड़ा था। एक ओर तो वह जनता का नेतृत्व भार संभाले हुये थी

---

1. भटनागर, राजेन्द्र मोहन– भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पृ0 सं0 236

और दूसरी ओर वह सरकार में सम्मिलित हो चुकी थी। एक ओर कांग्रेस देश को पूर्ण स्वतंत्रता कराने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करने जा रही थी और दूसरी ओर उस पर शासन का भार आ पड़ा था। इस प्रकार उस पर दोहरा भार व दायित्व आ पड़ा था। इस सबकी समीक्षा आगे की जायेगी कि कांग्रेस ने अपने तीन वर्षीय शासन में अपनी भूमिका कैसी निभायी। उसने वेतन को 500 रुपये ही लिया।

संयुक्त प्रान्त के मंत्रिमंडल ने सबसे पहला काम तो यह किया कि अपने चुनाव घोषणा–पत्र के अनुसार सभी राजनीतिक कैदियों को छोड़ दिया। इसके अन्तर्गत काकोरी कैदियों को भी बारह वर्ष बाद छोड़ दिया गया। यद्यपि अभी तक सभी कैदी छोड़े नहीं जा सके थे, क्योंकि सरकार बराबर अड़ंगे अड़ा रही थी। सरकार हिंसात्मक कार्यों में भाग लेने वाले कैदियों को छोड़ने के लिये तत्पर नहीं हो सकी।[1]

---

1. भटनागर, राजेन्द्र मोहन– भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पृ० सं० 236

८. १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध- कांग्रेस मंत्रिमंडलों का त्यागपत्र व नेहरू

यूरोप पर युद्ध के बादल 1939 के आरम्भ से ही मण्डरा रहे थे और यह स्पष्ट था कि युद्ध कभी भी आरम्भ हो सकता था। कांग्रेस ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया था कि वह संसार के किसी भी भाग में साम्राज्यवाद का समर्थन नहीं करेगी। उसने फासिज्म, नाजीवाद, सैनिकवाद तथा साम्राज्यवाद के विरोध में अपने विचार उच्च स्वर से घोषित कर दिये थे। उसने यह भी कह दिया था कि भारत किसी भी युद्ध में भारतीय जनता की अथवा उनके प्रतिनिधियों की अनुमति के बिना सम्मिलित नहीं होगा तथा न ही वह यह चाहेगा कि उनकी अनुमति के बिना भारतीय सेना भारत से बाहर भेजी जाय।[1]

द्वितीय विश्वयुद्ध 1 सितम्बर,1939 को जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण करने के साथ आरम्भ हो गया। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस ने, जिन्होंने पोलैण्ड की स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति दी हुई थी, उसी दिन जर्मनी को 48 घण्टे का नोटिस दिया कि वह सेनायें लौटा ले वरना वे जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देंगे। अतएव 3 सितम्बर को इंग्लैण्ड तथा उसके समस्त प्रदेशों ने जिनमें भारत भी था, जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।[2]

गांधीजी तथा जवाहरलाल नेहरू ने अपने भावुक तथा काल्पनिक आदर्शवाद से प्रेरित होकर अलग–अलग वक्तव्य जारी किये जिसके अर्थ ये लगाये गये जैसे कि वे बिना शर्त अंग्रेजों के युद्ध–प्रयत्नों का समर्थन करते हों। गांधीजी 6 सितम्बर को वाइसराय से मिले और उन्होंने समाचार पत्रों को एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने कहा कि यद्यपि स्वतन्त्रता के विषय पर भारत तथा इंग्लैण्ड के दृष्टिकोण में बहुत मतभेद हैं फिर भी भारत इंग्लैण्ड के साथ इस विपत्ति में सहयोग करेगा। नेहरू ने भी इसी प्रकार का एक वक्तव्य दिया जिसमें कहा गया था कि भारत को इंग्लैण्ड की कठिनाइयों से लाभ नहीं उठाना चाहिये। भारत

---

1. ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ0सं0 99
2. Ibid, P-99

में भी साधारणतया यह विश्वास था कि अंग्रेज किसी स्वतंत्रता तथा प्रजातन्त्र के समर्थक नहीं हैं और यह युद्ध तो केवल दो साम्राज्यों के बीच ही था। कांग्रेस कार्यकारिणी की वर्धा में 8 सितम्बर से 15 सितम्बर तक एक बैठक हुई जिसके अन्त में एक वक्तव्य में यह कहा गया, "भारत की ओर से युद्ध तथा शान्ति के प्रश्न का निर्णय भारतीय लोग ही करेंगे.....यह समिति अपने आप को किसी ऐसे युद्ध से सम्बन्धित नहीं कर सकती अथवा उसमें सहयोग नहीं दे सकती जो साम्राज्यवादी नीतियों पर आधारित हो तथा जिसका उद्देश्य भारत तथा अन्य स्थानों में साम्राज्यवाद को दृढ़ करना हो।......समिति ने मांग की कि अंग्रेजी सरकार यह घोषणा करे कि युद्ध के उद्देश्य प्रजातन्त्र तथा साम्राज्यवाद के विषय में क्या है तथा ये भारत पर किस प्रकार लागू किये जायेंगे और हाल ही में उनका भारत पर क्या प्रभाव होगा। क्या इनमें साम्राज्यवाद को समाप्त करना सम्मिलित है और क्या वे भारत को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में मानने को तैयार है ?[1]

द्वितीय विश्वयुद्ध वास्तव में दो विरोधी साम्राज्यवादों के बीच युद्ध था.......यह तो सरासर मूर्खता तथा असम्भव था कि हम उसी साम्राज्यवाद की रक्षा के हेतु लड़ें जिसका हम इतने दिनों से विरोध करते आ रहे थे।[2]

—जवाहरलाल नेहरू

परन्तु अक्टूबर 1939 में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने भारत को द्वितीय विश्वयुद्ध में बिना उसकी सहमति के घसीट लिये जाने अथवा विवशतापूर्वक उसे युद्ध में सम्मिलित होने के लिये बाध्य किये जाने पर त्याग–पत्र दे दिये। मंत्रिमण्डलों को यह भी शिकायत थी कि अंग्रेजों ने अपने युद्ध के उद्देश्य स्पष्ट नहीं किये और न ही यह कहा है कि भारत को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मान्यता कब मिलेगी। कांग्रेस के मंत्रिमण्डलों के त्याग–पत्र देने पर, बम्बई, मद्रास, संयुक्तप्रान्त, बिहार तथा मध्यप्रान्त के प्रशासन 1935 के अधिनियम की धारा 93 के अन्तर्गत गवर्नरों ने अपने हाथ में ले लिये। उन्होंने अपने प्रान्तों के वरिष्ठ राजकीय

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ०सं० 100
2. Ibid, P-281

सेवकों में से दो अथवा तीन को अपना परामर्शदाता (Advisers) नियुक्त कर दिया।[1]

कांग्रेस मंत्रिमण्डल और नेहरू के विचार[2]

जवाहरलाल नेहरू राजनीतिक परिवर्तनों की दृष्टि से यह प्रस्तावित संविधान (1935 का भारत सरकार अधिनियम) जिसमें एक अप्राकृतिक संघ है, एक असंगति है; परन्तु सामाजिक तथा आर्थिक रूप से इससे भी अधिक बुरा है।.... बाह्य रूप से बहुत सा उत्तरदायित्व हस्तांतरित कर दिया गया (परन्तु वह केवल 'निरापद' वर्ग को) परन्तु कुछ लाभदायक कार्य करने के लिये न तो शक्ति है और न ही साधन। अंग्रेज के पास शक्ति है और उत्तरदायित्व कोई नहीं.....गति को जंजीरों तथा बेड़ियों से बांध दिया गया है और एक सिटकिनी और अर्गल लगा द्वार हमारे सन्मुख है। हमें एक ऐसी मोटर मिली है जिसमें सर्वत्र ब्रेक ही ब्रेक हैं परन्तु इन्जन कोई नहीं।

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल—भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ०सं० 92
2. Ibid, P-98

९. १९४०-४१ का व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन व नेहरू एक सत्याग्रही के रूप में।

कांग्रेस ने अपने रामगढ़ अधिवेशन में स्वतंत्रता की और संविधान बनाने के लिये एक संविधान सभा के निर्माण की मांग दोहरायी। इसी बीच जर्मनी की लगातार विजयों से यूरोप में ब्रिटेन और उसके मित्रों की स्थिति शोचनीय हो रही थी। इसलिये कांग्रेस ने अपने रुख में थोड़ी नरमी दिखाई और जुलाई 1940 ई0 में सरकार से सहयोग का प्रस्ताव दुहराया। सरकार ने इसका उत्तर 8 अगस्त 1940 ई0 के प्रस्ताव से दिया। इसमें गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के विस्तार की बात कही गयी थी और ब्रिटिश प्रांतों और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की एक युद्ध सलाहकार समिति बनाने को कहा गया था। गांधीजी को स्पष्ट लगा कि इन बातों में ईमानदारी नहीं है।[1]

कांग्रेस की सहयोगपूर्ण नीति के बावजूद भी जब ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की स्वतंत्रता की मांग का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया तो कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में सीमित रूप से सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का निश्चय किया।

15 अगस्त 1940 को अपने बम्बई अधिवेशन में कांग्रेस ने निश्चय किया कि यह आन्दोलन व्यक्तिगत सत्याग्रह होगा। कुछ चुने हुये व्यक्तियों को ही आन्दोलन करने की अनुमति थी क्योंकि गांधी इसे पूर्ण रूप से अहिंसात्मक आन्दोलन बनाना चाहते थे।

विनोवा भावे पहले सत्याग्रही थे और जवाहरलाल नेहरू दूसरे। सत्याग्रहियों की मांग यह थी कि द्वितीय विश्वयुद्ध में भारत के हिस्सा लेने के खिलाफ प्रचार करने के लिये अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिये। इस आन्दोलन का औचित्य अहिंसक प्रतिरोध के द्वारा युद्ध मात्र का विरोध करना था। सत्याग्रही सार्वजनिक रूप से घोषणा

---

1. सिंह, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, पृ0सं0 104, 105

करते थे कि पैसा या आदमियों से ब्रिटिश सरकार के युद्ध काम में मदद करना गलत है।

सत्याग्रही जब मंच पर आते तो लोग उन्हें इस तरह घेर लेते कि उनकी गिरफ्तारी होने तक युद्ध विरोधी भाषण हो चुका होता। जिन सत्याग्रहियों को गिरफ्तार नहीं किया जाता वे गांवों की ओर चल देते और अपना संदेश फैलाते हुये दिल्ली की ओर बढ़ने की कोशिश करते इससे इसका नाम दिल्ली चलो आन्दोलन पड़ गया।

गांधीजी इस आन्दोलन के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहते थे कि भारतीयों को वस्तुतः युद्ध में कोई दिलचस्पी नहीं है। सरकार ने एक–एक कर सत्याग्रहियों को गिरफ्तार करना प्रारम्भ कर दिया। सर्वप्रथम विनोवा भावे को गिरफ्तार किया गया तत्पश्चात जवाहरलाल नेहरू को 31 अक्टूबर 1940 को इसके बाद सरदार पटेल, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को, अबुल कलाम आजाद को।

जवाहरलाल नेहरू को गोरखपुर जेल में रखा गया और वहीं पर एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने उनके मुकदमे की जांच की। इस बार अदालत के सामने जवाहरलाल जी ने जो बयान दिया, वह बड़ा ही ओजस्वी और महत्वपूर्ण था। अदालत को संबोधित करके उन्होंने कहाः[1]

> "श्रीमन्! मैं आपके सामने एक व्यक्ति के रूप में पेश किया गया हूँ, जिसने राज्य के खिलाफ जुर्म किया है। जिस सरकार के खिलाफ मैने जुर्म किया है, आप उसके प्रतीक है। किन्तु मैं भी केवल व्यक्ति नहीं हूँ, व्यक्ति से कुछ बड़ी चीज हूँ। मैं आज के युग का प्रतीक हूँ, भारत की राष्ट्रीयता का प्रतीक हूँ, मैं उस देश का प्रतीक हूँ जो गुलामी की जंजीर तोड़कर ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होना चाहता है। आप इस मुगालते में न रहें कि आप मेरा मुकदमा देख रहे

---

1. दिनकर, रामधारी सिंह– लोकदेव नेहरू, पृ0 सं0 91

हैं या मुझे सजा देने जा रहे हैं। आप मुकदमा भारत के करोड़ों निवासियों का देख रहे हैं और सजा भी आप उन्हें ही देंगे। मेरा खयाल है, यह जिम्मेवारी किसी अहंकारी साम्राज्य के लिये भी भारी पड़ेगी।''

मजिस्ट्रेट ने जवाहरलाल नेहरू को चार साल कैद की सजा दी।

जब पर्ल बन्दरगाह पर जापान ने अख्तियार कर लिया, अंग्रेजों के कान खड़े हो गये। इस घटना का अर्थ यह था कि अमेरिका और जापान युद्ध में प्रवेश कर रहे हैं। इसलिये दिसम्बर 1941 में जवाहरलाल नेहरू रिहा कर दिये गये।''

चौथा अध्याय

1. विश्व युद्ध की गम्भीर परिस्थिति– कांग्रेस की प्रतिक्रिया व नेहरू के कार्य
2. 1942 में स्टैफोर्ड क्रिप्स का आयोग– समझौते की वार्ता व नेहरू का योगदान
3. 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन– परिस्थिति व आन्दोलन की योजना और नेहरू
4. अगस्त 1942– कार्य समिति के सदस्यों के साथ गिरफ्तारी तथा जेल में नेहरू

9. विश्व युद्ध की गम्भीर परिस्थिति-कांग्रेस की प्रतिक्रिया व नेहरू के कार्य

"द्वितीय विश्व युद्ध ने राष्ट्रीय भावनाओं की उपलब्धि के लिये नवीन आशायें उत्पन्न कर दी थी। परन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि मित्र शक्तियां केवल अपने साम्राज्यों तथा पूर्व स्थिति के पुनः ऐसे युद्ध न हों। विन्स्टन चर्चिल तथा उसके सहयोगी, इंग्लैण्ड की केवल पुरानी सामाजिक व्यवस्था तथा साम्राज्य को बनाये रखना चाहते थे। जैसा नेहरू जी ने कहा था, पश्चिमी लोकतंत्र का फासिज्म तथा नाजिज्म के साथ कुछ विशेष प्रकार का सैद्धान्तिक गठबन्धन सा था जिसमें वे केवल उनकी कुछ निन्दनीय तथा नीच अभिव्यक्तियों को स्वीकार नहीं करते थे। हिटलर ने भी अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति शुभकामना व्यक्ति की थी और उसके दीर्घकाल तक बने रहने की इच्छा प्रकट की थी। भारतीय जनता को अंग्रेजी साम्राज्य फासिस्ट राज्य से अधिक अच्छा प्रतीत नहीं होता था।"[1]

"जापानी सेना ने अमरीकी, अंग्रेजी, चीनी तथा डच सेनाओं को अति तीव्र गति से, जो लगभग हिटलर की जर्मन सेना जैसी ही तीव्र गति से आगे बढ़ रही थी बहुत क्षति पहुंचाई। 15 फरवरी को सिंगापुर, 7 मार्च को रंगून, पर जापानी कब्जा हो गया। युद्ध अब भारत के दरबाजे पर था। गांधीजी और जवाहरलाल नेहरू बहुत सक्रिय हो गये। 12 मार्च को अण्डमान द्वीप उनके हाथों में चले गये। कुछ बम त्रिंकोमाली, काकिनाडा तथा विशाखापत्तनम पर गिराये गये। कलकत्ता को भी छोड़ देने की योजना बनाई गई। कलकत्ता से त्रिकोमाली तक के पूर्वी तट पर आतंक छा गया। फिर भी भारत सरकार, ग्राम तथा नगर स्तर पर रक्षा दल गठन करने को उद्यत नहीं थी। जब कुछ नागरिकों ने स्वयं सेवी दलों का गठन किया तो उन्हें बन्द कर दिया गया। सरकार अपनी रक्षा योजनायें तो बना रही थी परन्तु जनता के विश्वास उसकी सहमति तथा समर्थन के बिना। क्या भारतीय लोग इस समस्त विपत्ति को हाथ पर हाथ रखकर बैठे देखते रहे? भारतीय राष्ट्र पूर्ण रूप से हतोत्साह हो चुका था।"

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ०सं० 289

"भारत की सीमाओं की रक्षा करने तथा मित्र राष्ट्रों की सहायता करने की आतुरता में कांग्रेस कार्यसमिति ने गांधीजी और नेहरू की आपत्तियों को दरकिनार करते हुये एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें कहा गया था कि यदि ब्रिटेन युद्ध के बाद पूर्ण स्वाधीनता तथा तत्काल ठोस रूप में सत्ता देने के लिये राजी हो जाये तो हम भारत और मित्र राष्ट्रों की रक्षा में पूरा–पूरा सहयोग करेंगे।"[1] यही वह समय था जब गांधीजी ने कांग्रेस कार्यसमिति में कहा था कि–[2]

> "लोग कहते हैं कि मेरे और जवाहरलाल के बीच तनाव आ गया है और हम लोग एक–दूसरे से दूर जा पड़े हैं। हम लोगों को एक–दूसरे से दूर करने के लिये मतभेद काफी नहीं है। जब से हम सहकर्मी हुये, मतभेद तभी से रहे हैं और तब भी जो बात मैं वर्षों से कहता आया हूं उसे आज फिर दुहराना चाहता हूं कि मेरे उत्तराधिकारी राजा जी नहीं होंगे, उत्तराधिकारी जवाहरलाल होगा। जवाहर लाल कहता है कि मेरी भाषा उसकी समझ में नहीं आती है, न मैं उसकी भाषा समझता हूं। मगर भाषा न मालूम हो, तब भी दो दिल मिलते ही हैं और मैं जानता हूं कि मेरे मरने के बाद जवाहरलाल मेरी भाषा में बात करेगा।"

---

1. चन्द्र, विपिन – भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृ0सं0 364
2. दिनकर, रामधारी सिंह– लोकदेव नेहरू, पृ0 सं0 94

२. १९४२ में स्टैफोर्ड क्रिप्स का आयोग- समझौते की वार्ता व नेहरू का योगदान

मार्च 1942 को ब्रिटिश प्रधान मन्त्री चर्चिल (Churchill) ने हाऊस ऑफ कॉमन्स में एक घोषणा की, "युद्ध मन्त्रिमण्डल (War Cabinet) ने एक मत होकर भारत के विषय में कुछ निर्णय किये हैं और यह कि हाऊस ऑफ कॉमन्स के नेता सर स्टैफोर्ड क्रिप्स (Sir Stafford Cripps) जितनी जल्दी सम्भव हो सकेगा भारत जायेंगे और स्वयं निजी विचार विमर्श से अपने आप को सन्तुष्ट कर इस निर्णय से लोगों को अवगत करायेंगे तथा यह निर्णय एक न्यायपूर्ण तथा अन्तिम निर्णय होगा और अपना अभीष्ट मन्तव्य प्राप्त कर लेगा।" सर स्टैफोर्ड को भी यह आदेश था कि "वह न केवल बहुसंख्यक हिन्दुओं से ही आवश्यक सहमति प्राप्त कर लें अपितु सब से अधिक संख्यक, अल्पसंख्यक मुसलमानों से भी जो कई क्षेत्रों में बहुत महत्वपूर्ण हैं, सहमति प्राप्त करें।" भारत पहुंचने के तुरन्त पीछे सर स्टैफोर्ड क्रिप्स ने प्रस्तावित मसविदा वाइसराय की कार्यकारी परिषद् के सामने रखा (23.03.1942) और फिर दो दिन पीछे भारतीय नेताओं के सामने। 29 मार्च को यह प्रस्तावित मसविदा (Draft Resolution) एक पत्रकार सम्मेलन में जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। इसके उपरान्त लगभग 15 दिन तक बातचीत चलती रही परन्तु असफल रही। महात्मा गांधी ने इसे "उत्तरतिथीय चैक" (Post-dated Cheque) की संज्ञा दी और एक अन्य व्यक्ति ने उसमें जोड़ दिया "एक टूटते हुये बैंक पर।"[1]

अंग्रेजी सरकार का प्रस्तावित मसविदा इस प्रकार था—

1. युद्ध समाप्त होते ही एक ऐसी प्रक्रिया जिसका ब्योरा आगे दिया जायेगा, आरम्भ की जायेगी जिससे भारतीयों के एक निर्वाचित निकाय को भारत का संविधान बनाने का कार्य सौंप दिया जायेगा।
2. इस संविधान सभा में भारतीय रियासतों को भी सम्मिलित करने का प्रबन्ध किया जायेगा।
3. इस निर्मित संविधान को अंग्रेज सरकार निम्नलिखित शर्तों पर स्वीकार कर लेगी—

   (अ) अंग्रेजी प्रान्तों में जो इस संविधान को स्वीकार न करना चाहें उन्हें यह अधिकार

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल—भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, पृ०सं० 103

होगा कि वे अपनी पुरानी स्थिति में बने रहें और पुनः जब चाहें इस संविधान में सम्मिलित हो सकें। सम्मिलित न होने वाले प्रान्तों को भी अंग्रेज सरकार यह अधिकार देगी कि यदि वे चाहें तो एक नया संविधान बना लें और इन संगठनों को भी वही पद उसी प्रक्रिया से प्राप्त होगा जो शेष भारतीय संघ को प्राप्त होगा।

(ब) जिस सन्धि के द्वारा अंग्रेज सरकार भारतीयों को आवश्यक शक्ति का हस्तांतरण करेगी उसमें जातीय तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का प्रावधान होगा; परन्तु भारतीय संघ के अंग्रेजी राष्ट्र मण्डल के सदस्यों से भावी सम्बंधों पर कोई किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं होगा।

(स) कोई अन्य भारतीय रियासत इस नये संविधान को अपनाये अथवा न अपनाये, परन्तु यह आवश्यक होगा कि इस नई परिस्थिति में इनसे सन्धि सम्बन्धों को आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा सकेगा।

4. संविधान निर्माण करने वाली सभा का चुनाव प्रान्तीय विधान सभाओं के निम्न सदन द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व (proportional representation) प्रणाली के अनुसार किया जायेगा।

5. जब तक यह नया संविधान नहीं बनेगा, ब्रिटिश सरकार भारत की सुरक्षा के लिये उत्तरदायी होगी, परन्तु वह प्रमुख भारतीय जनता के नेताओं का तुरन्त तथा प्रभावशाली ढंग से अपने देश, राष्ट्रमण्डल तथा संयुक्त राष्ट्र के कार्य में योगदान चाहती है। इस प्रकार वे उस कार्य को जो भावी भारतीय स्वतंत्रता के लिये अत्यन्त आवश्यक है, निभाने तथा पूर्ण करने में, सक्रिय रूप से निर्माणकारी सहायता कर सकेंगे।

इस प्रस्तावित घोषणा के मुख्य अंग थेः—

(अ) औपनिवेशिक स्वशासन तथा स्वतंत्रता का अधिकार,

(ब) देश के विभाजन की संभावना,

(स) शक्ति हस्तांतरित होते समय अल्पसंख्यकों की रक्षा के सम्बन्ध में सन्धि करना,

(द) जब तक नया संविधान न बने तब तक गवर्नर—जनरल की तत्कालीन स्थिति बनी रहेगी और अंग्रेज ही भारत की रक्षा के लिये उत्तरदायी होंगे अर्थात् तत्कालीन

परिस्थिति में कोई भी परिवर्तन सम्भावित नहीं था। इस पर जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "समकालीन सरकार का ढांचा उसी प्रकार रहेगा तथा वाइसराय की निरंकुशता बनी रहेगी। केवल हम में कुछ लोग वर्दी पहन कर उसके सेवक तथा कैन्टीनों की देखभाल करना आरम्भ कर देंगे।"

इस घोषणा में अगस्त प्रस्ताव से निश्चय ही कुछ अधिक अधिकार देने की बात कही गई थी अर्थात् इसमें ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से अलग होने की बात कही गई थी, संविधान बनाना मुख्यतः नहीं अपितु पूर्णतः भारतीयों का कार्य होगा, तथा संविधान सभा का उल्लेख था। इसी प्रकार अन्तरिम समय के लिये भारतीयों को राष्ट्रमण्डल तथा संयुक्त राष्ट्र के कार्य में सहायता देने को कहा गया था। परन्तु यह घोषणा भी आलोचना से नहीं बच सकी। प्रत्येक दल ने भिन्न–भिन्न कारणों से इसे अपर्याप्त माना। कांग्रेस को इसके अन्तरिम प्रबन्ध से असन्तोष था। उसे इसके रक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं थे। इसी प्रकार कांग्रेस को इस बात का भी औपचारिक आश्वासन नहीं मिला कि इस बीच गवर्नर–जनरल मन्त्रियों के कहने पर तथा संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करेगा। मुख्य प्रश्न जिस पर यह बातचीत टूट गई, वह थी वाइसराय का निषेधाधिकार। लम्बी अवधि के प्रस्तावों के विषय में कांग्रेस इस बात पर भी असन्तुष्ट थी कि कुछ प्रान्तों को अलग होने की अनुमति थी जिससे भारत की एकता पर कुठाराघात होता था। यही मत हिन्दू महासभा का भी था (जो साम्प्रदायिक मत प्रणाली को गर्ह्य मानती थी)। सर तेजबहादुर सप्रू तथा एम0आर0 जयकर जैसे उदारवादियों ने इसकी इन शब्दों में निन्दा की "एक से अधिक संघ बनाना यद्यपि आत्म–निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार ही है, परन्तु देश के स्थायी हित, एकता तथा सुरक्षा के विरुद्ध होगा।" सिक्ख भी इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे क्योंकि इसमें प्रान्तों के अलग होने की बात कही गई थी और उन्होंने यह घोषणा की कि वे इसका डटकर विरोध करेंगे क्योंकि इस में पंजाब की भारत से अलग होने की सम्भावना है। इसी प्रकार 'पिछड़ी हुई जातियां' भी अपने लिये संरक्षणों के न मिलने से अप्रसन्न थीं।[1]

मुस्लिम लीग एक संघ बनाये जाने, संविधान सभा की रचना

---

1. ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ0सं0 104

तथा एक प्रान्त के पृथक होने के लिये उसकी इच्छा जानने की विधि इत्यादि से अप्रसन्न थी। संक्षेप में उन्होंने इस योजना को इसलिये अस्वीकार कर दिया क्योंकि इसमें स्पष्ट शब्दों में पाकिस्तान की मांग स्वीकार नहीं की गई थी और 'मुसलमानों को' आत्म–निर्णय का अधिकार स्पष्ट रूप से नहीं दिया गया था।

राजनीतिक दलों की आलोचना के अतिरिक्त भी निश्चय ही इस प्रस्तावित योजना में त्रुटियां थीं। अगस्त 1940 के प्रस्ताव का दोहराना तथा यह कहना कि ये प्रस्ताव 1940 के प्रस्तावों का अतिक्रमण नहीं करते अपितु केवल उन्हें अधिक स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हैं, एक ऐसी बात थी जिसने लोगों में यह सन्देह उत्पन्न कर दिया कि सम्भवतः अंग्रेज वास्तविक मात्रा में सत्ता हस्तांतरण करना नहीं चाहते।

इसके अतिरिक्त संघ को छोड़ने की प्रान्तों की इच्छा को निर्धारित करने की प्रक्रिया भी सुनिश्चित नहीं की गई थी। क्रिप्स के अनुसार प्रान्त को यह निर्णय विधान सभा में लेना होगा, जहां 'प्रान्त के भारत संघ में सम्मिलित होने' के प्रस्ताव पर मत विभाजन होगा और यदि बहुमत 60% से कम हो, तो अल्पमत वालों को अधिकार होगा कि वे वयस्क पुरुष जनसंख्या के मताधिकार पर एक जनमत संग्रह करवा सकें, जहां साधारण बहुसंख्या से निर्णय किया जायेगा। इस योजना के अनुसार पंजाब तथा बंगाल में हिन्दुओं की परिस्थिति बहुत डांवांडोल हो जाती थी जहां उनके भारत संघ में रहने की सम्भावना समाप्त हो जाती थी।

इसके अतिरिक्त अंग्रेजों के भारतीयों के हाथों में शक्ति का हस्तांतरण करते समय 'सन्धि' किस से होगी और उस सन्धि को कौन कार्यान्वित करायेगा अथवा उसकी व्याख्या कौन करेगा ? यह भी स्पष्ट नहीं था।[1]

यह समस्त योजना, जिसमें क्रिप्स का नाम जुड़ गया है, केवल एक घूस मात्र सी लगती थी न कि भारतीय समस्या का हल निकालने का सच्चा प्रयत्न। इसका उद्देश्य भारतीय नेताओं का युद्ध में सक्रिय सहयोग लेना मात्र ही था। जैसा कि

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ०सं० 105

प्रोफेसर हेरल्ड जे0 लास्की ने कहा था, "इस समस्त प्रक्रिया में केवल एक ही अच्छी बात थी, वह थी सर स्टैफोर्ड क्रिप्स का स्वयं भारत जाना जिसके लिये श्री एटली को श्रेय मिलना चाहिये परन्तु इस शिष्ट मण्डल को आने में बहुत देर हो गई और ऐसा लगता था कि यह जापान के विरुद्ध एक विरोधी चाल थी न कि भारतीय दावे की स्वीकृति... इसको सम्पन्न करने में अत्यधिक शीघ्रता बरती गई और इसमें कुछ–कुछ वह अंग्रेजी आदत सी थी जिसे श्री किंग्जले मार्टिन ने अत्यन्त सारगर्भित शब्दों में यों वर्णित किया है; यह वह कला है जिसके अनुसार हम उन लोगों को जिनके साथ हमने घोर अन्याय किया क्षमा कर देते हैं। मनोवैज्ञानिक रूप में भी यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत जायें और मनोभाव यह हों कि स्वीकार कर लो अथवा छोड़ दो और फिर लौट कर यह करना कि यह प्रस्ताव समाप्त हो गया है ठीक नहीं था। इससे यह लगता था कि हमारा उद्देश्य भारत को स्वतंत्रता देना नहीं है अपितु अपने मित्रों में एक प्रकार का प्रचार करना ही था जो कि प्रायः अमरीकी–फिलिपीन्स सम्बन्धों की तुलना आंग्ल–भारत सम्बन्धों से किया करते हैं।[1]

प्रायः क्रिप्स शिष्ट मण्डल के प्रस्तावों को पूर्णतया असफल समझा जाता है परन्तु युद्ध के जीतने पर वही टूटते हुये बैंक पर "उत्तरतिथीय चैक" की हुंडी सकारित हो गई।[2]

---

1. ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ0सं0 105
2. Ibid, P- 105

३. १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन- परिस्थिति व आन्दोलन की योजना और नेहरू

हमें स्वतन्त्रता चाहिये, यहां और अभी— जवाहरलाल नेहरू

भारत छोड़ो आन्दोलन की उत्पत्ति इस तथ्य में देखी जा सकती है कि मित्र शक्तियों ने विश्वयुद्ध को, लोकतन्त्र तथा तानाशाही के बीच युद्ध की संज्ञा दी, जिससे जनता की आशायें बढ़ी थीं, परन्तु उसके साथ चर्चिल के इस कथन से कि एटलांटिक प्रपत्र (Atlantic Charter) भारत पर लागू नहीं होगा, बहुत निराशा हुई। अक्टूबर 1939 में कांग्रेसी सरकारों ने 7 प्रान्तों में अपने त्याग—पत्र दे दिये, क्योंकि उनकी इच्छा के विरुद्ध देश को युद्ध में झोंक दिया गया था। केवल सिन्ध, पंजाब और बंगाल में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल कार्य कर रहे थे। गांधीजी ने इसके उपरान्त व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसका कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। इसके उपरान्त अगस्त 1940 का प्रस्ताव तथा क्रिप्स शिष्टमण्डल की असफलता से भी जवाहरलाल नेहरू और गांधीजी को यह विश्वास हो गया कि अंग्रेजी सरकार खुले विद्रोह के अतिरिक्त किसी भाषा को नहीं समझेगी। दूसरी ओर जापान युद्ध में सम्मिलित हो चुका था और भारत की ओर बढ़ता आ रहा था। अतएव 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के अतिरिक्त सम्भवतः कोई अन्य विकल्प नहीं था। परन्तु सितम्बर 1939 तथा अगस्त 1942 के बीच की घटनाओं को भी हमें ध्यान में रखना होगा।

1. **उत्तरदायी सरकार के बिना लोकप्रिय युद्ध प्रयत्न सम्भव नहीं—**[1]

जब द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तो साधारण भावना यह थी कि यह युद्ध ब्रिटेन का है हमारा नहीं। परन्तु फिर भी गांधीजी तथा जवाहरलाल नेहरू जैसे आदर्शवादी लोगों ने ये वक्तव्य दिये कि यद्यपि भारत की स्वतंत्रता के प्रश्न पर हमारा और इंग्लैण्ड का मतभेद है परन्तु फिर भी हम यह चाहते हैं कि ब्रिटेन युद्ध जीते और हम इस कठिन

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल—भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ०सं० 282,283

वेला में ब्रिटेन के लिये अधिक कठिनाइयां उत्पन्न नहीं करना चाहते, विशेषकर इसलिये कि हमने फ़ासिज्म–नाज़िज्म तथा सैनिक तानाशाही का विरोध किया है। परन्तु सुभाषचन्द्र बोस जैसे वामपंथी नेताओं के नेतृत्व में लोगों ने यह कहा कि इंग्लैण्ड की कठिनाइयां ही हमारा सुअवसर है और अंग्रेजी साम्राज्य के विघटन के बिना भारतीय स्वतंत्रता सम्भव नहीं।

राष्ट्रीय मत के सभी पक्ष भारत की स्वतन्त्रता की आवश्यकता के पक्ष में थे। जैसे अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम के समय उन लोगों ने कहा था, "प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं" अब भारतीय लोगों ने कहा, "भारत में उत्तरदायी सरकार के बिना लोकप्रिय युद्ध सम्भव नहीं।" यद्यपि कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से यह कह दिया था कि भारत साम्राज्यवादी युद्ध में सम्मिलित नहीं होगा, वाइसराय ने सितम्बर 1939 में भारत को एक युद्धरत देश घोषित कर दिया था और भारत को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित कर दिया गया था। भारतीय सेनायें मिस्र, अदन एवं सिंगापुर में, लोकप्रिय सरकार की अनुमति के बिना भेज दी गयी थी। कांग्रेस ने सरकार से कहा कि वह अपने युद्ध–उद्देश्य स्पष्ट करे। परन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि संघर्ष तो साम्राज्यवादी शक्तियों के मध्य उपनिवेशों के बंटवारे पर था। 12 अगस्त 1941 को इंग्लैण्ड और अमरीका की संयुक्त घोषणा, एटलांटिक प्रपत्र के जारी करने से कुछ आशायें बंधीं क्योंकि इसमें अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी कहा गया था, "जनता का अधिकार है कि वह यह निश्चय करे कि उसकी सरकार कैसी होगी और उसमें यह भी कहा गया था कि जिन देशों को बलपूर्वक स्वशासन से वंचित कर दिया गया है। वहां पुनः स्वशासन लागू किया जायेगा। परन्तु चर्चिल के इस स्पष्टीकरण से कि यह प्रपत्र भारत पर लागू नहीं होगा, भारतीय राष्ट्रवादियों को बहुत निराशा हुई।[1]

2 कांग्रेस असहयोग तथा व्यक्तिगत सत्याग्रह असफल–

गांधीजी ने वाइसराय के वक्तव्य पर जो उन्होंने 17 अक्टूबर,1939 को युद्ध–उद्देश्य स्पष्ट करने के लिये दिया, अपनी प्रतिक्रिया में कहा था, "कांग्रेस ने रोटी मांगी थी, परन्तु उसे पत्थर मिले।" अतएव कांग्रेस कार्यकारिणी ने सरकार से अपना सहयोग

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ०सं० 284

वापस ले लिया और कांग्रेस बहुमत वाले प्रान्तों में मंत्रिमंडलों ने त्याग–पत्र दे दिये। अगस्त 1940 के प्रस्ताव में जो इंग्लैण्ड के युद्ध मंत्रिमंडल ने प्रस्तुत किया था, अनिच्छायें तथा सामान्य बातें कही गई थीं और केवल टालने के लिये कूटनीति का प्रयोग किया गया था। कांग्रेस ने सार्वजनिक रूपसे सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने की सोची, परन्तु वह अंग्रेजों को कठिनाइयों में नहीं डालना चाहती थी, विशेषकर जब इंग्लैण्ड पर दिन–रात हवाई हमले हो रहे थे और इंग्लैण्ड जीवन–मृत्यु के संघर्ष में जुटा था। अतएव कांग्रेस ने केवल नाममात्र को अपना विरोध प्रकट करने के लिये व्यक्तिगत सत्याग्रह की अनुमति दे दी और यह आन्दोलन 21 अक्टूवर, 1940 को आरम्भ किया गया। बिनोवा भावे पहले सत्याग्रही थे और उन्होंने ब्रिटेन द्वारा भारत को उसकी इच्छा के विरुद्ध युद्ध में घसीटने के विरुद्ध विरोध प्रकट करते हुये स्वयं को गिरफ्तार कराया। इसके उपरान्त जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, राजगोपालाचारी तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों ने गिरफ्तारी दी। अप्रैल 1941 तक 2200 कांग्रेसी जेलों में थे। शीघ्र ही यह संख्या 25000 तक पहुंच गई। सरकार का रुख कड़ा होता चला गया। कांग्रेस को एक अधिक कड़ा कदम उठाना पड़ा। दूसरी ओर जापान के आक्रमण का भय हुआ, और कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन निलम्बित कर दिया। कांग्रेसी सदस्यों को आज्ञा हुई कि वे अपने–अपने स्थान पर रहे और आवश्यकता पड़ने पर लोगों की सहायता करें।

3. **क्रिप्स शिष्टमण्डल की असफलता–**

दिसम्बर 1941 में जापान भी युद्ध में धुरी शक्तियों की ओर से सम्मिलित हो गया और अंग्रेजों को स्थान–स्थान पर हार खानी पड़ी। फरवरी 1942 में सिंगापुर का पतन हुआ और 7 मार्च को रंगून उनके हाथ से चला गया और जापानी सेनायें भारत की सीमा पर पहुंच गई। इंग्लैण्ड और अमेरिका भयभीत हो गये और ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने हाऊस ऑफ कामन्स के नेता सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा क्योंकि यह समझा गया कि वह ही इस कार्य के लिये उपर्युक्त व्यक्ति है। क्रिप्स के प्रस्ताव केवल उन्हीं तत्वों की पुनरावृत्ति थे,

जो बार—बार पहले कहे जा चुके थे। यही नहीं, इसमें तो कुछ शरारत भरे शब्द भी थे, जिनमें युद्ध के उपरांत भारत विभाजन की ओर भी इशारा था। जवाहरलाल नेहरू की प्रतिक्रिया यह थी, ''इन प्रस्तावों से भारत के प्रान्तों तथा रियासतों के असंख्य बंटवारे के द्वार खुल जाने थे।'' इस भावना को स्पष्ट करते हुये जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था, ''ये प्रस्ताव न केवल पाकिस्तान की स्वीकृति अथवा एक विशेष बंटवारे की बात स्वीकार करते थे अपितु इससे असंख्य बंटवारे की सम्भावनायें थीं। ये भारत की स्वतंत्रता के लिये चिरस्थाई भय ही नहीं प्रस्तुत करते हैं अपितु ये उन सभी वचनों को पूर्ण करने में रुकावट बनेंगे जो आज तक भारत को दिये गये हैं।'' क्रिप्स शिष्टमण्डल को अप्रैल 1942 में सहसा वापस बुला लिया गया। इससे यह विचार और अधिक दृढ़ हो गया कि यह तो केवल विलम्ब करने के लिये, एक कूट चाल थी और सम्भवतः संयुक्त राज्य अमेरिका को धोखा देने के लिये ऐसा किया गया था। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि 'स्वीकार करो अथवा छोड़ दो' और जब बातचीत टूट गई तो इंग्लैण्ड ने समझौते के सभी द्वार बन्द कर दिये और लोगों का इंग्लैण्ड पर से विश्वास पूर्णतः उठ गया और राष्ट्र में एक कुंठित भावना जो लगभग विद्रोह की सीमा पर थी, फैल गई।[1]

4. जातिवाद का प्रदर्शन

पेनांग तथा सिंगापुर के पतन के उपरान्त वर्मा में बसे भारतीयों ने भारत की ओर सार्वजनिक रूप से प्रस्थान किया। इन सभी भारतीयों में अधिकांश लोग अंग्रेजी नागरिक थे। सैनिक और असैनिक अधिकारियों ने अंग्रेजी और यूरोपीय उद्गम के विस्थापितों के लिये तो प्रबन्ध किये परन्तु भारतीय विस्थापितों को भारत की ओर पैदल यात्रा करने पर बाध्य किया। इन लोगों को मार्ग में वर्षा, गर्मी, जंगली पशु, जंगली जनजातियों, नदियों और दलदलों का सामना करना पड़ा। इस प्रकार वर्मा से विस्थापित हुये लोगों के लिये दो मार्ग थे— एक श्वेत मार्ग जो केवल श्वेत लोगों के लिये सुरक्षित था और दूसरा काला मार्ग जो भारतीय विस्थापितों के लिये था। जीवित बचे भारतीयों ने भारत पहुंच कर ब्रिटिश अधिकारियों के हाथों इस जातिवाद

---

1. ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल—भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ0सं0 285

के नंगे नृत्य की कथा सुनाई। विदेशी सैनिकों के हाथों भारतीय स्त्रियों पर होने वाले बलात्कारों की संख्या भी बढ़ गई। इससे भारत में रोष होना स्वाभाविक था। कांग्रेस के एक मुख्य सचिव ने टिप्पणी की थी, "भारत के अनादर का प्याला उमड़ चुका था।"[1]

5. भारत सरकार के युद्धकालीन अत्याचार

युद्ध की घोषणा करने के तुरन्त पीछे भारत सरकार ने बहुत सी नागरिक स्वतन्त्रताओं पर प्रतिबन्ध लगा दिये। 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ का विचार छोड़ दिया गया। भारत सरकार संशोधन अधिनियम पारित किया गया जिससे प्रान्तीय सरकारों की शक्तियां तथा कार्य सीमित कर दिये गये। भारत सुरक्षा नियमों से कार्यकारिणी को यह अधिकार दे दिया गया कि वह जनता को भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता न दे। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि वह निवारक बन्दीकरण भी कर सकती थी तथा वैध भारतीय हितों को टाल अथवा विफल कर सकती थी। नौकरशाही ने सम्भवतः सर्वध्वंस की नीति अपनाने की सोची थी। पूर्वी बंगाल में यह आज्ञा दी गई कि सभी छोटी बड़ी देशी नौकायें जब्त कर ली जायें और उन्हें नष्ट कर दिया जाये। इस आज्ञा का क्या प्रभाव हुआ होगा जब यह सोचा जाये कि ये नौकायें लोगों को जीविका उपलब्ध कराती थीं और प्रायः मानसून के दिनों में संचार का एक मात्र साधन होती थीं। गांधीजी ने लिखा था: "पूर्वी बंगाल के लोगों को नावों से वंचित करना ऐसा ही है जैसे कि उनका आवश्यक अंग काट दिया जाये।"

ऐंग्लो–इण्डियन नौकरशाही को, जो कांग्रेस को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानती थीं, यह कांग्रेस को दबाने का स्वर्ण अवसर मिला था। इसको यह आशा थी कि अब दो पक्षों पर युद्ध जीतने का अवसर था, एक ओर धुरी शक्तियों के विरुद्ध और दूसरी ओर राष्ट्रवादी तत्वों के विरुद्ध। नौकरशाही की पकड़ इस युद्ध के दिनों में अपने सब से घिनौने रूप में प्रकट हुई।

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ०सं० 285, 286

6. आर्थिक कठिनाइयाँ

यदि भावों के बढ़ने से कृषकों के तथा श्रमिकों के एक वर्ग को लाभ भी हुआ, तो श्रमिकों की एक बड़ी संख्या को इससे बहुत कठिनाई भी हुई। युद्ध के दिनों में जमाखोरों, काला बाजारी व्यापारियों तथा ठेकेदारों ने बहुत लाभ उठाया। सरकार ने यह समझा कि लाभ की भावना से प्रेरित होकर लोग अधिक काम करेंगे और युद्ध प्रयत्नों को बढ़ावा मिलेगा और युद्ध के लिये बहुत–सा धन चन्दे के रूप में मिलेगा। सरकार के छोटे मोटे पदाधिकारियों ने बहुत–सा धन एकत्रित किया। यदि लोग इस बलपूर्वक एकत्रित किये गये चन्दे की आलोचना करते थे तो उन्हें यह कहा जाता था कि ये युद्ध–विरोधी लोग हैं और बहुमुखी सुरक्षा नियमों के आधीन उन्हें दण्ड दिया जाता था।

जापान के युद्ध में सम्मिलित होने से भारत पर भी युद्ध के बादल छा गये। अतिरिक्त अंग्रेजी तथा अमरीकी सेनायें भारत में तैनात कर दी गई, जिससे भारत की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। सम्भरण व्यवस्था तो युद्ध प्रयत्न के हित में ही जुड़ी हुई थी। अन्न तथा अन्य जीवन के आवश्यक तत्वों की अत्यधिक कमी अनुभव होने लगी। भारत के सम्मुख अकाल का दैत्य खड़ा था।

क्रिप्स शिष्टमण्डल की असफलता, जापानी आक्रमण का भय तथा सर्वव्यापक कुंठित भावना से गांधीजी के रुख में परिवर्तन आया। उन्होंने यह अनुभव किया कि पूर्ण निष्क्रियता, साम्राज्यवादी आज्ञाओं के चुपचाप पालन करते रहने से जनता में गतिहीनता आ जायेगी तथा वे सभी प्रकार के अतिक्रमण के शिकार बन जायेंगे। जनता को उनकी तन्द्रा से जगाने के लिये, तथा उन्हें कार्य में निदेशन देने के लिये उन्होंने यह अनुभव किया कि इंग्लैण्ड को भारत तुरन्त छोड़ देना चाहिये। केवल एक स्वतंत्र भारत ही मित्र शक्तियों के साथ मिलकर भारत के संरक्षण की योजना बना सकता है। यदि साम्राज्यवादी शासक समझदारी से काम करने को तैयार नहीं तो गांधी जी समस्त प्रणाली को चुनौती देने को तैयार थे और एक सार्वजनिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने को तैयार थे। गांधीजी ने इस आन्दोलन की

योजना अप्रैल–मई, 1942 में बनाई तथा इस विषय पर लिखा था, ''चाहे भारत के लिये इसके परिणाम कुछ भी क्यों न हों, उस की वास्तविक सुरक्षा और इंग्लैण्ड की भी इसी में है कि इंग्लैण्ड भारत से सुव्यवस्थित ढंग से और समय पर वापस चला जाये।[1]'' मई के अंक में गांधीजी ने लिखा था: ''भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति, जापानियों को आक्रमण के लिये एक निमंत्रण है। उनके वापस चले जाने से यह प्रलोभन समाप्त हो जायेगा। मान लो कि ऐसा न हो, फिर भी भारत इस आक्रमण का सामना अधिक अच्छी तरह कर सकेगा।'' मई के अन्तिम सप्ताह में गांधीजी ने फिर लिखा, ''भारत को ईश्वर के हाथों में छोड़ दो। दूसरे शब्दों में यहां अराजकता आने दो। इस अराजकता में, कुछ समय के लिये आपसी युद्ध होंगे। इनमें से उस झूठे भारत के स्थान पर जो हम देख रहे हैं, एक वास्तविक भारत उत्पन्न होगा।'' गांधीजी ने भारत में अंग्रेजी राज्य को ''एक व्यवस्थित अनुशासित अराजकता'' की संज्ञा दी और वह चाहते थे कि इसका अन्त होना चाहिये, चाहे इसका परिणाम पूर्ण अराजकता ही क्यों न हो।''

जवाहरलाल नेहरू ने कहा था सन् 1857 के उपरान्त पहली बार जनता का बड़ा समूह भारत में अंग्रेजी सत्ता के सम्पूर्ण ढांचे को बलपूर्वक (शस्त्रों के बिना) चुनौती देने के लिये उठ खड़ा हुआ। यह चुनौती मूर्खता थी तथा असामयिक थी, क्योंकि दूसरी ओर एक सुसंगठित तथा सशस्त्र सेना थी और इसका प्रयोग इतिहास में इतनी बड़ी संख्या में कभी नहीं हुआ था। जनता का समूह कितना ही बड़ा क्यों न हो, यह सशस्त्र सेना के विरुद्ध सफल नहीं हो सकता था। जब तक कि सशस्त्र सेना ही अपनी राजनिष्ठा ही न बदल ले, इसे असफल होना ही था। परन्तु इन जनसमूहों ने न तो प्रतिरोध के लिये ही कोई तैयारी की थी और न ही इसके लिये समय का चयन किया। यह चुनौती तो उन पर अचानक ही आ प्रस्तुत हुई और यह उनकी तुरन्त की प्रतिक्रिया थी। चाहे यह कितने ही बिना सोचे समझे अथवा गलत निर्देशित थी फिर भी इन्होंने इससे भारत की स्वतंत्रता के प्रति अपने प्रेम और विदेशी प्रभुत्व के प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित की।

---

1. अप्रैल, 26, 1942– हरिजन (समाचार पत्र)

४. अगस्त १९४२- कार्य समिति के सदस्यों के साथ गिरफ्तारी तथा जेल में नेहरू

"जुलाई 1942 में कांग्रेस कार्य समिति की वर्धा में जो बैठक हुई उसमें गांधीजी के इन विचारों का समर्थन किया गया कि भारतीय समस्या का हल अंग्रेजों के भारत छोड़ देने में ही है। 14 जुलाई को कार्य समिति ने इस आशय का प्रस्ताव पास किया।[1]

जो घटनायें प्रतिदिन घट रही हैं और भारतवासियों को जो–जो अनुभव हो रहे हैं उनसे कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की यह धारणा पुष्ट होती जा रही है कि भारत में ब्रिटिश शासन का अन्त शीघ्र होना चाहिये। भारत की स्वतंत्रता न केवल भारत के हित में आवश्यक है वरन् संसार की सुरक्षा के लिये, नाजीवाद, फासीवाद, सैन्यवाद और अन्य प्रकार के साम्राज्यवादों एवं एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्र के आक्रमण का अन्त करने के लिये भी आवश्यक है। यह प्रस्ताव 'वर्धा प्रस्ताव' के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रस्ताव के उपरान्त जनता में यह भावना जाग्रत हुई कि कांग्रेस की ओर से अति शीघ्र ही जन–आन्दोलन की घोषणा की जायेगी, किन्तु कांग्रेस ने जन–आन्दोलन की घोषणा के पहले आवश्यक तैयारी कर लेना उचित समझा। कांग्रेसी नेता जन–जागृति को और अधिक प्रबल बनाने के प्रयत्न में लगे रहे। 1 अगस्त 1942 को इलाहाबाद में तिलक दिवस मनाया गया।[2]

"इस अवसर पर जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में कहा कि 'हम आग के साथ खेलने जा रहे हैं' इसी समय बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने व्यक्त किया, 'हमको इस बार गोली खाने और तोप का सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिये।' सरदार पटेल ने बम्बई में कहा, 'इस बार का आन्दोलन थोड़े दिनों का किन्तु बड़ा भयानक होगा।' भारत सरकार कांग्रेस की इस प्रक्रिया से उदासीन नहीं थी। उसने सम्भावित जन–आन्दोलन को कुचलने का निश्चय कर लिया था।"[3]

---

1. जैन, डॉ० पुखराज– भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान, पृ०सं० 38
2. Ibid, P- 36
3. Indian Annual Register, Vol.-I, 1942, P.- 144

8 अगस्त 1942 का भारत छोड़ो प्रस्ताव– वर्धा प्रस्ताव के निश्चय के अनुसार 7 अगस्त को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन आरम्भ हुआ। न केवल भारत वरन् सम्पूर्ण संसार की निगाहें इस अधिवेशन पर लगी हुई थीं। भविष्य के इतिहास तथा घटनाओं ने इस अधिवेशन को ऐतिहासिक अधिवेशन की संज्ञा प्रदान की। इस समिति ने पर्याप्त विचार विमर्श के उपरान्त 'भारत छोड़ो प्रस्ताव पास किया। जिसमें कहा गया था कि– "यह समिति कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के 14 जुलाई 1942 के प्रस्ताव का समर्थन करती है तथा उसका यह विश्वास है कि बाद की घटनाओं ने इसे और भी औचित्य प्रदान कर दिया और इस बात को स्पष्ट कर दिखाया है कि भारत में ब्रिटिश शासन का तत्काल ही अन्त, भारत के लिये और मित्र राष्ट्रों के आदर्श के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसी के ऊपर युद्ध का भविष्य एवं स्वतंत्रता और प्रजातन्त्र की सफलता निर्भर है। "क्योंकि कांग्रेस इस बात से परिचित थी कि अंग्रेज भारत छोड़कर आसानी से नहीं जायेंगे, अतः एक जन–आन्दोलन के संचालन का निश्चय किया गया। लेकिन इस आन्दोलन की तिथि की घोषणा नहीं की गयी थी, क्योंकि गांधीजी आन्दोलन छेड़ने से पूर्व एक बार सरकार से अन्तिम बात कर लेना चाहते थे। गांधीजी ने इस समय कांग्रेस कार्यसमिति के सम्मुख 70 मिनट तक भाषण दिया। पट्टाभि सीतारमैया के शब्दों में, 'वास्तव में गांधीजी उस दिन एक अवतार और पैगम्बर की प्रेरक शक्ति से प्रेरित होकर भाषण दे रहे थे।' अपने इस दिव्य भाषण के अन्त में गांधीजी ने भारतवासियों को 'करो या मरो' का इतिहास प्रसिद्ध सन्देश दिया, जिसका तात्पर्य यह था कि भारतवासियों द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति के लिये प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिये किन्तु उन्होंने यह नितान्त स्पष्ट कर दिया था कि वे यह नहीं चाहते कि उनके द्वारा की गयी कार्यवाही हिंसात्मक हो। कांग्रेस कार्य समिति को सम्बोधित करते हुये जवाहरलाल नेहरू ने कहा–

"यदि ब्रिटिश सरकार प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है तो इससे आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में हर तरह से सुधार होगा। चीन की स्थिति सुधर जायेगी। उन्होंने कहा कि मुझे विश्वास है कि भारत में जो कुछ भी परिवर्तन आयेगा वह बेहतरी के लिये होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को मालूम है कि महात्मा गांधी भारत में रहने वाले अंग्रेजों

को और सशस्त्र सेनाओं को रहने देने की बात पर सहमत हो गये हैं, ताकि भारतीय सीमा पर जापान की कार्रवाई सुगम न बन पाये। जो लोग परिवर्तन लाना चाहते हैं उन्हें यह बात मान लेनी चाहिये।

अमेरिका में यह आलोचना हो रही है कि कांग्रेस ब्लैकमेल कर रही है; इस बात की चर्चा करते हुये जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि यह विचित्र और अद्‌भुत आरोप है। यह आश्चर्य की बात है कि जो लोग अपनी स्वतन्त्रता की बात करते हैं वे उन लोगों पर ऐसा आरोप लगा रहे हैं जो स्वतन्त्र होने के लिये जूझ रहे हैं। यह उन लोगों के प्रति लगाया गया एक अनोखा आरोप है जो पिछले 200 वर्षों से दुःख झेल रहे हैं। यदि यह ब्लैकमेल है तो "अंग्रेजी भाषा की हमारी समझ दोषपूर्ण है।"

अन्त में उन्होंने कहा कि मैं अब और खतरा मोल नहीं ले सकता और अब हमें आगे बढ़ना होगा, भले ही इसमें कितने ही विघ्न और बाधायें क्यों न हों।

सरकार का दृष्टिकोण पराजयवादी है। अब मैं इसे सहन नहीं कर सकता। उन्होंने कहा कि मेरा एक मात्र उद्देश्य पराजयवादियों के स्थानपर वीर योद्धाओं को आगे लाने का है।"[1]

अगस्त क्रान्ति एवं शासन का दमन– कांग्रेस द्वारा संचालित पिछले दो आन्दोलनों में कांग्रेस द्वारा आन्दोलन प्रारम्भ किये जाने के बाद ही ब्रिटिश सरकार ने दमन चक्र प्रारम्भ किया था, लेकिन इस बार आन्दोलन और दमन चक्र का क्रम विपरीत हो गया। गांधीजी ने 'भारत छोड़ो प्रस्ताव' पारित करते हुये कहा था कि आन्दोलन प्रारम्भ करने से पूर्व वे एक बार वाइसराय महोदय से बातचीत करेंगे लेकिन सरकार ने गांधीजी को इस प्रकार की बातचीत का अवसर ही नहीं दिया। 9 अगस्त को प्रातःकाल ही महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया गया। गांधीजी तथा श्रीमती सरोजनी नायडू को पूना के आगा खाँ महल में बन्दी बनाया गया और कार्यसमिति के अन्य सदस्यों जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, आसफ अली और नरेन्द्र देव आदि नेताओं को अहमद नगर के किले में रखा

---

1. बॉम्बे क्रॉनिकल, 8 अगस्त, 1942

गया। इसके उपरान्त एक–दो दिन में ही प्रान्तीय नेताओं को भी कारागार में डाल दिया गया। महात्मा गांधी और कांग्रेस के दूसरे नेताओं को बन्दी बनाने से पूर्व 8 अगस्त की रात्रि को शासन द्वारा एक विज्ञप्ति प्रसारित की गयी, जिसमें कांग्रेस द्वारा अपनाये जाने वाले कार्यक्रम का उल्लेख था। शासन ने इस विज्ञप्ति को समाचार–पत्रों में प्रकाशित करते हुये कहा कि इस कार्यक्रम के कारण ही नेताओं को गिरफ्तार करने की आवश्यकता हुई। इस विज्ञप्ति के अनुसार रेल की पटरियों को तोड़ा जाना, टेलीफोन व टेलीग्राम के तारों को तोड़ा जाना कार्यक्रम का अंग था।[1]

शासन द्वारा भारतीय नेताओं को कारावास में डाल दिये जाने से जनता अवाक्–सी रह गयी। जनता शासन की नीति से ऊब तो पहले ही चुकी थी, मार्ग–निर्देशन के अभाव में जनता के इस विरोध ने व्यापक जन–विद्रोह का रूप धारण कर लिया, जनता ने सरकार की नीति का विरोध करने के अभिप्राय से जुलूस निकाले, सभायें कीं तथा हड़तालों का आयोजन किया। सरकार ने प्रदर्शनकर्ताओं के साथ कठोर व्यवहार किया और कहीं–कहीं तो गोलियों का प्रयोग भी किया गया। सरकार के दमन चक्र के कारण शान्तिपूर्ण ढंग से विरोध व्यक्त करने के सभी साधन बन्द हो गये। जनता ने बाध्य होकर हिंसात्मक कार्य करने प्रारम्भ किये। संचार साधन भंग कर दिये गये और रेलवे व पुलिस स्टेशन जला दिये गये। जमशेदपुर, बम्बई व अहमदाबाद के मजदूरों ने हड़तालें की और लगभग एक सप्ताह के लिये बम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली, मद्रास, बंगलौर व अमृतसर में सार्वजनिक जीवन बिलकुल ठप्प हो गया। कई स्थानों पर ब्रिटिश शासन का बिल्कुल अन्त हो गया और वहां समानान्तर सरकारें स्थापित हो गयीं। संयुक्त प्रान्त में बलिया तथा बस्ती जिले में, बम्बई में, सतारा में, बंगाल के मिदनापुर जिले में और बिहार के अन्य भागों में ऐसा ही हुआ। उस समय की स्थिति को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि ब्रिटिश शासन का भारत से शीघ्र अन्त हो जायेगा। "1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन ने कितना उग्र रूप धारण कर लिया था इसका कुछ अनुमान उन आंकड़ों के द्वारा लगाया जा सकता है जो फरवरी 1943 में भारत सरकार के युद्ध सदस्य सर रैजीनाल्ड

---

1. Prasad, Dr. Rajendra - at the Feet of Mahatma Gandhi, P.- 308

मैक्सवेल ने केन्द्रीय विधानसभा में प्रस्तुत किये थे। इन आंकड़ों के अनुसार 1942 के आन्दोलन में पुलिस और सेना द्वारा 538 बार गोलियां चलायी गयीं जिसके परिणामस्वरूप 940 व्यक्ति मारे गये और 1360 घायल हुये। 60229 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। 220 के लगभग रेलवे स्टेशन नष्ट कर दिये गये, 550 के लगभग डाकखानों पर हमला हुआ जिनमें से 50 बिलकुल जला डाले गये और 200 को भारी नुकसान पहुंचा। 3500 स्थानों पर तार और टेलीफोन की लाइनों को काटा गया। 70 थाने और अन्य 85 सरकारी भवनों को जलाकर धराशायी कर दिया गया।''

शासन द्वारा सर्वत्र आन्दोलन का बहुत अधिक कठोरतापूर्वक दमन किया गया। माइकेल ब्रेचर के शब्दों में, "संक्षेप में, सर्वत्र सरकारी दमन बहुत अधिक कठोर था। 1857 के बाद भारत में ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध सबसे बड़े विद्रोह का सामना करने के लिये पुलिस राज्य स्थापित किया गया[1]।'' इस प्रकार के अमानवीय दमन ने खुले विद्रोह को दबाने में सफलता प्राप्त की, लेकिन आन्दोलन भूमिगत हो गया और जयप्रकाश नारायण, डॉ0 राम मनोहर लोहिया, अरुणा आसफअली और अच्युत पटवर्धन जैसे समाजवादी नेताओं द्वारा इसका संचालन किया जाने लगा।

विभिन्न दलों की प्रतिक्रिया– इस आन्दोलन का समर्थन भारत के लगभग सभी राजनीतिक दलों द्वारा किया गया। समाजवादी नेताओं ने तो आन्दोलन के सम्बन्ध में पूर्णतः कांग्रेस का साथ दिया लेकिन साम्यवादियों द्वारा देश के लिये घातक नीति अपनायी गयी और उनके कार्यों ने सिद्ध कर दिया कि उनकी भक्ति अपनी मातृभूमि के स्थान पर तथाकथित सर्वहारावर्ग की भूमि के प्रति ही है। 1939 में जब कि युद्ध प्रारम्भ हुआ भारतीय साम्यवादियों द्वारा ब्रिटिश युद्ध प्रयत्नों की निन्दा करते हुये इसे 'साम्राज्यवादी युद्ध' की संज्ञा दी गयी, लेकिन 1941 में जैसे ही सोवियत रूस मित्र राष्ट्रों की ओर से सम्मिलित हुआ, भारतीय साम्यवादियों के लिये कल तक का साम्राज्यवादी युद्ध 'लोक युद्ध' में परिणित हो गया। साम्यवादी दलों ने लीग के साथ गठबन्धन कर उनकी पाकिस्तान सम्बन्धी योजना के पक्ष में विचार प्रकट किये तथा

---

1. Brecher, Michael - Nehru A Political Biography, P.- 289

कांग्रेस को आन्दोलन स्थगित करने की सलाह दी। साम्यवादियों के ये कार्य राष्ट्रीय आन्दोलन की पीठ में छुरा भोंकने के समान थे। मुस्लिम लीग ने कहा कि इस आन्दोलन का लक्ष्य भारतीय स्वतन्त्रता नहीं, वरन् भारत में हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करना है और इस कारण यह आन्दोलन मुसलमानों के लिये घातक है।''[1] मि0 जिन्ना ने कहा कि कांग्रेस के साथ उसी समय सहयोग किया जा सकता है जबकि कांग्रेस पाकिस्तान निर्माण की बात स्वीकार कर ले। न केवल साम्यवादी दल और मुस्लिम लीग वरन् भारत के अन्य कुछ दलों द्वारा भी भारत छोड़ो आन्दोलन का विरोध किया गया। उदावादी नेता तेज बहादुर सप्रू के द्वारा वर्धा प्रस्ताव को 'अविचारित और असामयिक' बताया गया और दलित वर्गों के नेता डॉ0 अम्बेडकर ने गांधीजी द्वारा संचालित आन्दोलन को 'अनुत्तरदायित्व और पागलपन भरा कार्य' बताया। हिन्दू महासभा के नेता सावरकर के द्वारा भी गांधी की नजरबन्दी के दिन ही हिन्दुओं से अपील की गयी कि उनके द्वारा कांग्रेस के आन्दोलन में सहयोग न दिया जाय।[2]

<u>आन्दोलन के परिणाम</u>— भारत छोड़ो आन्दोलन महात्मा गांधी द्वारा अब तक किये गये आन्दोलनों में सबसे भीषण और भारतीय स्वतन्त्रता के लिये किया गया महानतम प्रयास था। आन्दोलन का उद्देश्य भारत के लिये स्वतन्त्रता प्राप्त करना था और इस बात को स्वीकार करना होगा कि आन्दोलन द्वारा तत्काल ही भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त न कर सकने या जिसे आन्दोलन की असफलता कहा जाता है, के कारण इस प्रकार थे:

(1) आन्दोलन के संगठन में कमियां— भारत छोड़ो आन्दोलन एक जन—आन्दोलन था और इस प्रकार के जन—आन्दोलन को सफल बनाने के लिये व्यापक तैयारियां की जानी चाहिये थीं। आन्दोलन के नेताओं द्वारा अपनी रणनीति निश्चित कर ली जानी चाहिये थी और इसके पूर्व कि शासन उनको गिरफ्तार करे, उन्हें अज्ञात स्थान में चला जाना चाहिये था। वस्तुतः इस प्रकार की कोई तैयारी नहीं की गयी थी। ऐसी स्थिति में जब शासन द्वारा दमन कार्य की पहल की गयी, तो आन्दोलनकारी हतप्रभ रह गये और प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी के कारण

---

1. Sitaramaiya - History of Indian National Congress. Vol.-II, P.- 462
2. Ibid, P- 466

आन्दोलन नेतृत्वहीन हो गया।

(2) सरकारी नेताओं और उच्च वर्गों की वफादारी– भारत छोड़ो आन्दोलन तत्काल ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति में इसलिये भी असफल रहा कि देशी रियासतों के नरेश, सेना, पुलिस, उच्च सरकारी अधिकारी तथा कर्मचारी आन्दोलन काल में सरकार के प्रति पूर्ण वफादार बने रहे और इससे शासन कार्य बेरोकटोक चलता रहा।

(3) आन्दोलनकारियों की तुलना में शासन की कई गुना शक्ति–

वस्तुतः आन्दोलन की तात्कालिक असफलता अवश्यम्भावी थी क्योंकि आन्दोलनकारियों की तुलना में शासन की शक्ति कई गुना थी। आन्दोलनकारियों की न तो कोई गुप्तचर व्यवस्था थी और न ही एक स्थान से दूसरे स्थान को सन्देश भेजने के साधन थे। उनकी आर्थिक शक्ति भी ब्रिटिश शासन की तुलना में बहुत कम थी।

आन्दोलन का एक अवांछनीय परिणाम लीग की शक्ति में बहुत अधिक वृद्धि के रूप में सामने आया।

आन्दोलन का महत्व– यद्यपि भारत छोड़ो आन्दोलन अपने मूल लक्ष्य भारत से ब्रिटिश शासन की समाप्ति को तात्कालिक रूप से प्राप्त नहीं कर सका, लेकिन इस आन्दोलन ने भारत की जनता में एक ऐसी अपूर्व जागृति उत्पन्न कर दी जिससे ब्रिटेन के लिये भारत पर लम्बे समय तक शासन कर सकना सम्भव नहीं रहा। ए.सी. बनर्जी के शब्दों में, " इस विद्रोह के परिणामस्वरूप अधिराज्य की पुरानी मांग सर्वथा समाप्त हो गयी और उसका स्थान पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग ने ले लिया।"[1] इस सम्बन्ध में डॉ0 ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, " अगस्त क्रान्ति अत्याचार और दमन के विरुद्ध भारतीय जनता का विद्रोह था और इसकी तुलना फ्रांस के इतिहास में बेस्टिले के पतन या सोवियत रूस की अक्टूबर क्रान्ति से की जा सकती है। यह क्रान्ति जनता में उत्पन्न नवीन उत्साह तथा गरिमा की सूचक थी।"[2]

---

1. Bannerjee, A.C.- The Constituent Assembly of India, P.- 21

2. Prasad, Dr. I.- History of Morden India, P.-458

पाँचवां अध्याय

1. 1944 में गाँधी जी की जेल से रिहायी–भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ
2. वेवेल योजना– सिफारिशें व नेहरू
3. शिमला सम्मेलन– नेहरू का योगदान
4. आम निर्वाचन व नेहरू
5. आजाद हिन्द फौज– सैनिकों की गिरफ्तारी लाल किले में मुकदमा चला– नेहरू द्वारा पैरवी
6. कैबिनेट मिशन योजना और नेहरू
7. संविधान सभा के लिये निर्वाचन और नेहरू

९. १९४४ में गाँधीजी की जेल से रिहायी- भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ

गाँधीजी की पत्नी कस्तूरबा की मृत्यु 24 फरवरी,1944 को हो गई। गाँधीजी को पूना के आगा खाँ पैलेस से अहमद नगर स्थानान्तरित कर दिया, क्योंकि गाँधीजी को मलेरिया ने जकड़ लिया था और वह स्थान मलेरिया से मुक्त था किन्तु गाँधीजी का स्वास्थ्य अचानक बिगड़ गया। डॉक्टरों की राय में कॉरोनरी और सेरिब्रल थ्रॉम्बोसिसका का खतरा पैदा हो गया था। सरकार को डर लगा कि कहीं नज़रबन्दी में उनकी मृत्यु न हो जाये। अतः वाइसराय ने भारत—मन्त्री से गाँधीजी को रिहा कर दिये जाने की सिफारिश की और मन्त्रिमण्डल तथा स्वयं चर्चिल ने इसकी अनुमति दे दी— विशेषतः इसलिये भी कि वाइसराय और उनके सलाहकारों ने राय व्यक्ति की थी कि भविष्य में गाँधीजी की राजनीति में कोई सक्रिय भूमिका नहीं रह पायेगी।[1]

सन् 1944 में श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने महात्मा गाँधीजी की पूर्ण सहमति से पाकिस्तान के आधार पर कांग्रेस—लीग सहयोग पर आधारित एक फार्मूला बनाया। इसे चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के फार्मूले के नाम से जानते हैं। इस समय जवाहरलाल नेहरू अहमदनगर के किले में बन्द थे।

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का फार्मूला—[2]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के बीच समझौते की शर्तों का आधार जिस पर गांधीजी और श्री जिन्ना सहमत हैं तथा जिसे वे क्रमशः कांग्रेस तथा लीग से मंजूर करवाने का प्रयास करेंगे:

1. मुस्लिम लीग भारत की आजादी की माँग का अनुमोदन करती है और संक्रमणकाल के लिये अस्थायी अन्तरिम सरकार बनाने में वह कांग्रेस को अपना सहयोग प्रदान करेगी। यह अनुमोदन और समर्थन निम्नलिखित शर्तों पर होगा।

---

1. Menon, V.P. - The Transfer of Power in India, Vol.-IV, P.- 948- 53
2. Indian Annual Register, Vol.-II, 1944, P.- 207

2. युद्ध समाप्त होने के बाद एक आयोग नियुक्त किया जायेगा, जो भारत के पश्चिमोत्तर और पूर्वी भागों के आपस में जुड़े उन इलाकों का सीमांकन करेगा जहाँ कि मुसलमान आबादी का पूर्ण बहुमत है। इस प्रकार सीमांकित क्षेत्र के सभी निवासियों को वयस्क मताधिकार अथवा अन्य व्यवहार्य मताधिकार के आधार पर किया गया जनमत–संग्रह हिन्दुस्तान से उनके अलगाव के प्रश्न का अन्तिम निबटारा करेगा। यदि वहाँ की बहुसंख्यक जनता हिन्दुस्तान से पृथक् एक प्रभुता–सम्पन्न राज्य बनाने का निर्णय करेगी तो उस फैसले पर अमल किया जायेगा, लेकिन सीमावर्ती इलाकों को दोनों में चाहे जिस राज्य में शामिल होने का फैसला करने का अधिकार होगा।
3. जनमत–संग्रह के पूर्व सभी पक्षों को अपने विचारों का प्रचार करने की खुली छूट होगी।
4. अलगाव होने पर प्रतिरक्षा, वाणिज्य और संचार की सुरक्षित व्यवस्था तथा अन्य आवश्यक प्रयोजनों के लिये आपसी समझौते किये जायेंगे।
5. आबादी का स्थानान्तरण पूर्णतः स्थानान्तरित किये जाने वाले लोगों की इच्छा पर निर्भर होगा।
6. ये शर्तें तभी बन्धनकारी होंगी जब ब्रिटेन भारत के शासन का पूरा अधिकार और दायित्व हस्तान्तरित करेगा।

गाँधीजी ने श्री मुहम्मद अली जिन्ना को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने सुझाव दिया कि वे दोनों राजाजी फार्मूला पर विचार–विमर्श करें। दोनों नेताओं ने 9 सितम्बर 1944 को विचारविमर्श आरम्भ किया और यह 27 सितम्बर तक चलता रहा। श्री जिन्ना ने गाँधीजी से इस राजगोपालाचारी फार्मूले के भिन्न भिन्न पक्षों पर विस्तार से स्पष्टीकरण मांगा। गाँधीजी ने स्पष्टीकरण देते हुये कहा, "लीग का लाहौर में पारित किया हुआ प्रस्ताव, जिसमें पाकिस्तान की मांग रखी गई थी, अस्पष्ट सा था और राजगोपालाचारी ने केवल उसका सार लेकर उसे चित्रांकित ही किया है।" परन्तु जिन्ना ने उत्तर दिया, "राजाजी ने उस सार को विकृत ही कर दिया है और एक अपंग तथा खण्डित उत्तरपूर्वी पाकिस्तान ही प्रस्तुत किया है।"[1]

---

1. ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ0सं0 108

और इस प्रकार एक शाब्दिक द्वन्द चलता रहा जिसका कुछ भी सार नहीं निकला क्योंकि कांग्रेस तथा लीग के उद्देश्यों तथा उपगमन में आमूल भेद थे। श्री जिन्ना का कथन था कि भारत के मुसलमान एक भिन्न राष्ट्र है और उन्हें आत्मनिर्णय का अधिकार मिलना चाहिये और केवल मुसलमानों को ही मताधिकार मिलना चाहिये न कि इस विवादास्पद प्रदेश की समस्त जनता को अर्थात दूसरे शब्दों में आत्मनिर्णय का वह अधिकार जो मुसलमान अपने लिये मांगते थे, वे उसी प्रदेश के मुसलमानों से भिन्न लोगों को देने को तैयार नहीं थे। गाँधीजी ने इस अवस्था तथा इस धारणा को कि मुसलमान एक अन्य राष्ट्र है, स्वीकार नहीं किया। कांग्रेस केवल स्वतंत्रता चाहती थी और इसकी प्राप्ति के लिये वह मुस्लिम लीग का सहयोग चाहती थी जिसके लिये वह आवश्यक मोल देने को तैयार थी परन्तु लीग समस्त देश की स्वतंत्रता की चिंता करने को तैयार नहीं थी। वह तो केवल यह चाहती थी कि कांग्रेस द्विराष्ट्र का सिद्धान्त स्वीकार करे और समस्त जनता के मतसंग्रह के बिना ही विभाजन स्वीकार कर ले। श्री जिन्ना एक सम्मिलित केन्द्र जिसे सुरक्षा, व्यापार तथा संचार साधनों पर अधिकार हो, भी स्वीकार करने को तैयार नहीं थे।

देसाई–लियाकत समझौता–[1]

इस विचारविमर्श में गाँधीजी की भारत के विभाजन के लिये मौन स्वीकृति, से हिन्दुओं में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। वीर सावरकर ने कहा, "भारतीय प्रान्त गाँधीजी अथवा राजाजी की निजी सम्पत्ति नहीं है कि वे इसे जिसको चाहें भेंट दे दें।" परन्तु फिर भी प्रयत्न यही होते रहे कि इस गतिरोध को किसी न किसी रूप से समाप्त किया जा सके। केन्द्रीय विधान सभा में कांग्रेस दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई, केन्द्रीय विधान सभा में मुस्लिम लीग दल के उपनेता श्री लियाकत अली खान से मिले और उन्हें केन्द्र में एक अन्तरित सरकार बनाने के सुझाव का मसविदा प्रस्तुत किया जिसमें सुझाव था कि–

(1) कांग्रेस तथा लीग के केन्द्रीय मंत्री मण्डल में बराबर–बराबर संख्या में सदस्य मनोनीत किये जायेंगे।

(2) अल्पसंख्यकों के लिये 20% स्थान आरक्षित किये जायेंगे तथा मुख्य सेनापति एक होगा।

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ०सं० 109

परन्तु इस व्यवस्था पर भी कांग्रेस तथा लीग में समझौता नहीं हो सका। इस सुझाव में कांग्रेस ने लीग की समानता स्वीकार कर ली जिसके आगे चलकर महत्वपूर्ण परिणाम निकले।

इधर भारत में संवैधानिक गतिरोध बना रहा परन्तु यूरोप में युद्ध प्रथम मई 1945 को समाप्त हो गया और इंग्लैण्ड में आम चुनाव होने ही वाले थे।

२. वेवेल योजना- सिफारिशें व नेहरू

अक्टूबर 1943 में लार्ड वेवेल की लार्ड लिनलिथगो के स्थान पर भारत के गवर्नर–जनरल के रूप में नियुक्ति हुई। 1945 में उन्होंने भी भारत में गतिरोध दूर करने का प्रयत्न किया। यद्यपि यूरोप में युद्ध समाप्त होने ही वाला था परन्तु जापान के साथ संघर्ष अत्यधिक उग्रता से चल रहा था। अतएव और भी आवश्यक था कि युद्ध प्रयत्न में भारत का सहयोग प्राप्त किया जाय और गतिरोध दूर किया जाय। इसी गतिरोध को दूर करने के लिये जवाहरलाल नेहरू को मार्च,1945 में जेल से रिहा कर दिया गया।

मई 1945 में वेवेल विचार–विमर्श के लिये इंग्लैण्ड गये और उस विचार–विमर्श का फल शीघ्र ही मिला। फिर 14 जून 1945 को उन्होंने भारतवासियों के नाम एक संदेश रेडियो पर प्रसारित किया जिसमें उन्होंने अंग्रेज सरकार के इस गतिरोध को समाप्त करने के लिये प्रस्तावों का ब्यौरा दिया जो निम्न प्रकार था–[1]

1. वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद को पुनर्गठित किया जाय तथा उसमें सभी दलों को प्रतिनिधित्व दिया जाय। परिषद में वाइसराय या सैन्य प्रमुख के अतिरिक्त शेष सभी सदस्य भारतीय होंगे तथा प्रतिरक्षा विभाग वाइसराय के अधीन होगा।
2. कार्यकारिणी में मुसलमान सदस्यों की संख्या सवर्ण हिन्दुओं के बराबर होगी।
3. कार्यकारिणी परिषद एक अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार के समान होगी। गवर्नर जनरल बिना कारण निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं करेगे।
4. कांग्रेस के नेता रिहा किये जायेंगे तथा शीघ्र ही शिमला में एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया जायेगा।
5. युद्ध समाप्त होने के उपरान्त भारतीय स्वयं ही अपना संविधान बनायेंगे।

वाइसराय द्वारा चुने हुये भारतीय राजनीतिक दलों के नेताओं की एक कान्फ्रेंन्स बुलाई इसलिये जायेगी ताकि ऐसी एक संयुक्त सूची प्रस्तुत की जा सके

---

1. ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ0सं0 109,110

जिसमें से ये पार्षद नियुक्त किये जा सकें। यदि सभा न हो सके तो योग्य व्यक्तियों की अलग सूची ले ली जायेगी ताकि नई कार्यकारी परिषद बनाई जा सके। इसी प्रकार उन प्रान्तों में जहां परिषदें भंग हो गई हैं और धारा 93 के अधीन गवर्नर अपने पार्षदों की सहायता से कार्य कर रहे हैं, वहां भी मिली–जुली सरकारें स्थापित कर दी जायेंगी।

३. शिमला सम्मेलन- नेहरू का योगदान

25 जून को शिमला में राजनीतिक नेताओं के सम्मेलन में विचार होना था। कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य रिहा कर दिये गये। अल्मोड़ा जेल में बदली किये गये जवाहरलाल जी कार्यसमिति की बैठक में भाग लेने बम्बई गये। कार्यसमिति ने शिमला–वार्ता में शामिल होने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया लेकिन लीग के इस दावे को अस्वीकार कर दिया कि वाइसराय की परिषद के समस्त मुस्लिम सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार उसी का है।

जिन इक्कीस व्यक्तियों को शिमला बुलाया गया था उनमें प्रमुख नेता थे जवाहरलाल नेहरू, जिन्ना, इस्माइल खां, सरदार पटेल, अब्दुल गफ्फार खां तथा तारा सिंह उनमें कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद का नाम नहीं था। प्रान्तों के भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों केन्द्रीय असेम्बली और राज्य परिषद के कांग्रेसी और लीगी नेताओं, केन्द्रीय असेम्बली की नेशलिस्ट पार्टी तथा यूरोपीय गुट के नेताओं, परिगणित जातियों के एक प्रतिनिधि, सिखों के एक प्रतिनिधि, कांग्रेस के मान्य नेता गांधीजी और मुस्लिम लीग के प्रधान जिन्ना को वाइसराय ने वार्ता के लिये मनोनीत किया था।

गांधीजी ने निमंत्रण अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वे तो कांग्रेस के सदस्य भी नहीं थे ओर सरकारी सम्मेलन में उनका स्थान ही क्या था। लेकिन वाइसराय ने उन्हें प्रेक्षक के रूप में शिमला–सम्मेलन में भाग लेने को राजी कर लिया। कांग्रेस के मान्य प्रवक्ता के रूप में अब मौलाना आजाद को निमंत्रित किया गया। अधिकांश कांग्रेसियों का इस सम्मेलन के प्रति कोई लगाव न था, लेकिन राजगोपालाचारी और कुछ अन्य नेता अन्तिम क्षण तक उसके सफल होने की आशा करते रहे। कांग्रेस मुस्लिम लीग के इस दावे को मानने को राजी न हुई कि वाइसराय की परिषद के मुस्लिम सदस्यों को वही मनोनीत करें। जिन्ना मौलाना आजाद से मिलने को राजी न थे। जिन्ना ने मौलाना आजाद को कांग्रेस का 'दिखउअल' कहकर मजाक उड़ाया था। जिन्ना की पंडित पंत से बातचीत हुई, पर उसका कोई नतीजा न निकला।

लार्ड वावेल ने दलों से मांग की कि वे परिषद के लिये व्यक्तियों की अपनी सूची दें जिनमें से मैं छांट कर लूंगा। कांग्रेस और अन्य दलों ने यह बात मान ली और सूचियां प्रेषित कर दीं। जामिया मिलिया में शिक्षा के काम में लगे हुये गैरदलीय राष्ट्रवादी मुस्लिम डॉ0 जाकिर हुसैन का नाम इस उम्मीद से प्रस्तावित किया गया कि उसे तो शायद मुस्लिम लीग मान ही लेगी। जिन्ना इस बात पर अड़े रहे कि पहले यह आश्वासन मिले कि मुस्लिम लीग के पांचों मनोनीत व्यक्तियों को वाइसराय स्वीकार कर लेगे। इसका अर्थ यह था कि कांग्रेस अपने पांच सदस्यों के कोटे में चाहे तो एक कांग्रेसी मुस्लिम को शामिल कर ले। वाइसराय ने कोई आश्वासन नहीं दिया। उसने अपनी सूची तैयार की। उस सूची में गैर–लीगी मुस्लिम भी थे लेकिन जिन्ना को यह तरीका पसन्द न आया। सम्मेलन 14 जुलाई को निराशाजनक स्थिति में समाप्त हुआ। विफलता की जिम्मेदारी वेवल ने अपने ऊपर ले ली। जहां उन्हें अड़ना चाहिये था वहां वे अड़े नहीं।[1]

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 120, 121

४. आम निर्वाचन व नेहरू

लार्ड पेथिक लॉरेंस के पद ग्रहण के कुछ काल पश्चात् ही लार्ड वेवल को पुनः इंग्लैण्ड में विचार–विमर्श के लिये आमन्त्रित किया गया। वाइसराय की कार्यकारिणी की एक आपातकालीन बैठक हुई और उसके पश्चात 21 अगस्त को यह घोषणा की गई कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान–मण्डलों के चुनाव कराये जायेंगे और वाइसराय विचार–विमर्श के लिये लन्दन जायेंगे। लौटने के तुरन्त पश्चात् वाइसराय ने 19 सितम्बर 1945 को यह घोषणा की कि चुनावों के तुरन्त उपरान्त भारत का संविधान बनाने के लिये एक सभा बनाई जायेगी और भिन्न भिन्न राजनीतिक दलों की सहायता से वाइसराय की कार्यकारी परिषद का पुनर्गठन किया जायेगा और यह भी आशा की गई कि नेता लोग, मन्त्रियों का उत्तरदायित्व सम्भाल लेंगे।[1]

उसी दिन (19 सितम्बर 1945) को अंग्रेजी प्रधान मन्त्री एटली ने वाइसराय की घोषणा की पुनरावृत्ति की और यह घोषणा की कि 1942 के प्रस्ताव अभी भी विद्यमान हैं और अंग्रेजी सरकार उन्हीं के अनुसार समस्त कार्य कर रही है। इसके पश्चात 4 दिसम्बर को लार्ड पैथिक लॉरेंस ने लार्ड्ज सभा में एक वक्तव्य दिया जिसमें यह कहा गया कि प्रस्तावों के पूर्ण महत्व को पूरी तरह समझने का प्रयत्न नहीं किया गया और अन्यायपूर्ण ढंग से यह मान लिया गया कि प्रारम्भिक विचार–विमर्श में विलम्ब करने का प्रयत्न किया जायेगा। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि अंग्रेजी सरकार संविधान सभा के गठन को बहुत महत्व देती है और यह कार्य शीघ्रता से होना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि यह भ्रांति संसद के सदस्यों तथा प्रमुख भारतीय राजनीतिक व्यक्तियों के आपसी परामर्श से दूर हो जायेगी और साथ ही उन्होंने भारत में साम्राज्यीय संसदीय शिष्ट मण्डल के तत्वाधान में एक संसदीय शिष्टमण्डल के भारत भेजने का सुझाव दिया। परन्तु पुनः यह स्पष्ट कर दिया गया कि इस शिष्टमण्डल को इंग्लैण्ड को किसी विशेष नीति का अनुसरण करने के लिये बाध्य करने की अनुमति नहीं होगी,

---

1. ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ0सं0 112

अर्थात इसके सुझाव केवल सुझाव होंगे।

लार्ड वेवल ने 10 दिसम्बर 1945 को कलकत्ता के संयुक्त व्यापार मण्डल की वार्षिक सभा में यह घोषणा की, ''भारत छोड़ो कोई जादू नहीं है, अपितु सद्भाव, सहकारिता तथा सहिष्णुता की आवश्यकता है।''

1945–46 के मध्य में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान–मण्डलों के चुनाव हुये। इन चुनावों में जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेसी उम्मीदवारों के लिये चुनाव प्रचार किया और कांग्रेस ने लगभग सभी प्रान्तों में प्रायः सभी गैर–मुस्लिम स्थानों पर विजय प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त में भी मुसलमानों के स्थानों की बहुसंख्या तथा इसके अतिरिक्त यू0पी0, सी0पी0, बिहार तथा आसाम में कुछ मुस्लिम स्थान भी जीत लिये। यद्यपि मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के अत्यधिक स्थान जीते परन्तु फिर भी वह केवल सिन्ध तथा बंगाल में ही मन्त्रिमण्डल बना सकी। पंजाब में यद्यपि मुस्लिम लीग सबसे बड़े दल के रूप में सामने आई, परन्तु कांग्रेस, सिक्ख तथा यूनियनिस्ट दल के हिन्दू तथा मुसलमान सदस्यों ने एक मिला–जुला मन्त्रिमण्डल, खिजर हयात खाँ के नेतृत्व में बनाया। शेष आसाम , बिहार, यू0पी0, मध्य प्रान्त, उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्त, बम्बई, मद्रास तथा उड़ीसा में कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाये।[1]

---

1. ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ0सं0 113

९. आजाद हिन्द फौज- सैनिकों की गिरफ्तारी, लाल किले में मुकदमा चला- नेहरू द्वारा पैरवी

आजाद हिंद फौज (इंडियन नेशनल आर्मी—आई.एन.ए.) की स्थापना नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के योग्य और प्रेरणादायक नेतृत्व में हुई थी। उसमें धर्म और जाति—पांति के बंधन नहीं थे। उसका एक ही उद्देश्य था—भारत में विदेशी शासन पर निर्णायक आक्रमण करना और देश को आजाद कराना।

सन् 1945 के मध्य में जापान में हिरोशिमा पर बम—वर्षा के बाद ध्रुवीय सेनाओं का प्रतिरोध बिखर गया था। जापानी सेना ने हथियार डाल दिये थे और उसके साथ आजाद हिंद फौज के सैनिकों और अफसरों ने भी समर्पण कर दिया था। 18 अगस्त 1945 को एक वायु—दुर्घटना में नेताजी की मृत्यु हो गयी थी। जापान के समर्पण और नेताजी की मृत्यु ने इतिहास की दिशा ही बदल दी थी। आजाद हिंद फौज के अनेकों अफसरों और सैनिकों को बंदी बना लिया गया था। कुछ को मार डाला गया, कुछ को कड़ी सजायें दी गयीं और अधिकांश अन्य अफसरों और सैनिकों को भारत लाया गया। सरकार उनसे देशद्रोहियों की तरह बर्ताव करना चाहती थी और उन्हें दंड देना चाहती थी। युद्ध की समाप्ति के बाद देश के राजनीतिक हालात में काफी बदलाव आ गया था। अंग्रेजों को यह बोध हो चुका था कि उन्हें अब जाना होगा, इसलिये भारतीयों के भड़क जाने के भय से उन्होंने आजाद हिंद फौज के सैनिकों और अफसरों से देशद्रोहियों और बागियों के रूप में व्यवहार न करने का फैसला किया।[1] 19 अगस्त 1945 को जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्र की भावनाओं को कुछ यूं व्यक्त किया:

"काफी संख्या में आजाद हिंद फौज के अफसरों और सैनिकों को अब बंदी बनाया जा चुका है। कुछ को प्राणदंड दिया जा चुका है। किसी भी वक्त, उनसे इतना सख्त व्यवहार करना उचित नहीं था, लेकिन इस वक्त, जब भारत परिवर्तन की कगार पर खड़ा है, उनसे आम बागियों की तरह व्यवहार करना एक ऐसी गलती करना होगा, जिसके

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द — आजादी के मुकदमे, पृ0सं0 130

दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। अभी उनको दी जाने वाली सजा वस्तुतः पूरे भारत के लिये सजा होगी और लाखों–करोड़ों भारतीयों को इससे गहरी चोट पहुंचेगी।" अतः भारत सरकार ने फैसला किया कि आम जनता और पूरे संसार के सामने उन पर मुकदमा चलाकर उनका अपराध प्रमाणित करना ज्यादा बुद्धिमानी की बात होगी। उन्हें देशद्रोह तथा राजभक्ति की शपथ के उल्लंघन के अभियोग हटा लेने की सलाह भी दी गयी। सरकार ने दिल्ली के लाल किले में आजाद हिंद फौज के अफसरों पर मुकदमा चलाने का फैसला किया और अनेक अफसरों पर मुकदमे चलाने की बजाय तीन व्यक्तियों का चुनाव किया। इनमें से पहला हिंदू–प्रेम कुमार सहगल, दूसरा मुस्लिम–शाह नवाज खान ओर तीसरा सिक्ख– गुरबक्श सिंह ढिल्लों था। मुकदमे का उद्देश्य यह साबित करना नहीं था कि उन्होंने राजभक्ति की शपथ का उल्लंघन किया, बल्कि यह दिखाना था कि उन्होंने हत्यायें और सैन्य अपराध किये हैं। इस कदम से पूरे राष्ट्र की सहानुभूति इन अफसरों के साथ हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इन अभियुक्तों के बचाव की योजना बनाने में सक्रिय भूमिका निभाई। कुछ जाने–माने वकीलों की एक उच्चस्तरीय समिति बनाई गई, जिसमें जवाहरलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू, श्री आसफ अली इत्यादि शामिल थे।

ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत की आजादी के प्रति समर्पित व्यक्तियों पर चलाया जाने वाला यह अन्तिम मुकदमा सर्वाधिक रोचक और महत्वपूर्ण मुकदमों में से एक है।

दिल्ली के लाल किले में दो महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मुकदमे चलाये गये थे। राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के कानूनी मुद्दों से जुड़े होने के कारण इन दोनों मुकदमों ने राजनीतिक इतिहास की दिशा ही बदल दी थी। सन् 1858 में दिल्ली के लाल किले में अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह ज़फर पर एक ऐतिहासिक मुकदमा चलाया गया था। इसने भारत में मुगल शासन पर अन्तिम आघात कर अंग्रेजों की प्रभुसत्ता स्थापित की थी। इस मुकदमे से अन्तर्राष्ट्रीय कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न जुड़े थे, मसलन क्या एक बादशाह पर मुकदमा चलाया जा सकता है और क्या ऐसा मुकदमा न्यायसम्मत है? इसी तरह 1945 में लाल किले

में ही आजाद हिंद फौज (आई.एन.ए.) नामक एक असाधारण मुकदमा चलाया गया।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में 'भारत की दीवानी या फौजी अदालत में ऐसा कोई दूसरा मुकदमा नहीं है, जो राष्ट्रीय महत्व के आधारभूत मुद्दों से इतना जुड़ा हो और जिसने जनता का इतना ध्यान आकृष्ट किया हो। इससे जुड़े वैधानिक मुद्दे तो महत्वपूर्ण थे ही, क्योंकि वे अन्तर्राष्ट्रीय कानून जैसी अनिश्चित और लचीली अवधारणा से संबन्धित प्रश्न उठाते थे, लेकिन कानून के अलावा उसमें कुछ और भी था, जो कहीं ज्यादा गम्भीर और जरूरी था, जो भारतीय जनमानस के अवचेतन को झकझोरता था। आजाद हिंद फौज भारत के स्वाधीनता संघर्ष का प्रतीक बन गयी थी। बाकी सब सवाल गौण हो गये थे, यहां तक कि, मृत्युदण्ड के अभियोग से अभिशप्त तीनों व्यक्तियों के व्यक्तित्व भारत के उस विस्तृत फलक पर धुंधला गये थे। मुकदमे ने इंग्लैण्ड बनाम भारत के पुराने संघर्ष को एक नाटकीय और मूर्त रूप प्रदान किया था। वास्तविकता में वह कानून या न्यायिक वाक्पटुता मौजूद थी, बल्कि वह भारतीय जनता के संकल्प और भारतीय शासकों के इरादों के बीच शक्ति–संघर्ष का मुकदमा बन गया था और इस मुकाबले में जीत आखिरकार भारतीय जनता की संकल्पशक्ति की हुई थी।''[1]

सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिंद फौज की स्थापना के इतिहास में जाना यहां अपेक्षित नहीं है, क्योंकि उसके ऐतिहासिक तथ्य सुपरिचित हैं।

1/14 पंजाब रेजिमेंट के कैप्टन शाह नवाज खान, लफ्टिनेंट गुरबक्श सिंह ढिल्लों और 2/10 बलूच रेजिमेंट के कैप्टन प्रेमकुमार सहगल ऐसे तीन अफसर थे, जो 1943–45 के दौरान सिंगापुर (शोनन) में सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में प्रोविजनल गवर्नमेंट आफ इंडिया (आजाद हिंद की अंतरिम सरकार) द्वारा बनाई गई आजाद हिंद फौज में भरती हुये थे। मित्र देशों की सेना द्वारा मलाया और वर्मा पर दोबारा आधिपत्य स्थापित कर लेने के बाद इन अफसरों को युद्धबन्दियों के रूप में गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली के लाल किले में लगायी गयी फौजी अदालत में उन पर मुकदमा चलाया गया। तीनों अफसरों पर भारत में

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द – आजादी के मुकदमे, पृ०सं० 133

महामहिम सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने का अभियोग लगाया गया था। लेफ्टिनेंट ढिल्लों पर 6 मार्च 1945 को या आसपास हरि सिंह, दुली चंद, दरयाव सिंह और धरम सिंह की हत्या करने का आरोप था और बाकी दोनों पर हत्या के लिये उकसाने का। मुकदमा 5 नवम्बर,1945 को शुरू हुआ और 31 दिसम्बर,1945 तक चला।

थोड़े–थोड़े दिनों के लिये मुकदमा दो महीनों से भी ज्यादा समय तक चला, जिस बीच अभियोग पक्ष ने प्रमाणों के तौर पर विशालकाय दस्तावेज प्रस्तुत किये और अभियुक्तों के खिलाफ लगाये गये गम्भीर अभियोगों के प्रमाण स्वरूप कई गवाह पेश किये।

लगाये गये अभियोग थे:[1]

"पहला अभियोगः अभियुक्त नं. आई.सी.–58, 1/14 रेजिमेंट के कैप्टन शाह नवाज खान, अभियुक्त नं. आई.सी.–226, 2/10 बलूच रेजिमेंट के कैप्टन पी. के. सहगल, अभियुक्त नं. आई.सी.336, 1/14 पंजाब रेजिमेंट के लेफ्टिनेंट गुरबक्श सिंह ढिल्लो ने, जो सी.एस.डी.आई.सी.(1)दिल्ली से सम्बद्ध और कमीशंड अफसर हैं, मलाया, रंगून, पोपा के नजदीक, क्याकपाडोंग के आस पास, वर्मा में अन्य स्थानों पर हत्यायें कीं, और सितम्बर 1942 से 26 अप्रैल 1945 के दौरान भारत के महामहिम सम्राट के खिलाफ युद्ध किया।

"दूसरा अभियोगः इंडियन आर्मी एक्ट (भारतीय सेना अधिनियम) की धारा 41 (केवल उक्त लेफ्टिनेंट गुरबक्श सिंह ढिल्लो के खिलाफ) कि उन्होंने (लेफ्टिनेंट ढिल्लो ने) 6 मार्च 1945 को या उसके लगभग, वर्मा में पोपा हिल में या उसके आसपास हरि सिंह की हत्या कर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के खिलाफ अपराध किया।

"तीसरा अभियोगः इंडियन आर्मी एक्ट, धारा 41 (केवल उक्त कैप्टन पी.के. सहगल के खिलाफ)। कि उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 109 के खिलाफ दीवानी अपराध किया, क्योंकि उन्होंने 6 मार्च 1915 को या उसके लगभग, पोपा हिल या उसके आसपास दूसरे अभियोग में उल्लिखित हरि सिंह की हत्या के लिये उकसाया और इसके

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द – आजादी के मुकदमे, पृ0सं0 134, 135, 136

परिणामस्वरूप उक्त अपराध किया गया।

"चौथा अभियोग: इंडियन आर्मी एक्ट, धारा 41 (केवल उक्त लेफ्टिनेंट गुरबक्श सिंह ढिल्लों के खिलाफ)। कि उन्होंने भारतीय दंड संहित की धारा 302 के खिलाफ कि 6 मार्च 1945 को या उसके लगभग, वर्मा में पोपा हिल में या उसके आपसपास दुलीचंद की हत्या करने का अपराध किया।

"पांचवां अभियोग: इंडियन आर्मी एक्ट, धारा 41 (केवल उक्त कैप्टन पी.के. सहगल के खिलाफ)। कि उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 109 के खिलाफ, ऐसा अपराध करने को उकसाया, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध है, अर्थात उन्होंने 6 मार्च 1945 को या उसके लगभग, पोपा हिल में या उसके आसपास, चौथे अभियोग में उल्लिखित दुली चंद की हत्या के लिये उकसाया और जिसके परिणामस्वरूप यह अपराध किया गया।

"छठा अभियोग: इंडियन आर्मी एक्ट, धारा 41 (केवल उक्त लेफ्टिनेंट गुरबक्श सिंह ढिल्लो के खिलाफ)। कि उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के खिलाफ, 6 मार्च 1945 को या उसके लगभग, वर्मा में पोपा हिल में या उसके आसपास, दरयाब सिंह की हत्या करने का अपराध किया।

"सातवां अभियोग: इंडियन आर्मी एक्ट, धारा 41 (केवल उक्त कैप्टन पी.के. सहगल के खिलाफ)। कि उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 109 के खिलाफ, ऐसा अपराध करने को उकसाया, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध है, अर्थात उन्होंने 6 मार्च, 1945 को, या उसके लगभग, पोपा हिल में, या उसके आसपास छठे अभियोग में उल्लिखित दरयाब सिंह की हत्या के लिये उकसाया और जिसके परिणामस्वरूप यह अपराध किया गया।

"आठवां अभियोग: इंडियन आर्मी एक्ट, धारा 41 (केवल उक्त लेफ्टिनेंट गुरबक्श सिंह ढिल्लों के खिलाफ)। कि उन्होंने भारतीय दंड संहिता 302 के खिलाफ

6 मार्च 1945 को या उसके लगभग, वर्मा में पोपा हिल में या उसके आसपास धरम सिंह की हत्या करने का अपराध किया।

"नवां अभियोग: इंडियन आर्मी एक्ट, धारा 41 (केवल उक्त कैप्टन पी.के. सहगल के खिलाफ)। कि उन्होंने भारतीय दंड संहित की धारा 109 के खिलाफ ऐसा अपराध करने को उकसाया जो भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दंडनीय है अर्थात् उन्होंने 6 मार्च 1945 को या उसके लगभग, पोपा हिल में या उसके आसपास, आठवें अभियोग में उल्लिखित धरम सिंह की हत्या के लिये उकसाया और जिसके परिणामस्वरूप यह अपराध किया गया।

"दसवां अभियोग: इंडियन आर्मी एक्ट, धारा 41 (केवल उक्त कैप्टन शाह नवाज खान के खिलाफ)। कि उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 109 के खिलाफ ऐसा अपराध करने को उकसाया जो भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दंडनीय है, अर्थात उन्होंने 29 मार्च 1945 को या उसके लगभग, बर्मा में पोपा हिल में या उसके आसपास, खाजिन शाह और आया सिंह को एच.के.एस.आर.ए. के मुहम्मद हुसैन की हत्या करने को उकसाया और जिसके परिणामस्वरूप यह अपराध किया गया।"

तीनों ही अभियुक्तों ने अपना दोष अस्वीकार किया। अभियोग पक्ष द्वारा सर एन.पी. इंजीनियर ने मुकदमे को आरम्भ करते हुये कहा कि अभियुक्त भारतीय सेना के कमिशंड अफसर थे और महामहिम सम्राट के प्रति प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण आर्मी एक्ट के अधीन थे। आजाद हिंद फौज की स्थापना का इतिहास बताते हुये उन्होंने कहा कि सुभाषचंद्र बोस जनवरी 1942 में भारत से काबुल और वहां से मास्को के रास्ते जर्मनी चले गये थे। 15 फरवरी 1942 को जापान द्वारा सिंगापुर जीत लेने के बाद कर्नल हुंड ने ब्रिटिश सरकार की तरफ से लगभग 40,000 भारतीय युद्धबंदियों को जापान के प्रतिनिधि को सौंप दिया था। इससे विदेश में बसे भारतीयों के शक्ति–संघर्ष को बल मिला। उन्होंने इंडिपेंडेंस लीग (आजाद हिंद संघ) की स्थापना की जिसका अधिवेशन जून 1942 को बैंकाक में हुआ, जहां आजाद हिंद फौज बनाने

का प्रस्ताव पारित किया गया और सुभाषचंद्र बोस को देश के उस भू भाग में आमंत्रित करने का निर्णय भी लिया गया। सितम्बर 1942 में कैप्टन मोहन सिंह के नेतृत्व में आजाद हिंद फौज की स्थापना की गयी, जिसमें भारतीय युद्धबंदियों में से अनेक सैनिकों को भरती किया गया। कैप्टन मोहन सिंह अत्यन्त स्वतंत्र विचारों के थे, अतः उनके जापानियों से कुछ मतभेद हो गये। नवम्बर 1942 में फौज भंग कर दी गयी और कैप्टन मोहन सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। जापान में प्रधानमंत्री तोजो से मिलने के बाद सुभाषचंद्र बोस 2 जुलाई 1943 को सिंगापुर पहुंचे और 21 अक्टूबर 1943 को उन्होंने इंडियन इंडिपेंडेंस लीग का नेतृत्व संभाला। सिंगापुर में आजाद हिंद की अंतरिम सरकार बनाई गयी। जापान, जर्मनी, थाईलैंड और मनचोकिया ने उसे मान्यता दी। जापान ने अंडमान और निकोबार द्वीप समूह को इस अंतरिम सरकार को सौंप देना स्वीकार किया और इस तरह आजाद हिंद फौज का नाम विश्व भर में फैल गया।

अभियोगों के समर्थन में अभियोग पक्ष की तरफ से 30 गवाहों को पेश किया गया। बचाव पक्ष के वकील जवाहरलाल नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू, श्री आसफ अली द्वारा उनसे जिरह करने के बाद तीनों अभियुक्तों के बयान दर्ज किये गये। कैप्टन शाह नवाज खान ने उन पर मुकदमा चलाने के न्यायालय के अधिकार को चुनौती दी। अपने बयान में उन्होंने स्पष्ट किया कि वह आजाद हिंद फौज में कब और क्यों भरती हुये। उन्होंने आजाद हिंद फौज की स्थापना की मुख्य घटनाओं तथा उसमें भरती होने के कारणों का उल्लेख किया। उन्होंने कहा— संक्षेप में, मेरे सामने सम्राट या देश में से किसी एक को चुनने का प्रश्न था। मैने अपने देश के प्रति निष्ठावान होने का फैसला किया और नेताजी को वचन दिया कि मैं देश की खातिर अपनी जान भी दे दूंगा। अंततः महोदय मैं आपको बता देना चाहता हूं कि किसी भाड़े की सेना या कठपुतली सेना ने आजाद हिंद फौज जैसे कष्ट नहीं झेले होंगे। हमने सिर्फ हिन्दुस्तान की आजादी के लिये युद्ध किया। मैं इस युद्ध में भाग लेने से इंकार नहीं करता, लेकिन मैने आजाद हिंद की अंतरिम सरकार की उन नियमित युद्धरत सेनाओं के सदस्य के तौर पर ऐसा किया, जिन्होंने अपनी मातृभूमि की आजादी के लिये युद्ध के सभ्य नियमों के अनुसार ही लड़ाई छेड़ी थी। इसलिये, मैने ऐसा कोई अपराध नहीं किया, जिसके लिये मुझ पर फौजी

अदालत में या दूसरी किसी अदालत में, मुकदमा चलाया जा सके।'' कैप्टन पी.के. सहगल ने भी अदालत के न्यायाधिकार को चुनौती देते हुये कहा– ''मैने ऐसा कोई अपराध नहीं किया है, जैसा अभियोग मुझ पर लगाया गया है। इस फौजी अदालत में मुझ पर चलाया गया मुकदमा भी गैरकानूनी है। मैं जापानी दुर्व्यवहार से डरकर या किसी स्वार्थ हेतु या दूसरे किसी कारण से आजाद हिंद फौज में भरती नहीं हुआ था। सितम्बर 1943 में आजाद हिंद फौज के कैप्टन के रूप में मुझे अस्सी डालर प्रतिमाह मिलते थे, जब कि इस फौज से दूर रहने पर मुझे 120 डालर प्रतिमाह मिले होते। मैं सिर्फ देशभक्ति के उद्देश्य से आजाद हिंद फौज में भरती हुआ। मैं इसलिये उसमें भरती हुआ, क्योंकि मैं अपनी मातृभूमि को आजाद कराना चाहता था और उसके लिये अपना खून बहाने को तैयार था। मैंने इस युद्ध में आजाद हिंद की अंतरिम सरकार की उन व्यवस्थित और नियमित युद्धरत सेनाओं के सदस्य के तौर पर भाग लिया, जिन्होंने विदेशी शासन से अपनी मातृभूमि को आजाद कराने के लिये, युद्ध के सभ्य नियमों के अनुसार ही लड़ाई छेड़ी थी। मैं दावा करता हूं कि ऐसा करने से मैने कोई अपराध नहीं किया, बल्कि इसके विपरीत मैने अपनी पूरी सामर्थ्यानुसार अपने देश की सेवा की है।''

लेफ्टिनेंट जी.एस. ढिल्लों ने भी उन पर मुकदमा चला सकने के अदालत के न्यायाधिकार को चुनौती दी। उन्होंने भी आजाद हिंद फौज में शामिल होने के कारणों की चर्चा की। उन्होंने कहा– ''मैने जो कुछ भी किया वह आजाद हिंद की अंतरिम सरकार के नियमित युद्धरत सेना के सदस्य के तौर पर किया। अतः इस सेना के सदस्य के रूप में अपना कर्तव्य निभाने के लिये मुझ पर इंडियन आर्मी एक्ट या भारत के किसी आपराधिक कानून के तहत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। इतना ही नहीं, मुझे परामर्श दिया गया है कि कानून की नजर में फौजी अदालत द्वारा मुझ पर मुकदमा चलाना गैरकानूनी है।''

हालांकि अदालत में जवाहरलाल नेहरू सहित 16 वकील मौजूद थे, बचाव का दायित्व भूलाभाई देसाई ने लिया, जिनकी प्रतिभा जिरह के दौरान उभर कर आयी। उन्होंने कहा– ''प्रस्ताव यह है कि इस तथ्य को देखते हुये कि आजाद हिंद की अंतरिम

सरकार और ब्रिटिश सरकार के बीच युद्ध जारी था, उस युद्ध के दौरान किये गये क्रियाकलाप वैसा महत्व नहीं रखते, जैसा कि एक व्यक्ति के मामले में साम्राज्य दावा करता है, या कर सकता है।[1]

"अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत यह स्वीकृत है कि किसी विदेशी सत्ता के अधीन व्यक्ति अपनी आजादी के लिये एकजुट हों या एक संगठित सेना बनायें, भले ही इस लड़ाई में वे कामयाब हों या नहीं। युद्ध के जारी रहने की इस प्रक्रिया में संगठित सेना के व्यक्तिगत सदस्यों को युद्ध में अपने क्रियाकलापों के लिये निरापदता प्राप्त है, उन युद्धजनित अपराधों को छोड़कर, जिनके लिये पूरे विश्व में अब दंड का विधान है। इस तथ्य को देखते हुये मैं निवेदन करता हूं कि आपके सामने उपस्थित अभियुक्तों को निरपराध घोषित किया जाना चाहिये, क्योंकि वे अपने क्रियाकलापों के लिये कोई नागरिक या आपराधिक उत्तरदायित्व नहीं रखते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कानून की पुस्तक की भाषा के अनुसार इसका दायित्व उस राज्य पर है, जिसके निर्देशों के तहत उन्होंने युद्ध किया और युद्ध स्थिति में ऐसा उत्तरदायित्व अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत अस्तित्व नहीं रखता। निस्संदेह अगर विद्रोह सफल होता है, तो फिर वह एक नयी सरकार बनाता है और यही उसका अंत है और अंतर्राष्ट्रीय कानून मेरे मुवक्किलों के पक्ष में प्रत्युत्तर देता है।" भूलाभाई देसाई सीधे मूल मुद्दे तक पहुंचे (विद्रोह करने के प्रजा के अधिकार तक) जब उन्होंने कहा– "एक भारतीय अपने आपको जिस स्थिति में पाता है, उसे देखते हुये सवाल यह उठता है कि किन हालात में और किस सीमा तक राजभक्ति का प्रश्न उठाना जायज है क्योंकि अगर राज्य को सम्राट से विलग करके देखें, तो यह निर्णय करना किसी भी इंसान के लिये बिलकुल अलग ही मुद्दा होगा और इसलिये मैं 17 फरवरी की घटनाओं पर अपना तर्क आधारित करना चाहूंगा।

'ऐसे किसी मामले में एक भारतीय की स्थिति काफी मुश्किल है और मैं अदालत के सामने इसका सही समाधान रखना चाहूंगा। जहां राजा और देश समान हों, वहां विकल्प का प्रश्न ही नहीं उठता। अगर अपने राजा के विरुद्ध और अपने देश के हितों

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द – आजादी के मुकदमे, पृ0सं0 137, 138

के खिलाफ युद्ध किया जाय, तो यह प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन अगर यह स्वाधीनता की लड़ाई हो, तो यह प्रश्न जरूर उठता है। मैं यह दिखाने के लिये कुछ अनुच्छेद पढ़ना चाहूंगा कि मानवीय अधिकारों को स्वीकृति देने के मामले में विश्व कितना आगे बढ़ गया है। अगर अपने देश को स्वाधीन कराने के लिये बाकायदा युद्ध किया जा रहा हो, तो राजभक्ति का सवाल ही क्यों उठाया जाये? अपने देश को स्वाधीन कराने के लिये युद्ध करते वक्त यह कैसे कहा जा सकता है कि आपकी किसी और के प्रति स्वामिभक्ति भी है जो आपको यह युद्ध करने से रोकती है। शर्त बस इतनी सी है कि आपने अपनी आत्मा ही बेच न दी हो और अगर ऐसा है, तो इसका मतलब अनन्त दासता के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।" उन्होंने आगे कहा कि आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय कानून ने पराधीन देशों तथा जातियों के अपनी स्वाधीनता के लिये संघर्ष करने और एकजुट होने को मान्यता दी है। इसलिये ऐसी संगठित सेना तथा उसके सदस्य अपने देश की स्वाधीनता के लिये किये गये युद्ध के लिये किसी म्युनिसिपल अदालत के सामने जवाबदेह नहीं है। सरकारी अभियोक्ता ने आज़ाद हिंद की अंतरिम सरकार की स्थापना, उसके द्वारा सशस्त्र सेना बनाने और अंग्रेजों के खिलाफ इस सेना को लड़ाई के मैदान में उतारने के प्रमाण स्वरूप अनेक साक्ष्य प्रस्तुत किये थे। भूलाभाई देसाई ने इन्हीं तथ्यों के आधार पर यह स्थापित करने का प्रयास किया कि राज्य का दर्जा प्राप्त ऐसी सरकार की संगठित सेना की कार्यवाही के दौरान किये गये क्रियाकलापों पर अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के तहत सवाल नहीं उठाया जा सकता, जिसे जापानी सरकार और दूसरे राज्यों द्वारा प्रदेश दिये गये हों, जिसे एक अन्य राज्य का पूर्णाधिकार प्राप्त हो और जिसने ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध औपचारिक रूप से युद्ध छेड़ने की घोषणा की हो।

भूलाभाई देसाई ने यह भी तर्क दिया कि युद्ध का अस्तित्व पूर्णतः तथ्य पर आधारित एक प्रश्न है। अगर स्वाधीनता संघर्ष के दौरान पराधीन जनता इस स्तर पर पहुंच जाती है, कि वह एक संगठित सेना का रूप ले ले, तो युद्ध के स्वीकृत नियमों के अनुसार उस सेना को वे सभी अधिकार, रियायतें और निरापदतायें मिलनी चाहिये, जो एक युद्धरत देश को मिलती हैं। युद्ध स्थिति में युद्ध के दौरान किये गये सभी क्रियाकलाप प्रतिरक्षित

होते हैं।

आजाद हिंद फौज और उसके अफसरों की राजा के प्रति और आजाद हिंद फौज से जुड़े देश के प्रति स्वामिभक्ति के सवाल के सम्बन्ध में एक और तर्क भी दिया गया। कहा गया कि आजाद हिंद फौज का उद्देश्य अपने देश को आजाद कराना था, अपने देश की आजादी के अतिरिक्त उसका कोई और उद्देश्य नहीं था। इसलिये सामान्यतः तथाकथित रूप से राजा के खिलाफ लड़ने वाले ये सैनिक वास्तव में अपने देश की स्वाधीनता के लिये लड़ रहे थे और राजा के प्रति कोई स्वामिभक्ति रखने को बाध्य नहीं थे।

हत्या और यंत्रणा के अभियोग के हर मामले में भूलाभाई देसाई ने अभियोग पक्ष द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का उत्कृष्ट विश्लेषण किया। उन्होंने दावा किया कि ये प्रमाण इस मुकदमे में बिल्कुल अप्रासंगिक हैं क्योंकि जिस आधार पर प्रमाण उपस्थिति किये गये हैं, वह आधार ही अस्तित्व नहीं रखता। उन्होंने कहा कि हत्या के अभियोग से संबंधित प्रमाण इसलिये खारिज हो जाते हैं, क्योंकि वे हत्याएं सेना की कार्यवाही का अंग थीं और फौजी अदालत द्वारा उन लोगों को मृत्युदंड दिया जाना पूर्णतः न्यायसम्मत था। उन्होंने आगे कहा कि वह एक सुनियोजित सरकार थी और इस सरकार के प्रति निष्ठा रखने वाले अनेकों भारतीय सुदूर पूर्व में विद्यमान थे और इस सरकार और उसके राज्य को मान्यता प्राप्त थी। इस सरकार द्वारा युद्ध की बाकायदा घोषणा की गयी और आजाद हिंद फौज ने यह युद्ध लड़ा था।

अदालत की सुविधा के लिये जज एडवोकेट ने निष्पक्ष ढंग से पूरे मुकदमे अर्थात अभियोग और बचाव, दोनों पक्षों के तर्कों का सार प्रस्तुत किया। दावा किया गया था कि सभी अभियोग साबित हो चुके हैं और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के युद्ध सम्बन्धी नियम उन अफसरों के सम्बन्ध में लागू नहीं होते जो भारतीय सेना के अफसर थे और राजा के प्रति निष्ठावान थे। न्यायाधीश एडवोकेट के समाहार द्वारा कई कानूनी मुद्दे उभर कर आये।[1]

अभियुक्तों पर इंडियन आर्मी एक्ट की धारा 41 के तहत आरोप लगाया गया था। बचाव पक्ष ने निम्न तथ्यों को अंतिम रूप से साबित किया थाः

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द – आजादी के मुकदमे, पृ०सं० 140

(1) कि आजाद हिंद फौज की अंतरिम सरकार औपचारिक रूप से स्थापित और उद्‌घोषित की गयी थी

(2) कि यह एक सुनियोजित अथवा संगठित सरकार थी;

(3) कि इस सरकार को ध्रुवीय शक्ति ने मान्यता प्रदान की थी। यह मान्यता इस बात का प्रमाण है कि 'आजाद हिंद की सरकार' को राज्य का दर्जा प्राप्त था;

(4) कि इस राज्य के पास एक संगठित सेना थी, जिसमें नियमित रूप में भारतीय अफसरों की नियुक्ति की गयी थी;

(5) कि आजाद हिंद फौज की स्थापना का मुख्य उद्‌देश्य भारत को आजाद कराना और इसके साथ बर्मा और मलाया के भारतीय निवासियों को युद्ध के दौरान खासतौर पर मुक्त कराना था;

(6) कि इस नये भारतीय राज्य ने अन्य किसी देश की भांति प्रदेश अधिगृहीत किया था; और अंततः,

(7) कि इस राज्य के पास युद्ध लड़ने के लिये पर्याप्त साधन मौजूद थे। इन तथ्यों के आधार पर बचाव पक्ष ने यह दावा किया था कि उन स्थितियों को देखते हुये, जिनके तहत यह अंतरिम सरकार बनायी गयी थी और कार्यरत थी, उसे अपने देश की आजादी के लिये युद्ध करने का अधिकार था, जो उसने किया। अगर ऐसी सरकार को युद्ध करने का अधिकार है, एक ऐसा अधिकार जो सभी देशों को मान्य और स्वीकार्य है, तो अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत दो स्वाधीन देश या दो राज्य एक दूसरे पर युद्ध छेड़ सकते हैं और इस युद्ध की कार्यवाही से सम्बन्धित क्रियाकलाप करने वाले व्यक्ति, युद्ध अपराधियों को छोड़कर, म्युनिसिपल कानून के घेरे के अन्दर नहीं आते।[1]

बचाव पक्ष ने तर्क दिया था कि आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय कानून ने पराधीन देशों—जातियों के एकजुट होकर, संगठित सेना बनाकर अपनी स्वाधीनता के लिये लड़ने के अधिकार को मान्यता दी है। इस संगठित सेना के सदस्य युद्ध में अपने कार्यों के लिये किसी

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द – आजादी के मुकदमे, पृ0सं0 140

म्युनिसिपल अदालत के सामने जवाबदेह नहीं हैं। जहां तक तथ्यों का सवाल था, बचाव पक्ष ने यह भी साबित किया था कि आजाद हिंद फौज एक मान्यता प्राप्त सुनियोजित सरकार की संगठित सेना थी, जिसने अंग्रेजों और अमेरिका पर युद्ध छेड़ने की घोषणा की थी और इस युद्ध के तहत अंग्रेजों से लड़ाई की थी। बचाव पक्ष ने यह भी साबित किया था कि वे कार्य, जो आरोपों का आधार थे, एक ऐसी सरकार की संगठित सेना की कार्यवाही के दौरान किये गये थे, जो राज्य का दर्जा पाने का दावा रखती थी, जो जापानियों द्वारा प्रदत्त प्रदेशों पर अधिकार रखती थी, जो दूसरे देशों द्वारा मान्यता प्राप्त थी, जो अन्य राज्य का पूर्णाधिकार रखती थी और जिसने अमेरिका और अंग्रेजों के खिलाफ बाकायदा युद्ध छेड़ने की घोषणा की थी।

युद्ध स्थिति के कानून के सम्बन्ध में कई रोचक प्रश्नों का विवेचन किया गया था। युद्ध का होना बिलकुल एक तथ्य पर आधारित प्रश्न था। कोई संघर्ष कब युद्ध का रूप ले लेता है, इसका निर्णय दो युद्धरत शक्तियों के आपसी सम्बन्ध से नहीं, बल्कि संघर्ष की पद्धति से निश्चित होता है। अगर विद्रोह के पवित्र कहे जाने वाले अधिकार का इस्तेमाल करते हुये एक राज्य की पर्याप्त जनता हथियार उठा ले और वह संघर्ष जन–आन्दोलन बन जाये, तो उस जनता को युद्धकारी शक्ति कहलाने का अधिकार है। दूसरे शब्दों में, अगर आजादी के लिये संघर्ष करते समय, पराधीन जनता ऐसी स्थिति तक पहुंच जाये, जिसे युद्ध के स्वीकृत नियमानुसार एक संगठित सेना द्वारा छेड़ा गया युद्ध कहा जा सके, तो उस सेना को ऐसे युद्ध में एक युद्धकारी शक्ति के सभी अधिकार, विशेषाधिकार और रियायतें प्राप्त हैं। युद्ध स्थिति की घोषणा युद्ध के दौरान की गयी कार्यवाही के लिये निरापदता प्रदान करती है, अपनी आजादी के लिये पैतृक सत्ता से युद्ध में फिर विद्रोही सफल हों या असफल। अंतर्राष्ट्रीय कानून के नियमानुसार सफल विद्रोह कानूनतः स्थापित सरकार का दर्जा पा जाता है। लेकिन अगर विद्रोह असफल भी हो जाये, तब भी, अगर उनका संघर्ष एक संगठित सेना द्वारा किया गया युद्ध है तो उन्हें युद्धकारी शक्ति कहलाने का अधिकार है।[1]

जहां तक आजाद हिंद फौज में शामिल होने वाले भारतीय

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द – आजादी के मुकदमे, पृ0सं0 141

सेना के अफसरों की राजभक्ति का सवाल था, यह कहा जा सकता था कि उनकी निष्ठा राजा और देश के प्रति थी। अगर इंग्लैण्ड में राजद्रोह का आरोप लगाया जाता, तो वह राजा और देश के खिलाफ कार्य करने का आरोप होता, लेकिन अगर यह आरोप एक पराधीन देश पर लगाया जाये, तो वह बिलकुल ही अलग मुद्दा होगा।

इस मुकदमे की परिस्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय कानून के नियमों को लागू करने के प्रश्न के सम्बन्ध में साम्राज्य की तरफ से कहा गया कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून इस ट्रिब्यूनल के लिये बाध्यकारी न था और ऐसा ट्रिब्यूनल सिर्फ म्युनिसिपल और आंतरिक कानून के नियमों को ही मान्यता दे सकता था, जबकि बचाव पक्ष की दलील के अनुसार 'ला आफ नेशंस' एक अधिनियम के तौर पर उतनी ही बाध्यकारी शक्ति थी, जितना कि अन्य कोई कूनन। इस प्रकार, अपराध बताये गये वे क्रियाकलाप, स्थितियों को देखते हुये म्युनिसिपल कानून के घेरे के बाहर पड़ते थे और 'ला आफ नेशंस' की परिधि के भीतर आते थे।

31 दिसम्बर को जब अदालत पुनः लगी, जज एडवोकेट ने सैनिक अभियोक्ता कर्नल वैश को बुलाकर कार्यवाही की शुरूआत की और उन्हें अभियुक्तों के चरित्र और नौकरी के ब्यौरों के सम्बन्ध में साक्ष्य प्रस्तुत करने को कहा।

कर्नल वैश ने अभियुक्तों से सम्बन्धित दस्तावेज पेश किये। कैप्टन शाह नवाज खान के बारे में दर्ज था कि उनकी आयु 31 वर्ष 11 महीने थी और वह पूरा समय अर्थात 5 साल और एक महीना एक कैप्टन के रूप में कमिशंड अफसर रहे थे। इस मुकदमे को छोड़ दिया जाये तो उनका चरित्र और आचरण काफी अच्छा रहा था। उन्हें न तो कोई सैनिक सम्मान मिले थे और न ही इससे पहले कभी अभिशंसित किया गया था।[1]

लेफ्टिनेंट ढिल्लो 30 साल और 9 महीने के थे। कुल मिलाकर उन्होंने 5 साल और 9 महीने नौकरी की थी, जिसमें से 4 साल और 3 महीने वह लेफ्टिनेंट के पद पर रहे थे। उन्हें न तो कोई सैनिक सम्मान मिले थे, न कभी अभिशंसित किया गया था और उनका चरित्र और आचरण काफी अच्छा था।

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द — आजादी के मुकदमे, पृ०सं० 142

कैप्टन सहगल 28वर्ष 11 महीने के थे और पांच साल तक कैप्टन के रूप में सेवारत रहे थे। उन्हें कोई सैनिक पदक या पुरस्कार नहीं मिले थे। उनका चरित्र और आचरण काफी अच्छा था और उन्हें इससे पहले कभी अभिशंसित नहीं किया गया था।

फौजी अदालत में पास किया गया दंड और आदेश और उसका कमांडर इन चीफ (इस मुकदमे में अभिपुष्टि अधिकारी) द्वारा पुष्टिकरण एक विज्ञप्ति में उद्घोषित किया गया, जो 3 जनवरी 1946 को 'गजट आफ इंडिया एक्स्ट्राआर्डिनेरी' में छपा। विज्ञप्ति में कहा गया था:

"कैप्टन शाह नवाज खान, कैप्टन सहगल और लेफ्टिनेंट ढिल्लो पर, फौजी अदालत में, सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने के आरोप में, मुकदमा चलाया गया था। लेफ्टिनेंट ढिल्लों पर हत्या करने और बाकी दो पर हत्या के लिये उकसाने का भी आरोप था। अदालत इस नतीजे पर पहुंची है कि तीनों अभियुक्त युद्ध छेड़ने के आरोप के सम्बन्ध में दोषी पाये गये हैं, जबकि कैप्टन शाह नवाज खान को हत्या करने के लिये उकसाने का दोषी पाया गया है। लेफ्टिनेंट ढिल्लो को हत्या करने और कैप्टन सहगल को हत्या करने के लिये उकसाने के आरोप के सम्बन्ध में बरी किया जाता है।

"युद्ध छेड़ने के आरोप में अभियुक्तों को दोषी पाये जाने की स्थिति में अदालत अभियुक्तों को आजीवन देश निकाला या मृत्युदंड की सजा देने को बाध्य है; कानून के तहत इससे कम दंड का विधान नहीं है। अदालत तीनों अभियुक्तों को आजीवन देश निकाले, नौकरी से बर्खास्तगी और सारे वेतन और बकाया रकम जब्त करने का दंड सुनाती है।[1]

"फौजी अदालत का कोई भी निष्कर्ष या दंड तब तक पूर्ण नहीं होता, जब कि उसकी पुष्टि न हो। कमांडर इन चीफ, जो कि अभिपुष्टि अधिकारी भी हैं, इस अदालत के निष्कर्षों से संतुष्ट हैं और इन निष्कर्षों को प्रमाणों के अनुसार पाकर इनका पुष्टिकरण करते हैं।"

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द – आजादी के मुकदमे, पृ0सं0 143

"बहरहाल, अभिपुष्टि अधिकारी को सजा को घटाने, बदलने और क्षमा करने का अधिकार है। जैसा कि अखबारों में कहा जा चुका है, भविष्य में भारत सरकार की नीति यह है कि केवल ऐसे व्यक्तियों पर ही, जैसे कि अभियुक्त हैं, मुकदमा चलाया जाये, जिन्होंने महामहिम सम्राट के खिलाफ युद्ध करने के साथ–साथ अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कृत्य किये हों। साथ ही, यह भी घोषित किया गया है कि किसी भी मुकदमे में सजा पर पुनर्विचार करते वक्त अभिपुष्टि अधिकारी इस तथ्य पर ध्यान देगा कि साबित किया गया अपराध सभ्य व्यवहार की किस सीमा तक विरुद्ध जाता है।

"लेफ्टिनेंट ढिल्लों और कैप्टन सहगल को हत्या करने और हत्या करने के लिये उकसाने के आरोपों से मुक्त कर दिया गया है क्योंकि उन पर अन्य कोई क्रूर कृत्य करने का आरोप नहीं है। हालांकि कैप्टन शाह नवाज खान को हत्या करने के लिये उकसाने के लिये दोषी पाया गया है और उसके खिलाफ साबित किये गये दूसरे अपराध काफी सख्त हैं, अभिपुष्टि अधिकारी ने उसके सम्बन्ध में विचार करते वक्त मौजूदा हालात को ध्यान में रखा है।

"कमांडर इन चीफ ने फैसला किया है कि दंड के सम्बन्ध में तीनों अभियुक्तों से एक–सा व्यवहार किया जाये और तीनों के खिलाफ आजीवन देश–निकाले का दंड हटा लिया जाये। बहरहाल, उन्होंने उनकी नौकरी से बर्खास्तगी और सारे वेतन और बकाया जब्त कर लेने के दंड को बरकरार रखा है, क्योंकि राज्य के प्रति अपनी स्वामिभक्ति को दरकिनार कर राज्य के खिलाफ युद्ध छेड़ना हर हालत में एक गम्भीर अपराध है। इस सिद्धान्त का पालन करना वर्तमान अथवा भविष्य में, कानूनतः स्थापित किसी भी सरकार के स्थायित्व के लिये अनिवार्य है।"[1]

इस तरह उस महान आई.एन.ए. मुकदमे का अंत हुआ जिसने पूरे भारत में पूर्ण स्वाधीनता की एक नयी जागृति फैला दी थी। यह कहा जा सकता है कि मुकदमा काफी निष्पक्ष ढंग से चलाया गया था और यह ब्रिटिश राज का उपयुक्त समापन

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द – आजादी के मुकदमे, पृ0सं0 143, 144

साबित हुआ। इसने ब्रिटिश न्याय की निष्पक्षता को भी साबित किया। यह मुकदमा ऐसी जगह चलाया गया था जो सबके लिये सुविधापूर्ण थी। लाल किला सेना का मुख्यालय होने के कारण ब्रिटिश राज के लिये तो सुविधाजनक था ही, वह भारत के हर नेता और वकील के लिये भी उतना ही सुविधापूर्ण था। मुकदमा ऐसे समय में चलाया गया था, जब भारत में अधिकांश लोगों की राय उसके खिलाफ थी। यहां तक कि पश्चिमोत्तर सीमांत प्रदेश के गवर्नर सर जार्ज कनिंघम ने विशेष तौर पर वाइसराय लार्ड वेवल को पत्र लिखकर परामर्श दिया कि कमांडर इन चीफ फौरन इस मुकदमे को वापिस लेने की घोषणा करें, क्योंकि भारतीय जनमत इसके विरुद्ध है। बहरहाल मुकदमा चलाया गया। इस मुकदमे ने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जगाने का अच्छा काम किया। दूसरी तरफ ब्रिटिश साम्राज्य को उसने काफी हानि पहुंचाई। तीनों अफसरों की सजा को वापिस लेकर कमांडर इन चीफ ने स्थिति को बिगड़ने से बचा लिया। अगर प्रबल जनमत के विरुद्ध जाकर इन अफसरों को यह दंड दे दिया गया होता, तो पूरे भारत में उस समय अव्यवस्था फैल गई होती। भारत के प्रमुख ज्यूरिस्ट श्री एम.सी. स्टेलवाड ने आजाद हिंद फौज मुकदमे की प्रस्तावना में उसके प्रभावों और कमियों तथा भूलाभाई देसाई की न्यायिक योग्यताओं की चर्चा करते हुये लिखा है:

"पहला आजाद हिंद फौज मुकदमा ब्रिटिश भारत के इतिहास में सम्भवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुकदमा है। कुछ मायनों में, अवश्य ही वह इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुकदमा है।"[1]

"उसके दो पक्ष थे। वह अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पूर्णतः नवीन और कुछ मायनों में दूरगामी प्रस्तावों पर बहस का अवसर था और वकीलों और कानून में दिलचस्पी रखने वाले अन्य लोगों के लिये चिरस्थायी अभिरुचि का विषय था। आम आदमी के लिये वह एक आकर्षक और प्रेरणादायक कहानी थी— भारत के इतिहास के सबसे प्रसिद्ध महान देशभक्त द्वारा अपने हजारों—लाखों देशवासियों के सहयोग से अपने देश को आजाद कराने के ओजस्वी प्रयास की आकर्षक और प्रेरणादायक कहानी।"

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द — आजादी के मुकदमे, पृ0सं0 144

"यह दुख की बात है कि अंतर्राष्ट्रीय कानून से सम्बन्धित इतने दूरगामी और जटिल न्यायिक प्रश्न एक ऐसे ट्रिब्यूनल के सामने उठाये गये, जिसमें न्याय के विधिवेत्ता मौजूद नहीं थे और मुकदमा ऐसे लोगों की अध्यक्षता में चलाया गया था जो न्याय प्रदान करने के ढंग से काफी अनभिज्ञ थे।" श्री देसाई द्वारा इतने जटिल प्रश्नों के इतने दक्ष संचालन की री स्टेलवाड ने काफी प्रशंसा की। उन्होंने कहा– "यह तथ्य ट्रिब्यूनल के सामने बचाव पक्ष द्वारा दिये गये तर्क की महत्ता और श्रेष्ठता के प्रति हमारी श्रद्धा को बढ़ाता ही है। इस तरह के ट्रिब्यूनल से व्यवहार करना बचाव पक्ष के वकील के लिये और भी मुश्किल काम था। उसे अंतर्राष्ट्रीय कानून के जटिल प्रश्नों की व्याख्या ऐसी सरल भाषा में करनी थी कि उसके सामने बैठे न्यायाधीश–युद्ध के जानकार और सामान्य ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भली–भांति समझ सकें। इस उद्देश्य से श्री देसाई ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और आकर्षक वाकपटुता का इस्तेमाल किया। उनके बचाव–भाषण को पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति एक प्रबुद्ध और महान वकील के समुचित प्रयास से अपरिचित नहीं रह सकता।

भारतीय देशभक्तों पर ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाया गया यह अंतिम मुकदमा था। बहादुरशाह का पहला मुकदमा जहां ब्रिटिश अन्याय का उदाहरण था, वहीं यह अंतिम मुकदमा न्याय और निष्पक्षता का परिचायक था।[1]

---

1. अग्रवाल, बालमुकुन्द – आजादी के मुकदमे, पृ0सं0 145

६. कैविनेट मिशन योजना और नेहरू

1946 की गर्मियों में वह अपने लक्ष्य के इतने करीब था कि उसके बाद की घटनायें बड़ी ही दर्दनाक मालूम होती हैं। 15 मार्च, 1946 को क्लेमेंट (अब अर्ल की उपाधि से विभूषित) एटली ने हाउस आफ कामन्स में यह घोषणा की कि लेबर सरकार ब्रिटेन और हिन्दुस्तान तथा कांग्रेस और मुस्लिम लीग के गतिरोध को खतम करने की सरतोड़ कोशिश के लिये एक कैविनेट मिशन हिन्दुस्तान भेज रही है। लार्ड वेवल के नाम एक निजी तार में मि0 एटली ने यह स्पष्ट किया कि लेबर सरकार वाइसराय को नज़रअन्दाज करना नहीं चाहती लेकिन यह महसूस करती है कि ऐसा दल जो वहीं ''फैंसला कर सके, समझौते की बातचीत को काफी सहारा देगा और हिन्दुस्तानियों के अविश्वास को दूरकर यह साबित कर देगा कि इस बार हम लोग इसे कर गुजरना चाहते हैं। यह ध्यान रहे कि चर्चिल की सरकार ने 1942 में जो क्रिप्स मिशन भेजा था उसे ये अधिकार नहीं थे। उसने वाइसराय को दिल खोलकर मदद करने के लिये लिखा था। इस पर वेवल की आलोचना थी– 'वह क्या समझते थे कि मैं इसका विरोध करूँगा? आखिर मैं किस लक्ष्य की पूर्ति के लिये काम कर रहा हूँ।'[1]

कैविनेट मिशन के तीन सदस्य थे– सर स्टैफोर्ड क्रिप्स, भारत के सेक्रटरी लार्ड पेथिक लारेंस और मि0 ए0बी0 अलेक्जेण्डर। क्रिप्स राजनीतिक सिद्धान्तों का पंडित था, बहुत ही तेज दिमाग का आदमी जिसने हिन्दुस्तान की समस्या का भावनात्मक पहलू के अलावा बाकी सब पहलुओं से अध्ययन किया था। कुछ लोगों की तो राय थी कि सिर्फ इसी एक कारण से वह हिन्दुस्तान की समस्या को कभी ठीक–ठीक नहीं समझ पायेगा। वह योजना तैयार करने में विशेष रूप से पारंगत था। सभी बातों को उसने ध्यान में रखा– धार्मिक विरोध, क्षेत्रीय स्पर्धा, राजनीतिक दृष्टिकोण, जातीय मान्यतायें आदि। लेकिन ऐसे लोग भी थे जो यह महसूस करते थे कि वह मानवीय पहलू का महत्व हमेशा भूल जाया करता था। उसे हमेशा निराशा होती कि उसकी जो योजनायें कागज पर एकदम सही मालूम होती थीं, अमल में कभी

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 9

कारगर नहीं साबित होती थीं। लेकिन इस बार उसके साथ एक ऐसा आदमी था जिसे हिन्दू–मुसलमान, जो भी मिला, पसन्द करता था। दोनों ओर के लोगों को लार्ड पेथिक लारेंस न सिर्फ अच्छा लगता था बल्कि प्यारा भी लगता था क्योंकि आईने की तरह उसका दिल साफ था, वह हिन्दुस्तान को प्यार करता था, हिन्दुस्तानियों के साथ मिलना–जुलना उसे अच्छा लगता था और हिन्दुस्तान की आजादी के लिये हर तरह से मदद करने को वह तैयार था। कैविनेट मिशन मार्च के अन्त में दिल्ली आया जब यहाँ की गर्मी से धरती, चमड़ी और दिमाग झुलसना शुरू हो जाता है। बूढ़ा होने के बावजूद पेथिक लारेंस ने कभी शिकायत नहीं की। 115° के तापमान में वह पसीने से नहाता रहा और एक बार एक अहम कान्फ्रेंस में गर्मी के मारे वह बेहोश भी हो गया था। थोड़ी देर विश्राम कर वह लौट आया और अपनी 'कमजोरी' के लिये उसने माफी माँगी।

कैविनेट मिशन के आते ही बातचीत शुरू हुई। ए०वी० एलेक्जेण्डर सिर्फ सह–यात्री ही रहा। उसका कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं रहा। गम्भीरता से काम करने वाले दो सदस्य थे– क्रिप्स और पेथिक लारेंस और यह जोड़ा तीक्ष्ण बुद्धि और विशाल दृष्टिकोण का अच्छा समन्वय था। पेथिक लारेंस की मानवीयता ने क्रिप्स के सूखे तर्कों को हिन्दुस्तानी नेताओं के लिये खुशनुमा न भी बनाया हो पर तरल तो बना ही दिया। कैविनेट मिशन का ध्येय था कि हिन्दुस्तानी नेताओं से बातचीत कर उन्हें आजादी की अपनी योजना बनाने को तैयार किया जाय। कुछ ही दिनों में उन तीनों के लिये साफ हो गया कि इस तरह सिर्फ एक गतिरोध ही तैयार हो सकता है। जिन्ना की सूखी, उद्‌दण्ड और जिद्‌द भरी माँग थी पाकिस्तान या कुछ नहीं। जिन्ना से मुकाबला होते ही वे निराशा से भर गये। जिन्ना हमेशा बढ़िया सिले हुये कपड़ों में आता, उसका दुबला–पतला ढाँचा हमेशा तना हुआ, आँखें साफ और चमकीली और जब दिन की गर्मी में सभी पसीने से तर तो भी उसकी चमड़ी सूखी हुई। एलेक्जेण्डर ने एक बार कहा था, 'जहां तक मैं समझता हूँ कि वह अकेला आदमी है जो अपना कूलर साथ लिये फिरता है।' दोस्ती की जैसी भी अदायें किसी ने दिखाई हों, एक क्षण के लिये भी जिन्ना का तनाव दूर नहीं

1
हुआ।

उनको सबसे ज्यादा संतोष कांग्रेस के सभापति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद से मिला। उनकी ही तरह वह भी गर्मी से उतना ही परेशान होता था, बात सिर्फ इतनी नहीं थी। वह मुसलमान था। आज़ादी मिलने पर हिन्दू बहुमत उन्हें कुचल देगा, हिन्दू राज में सताये गये अल्पसंख्यक बनकर वे रह जायेंगे। 90,000,000 मुसलमानों के इस भय से उसे सहानुभूति थी। लेकिन वह यह कभी नहीं मानता था कि जिन्ना की पाकिस्तान की योजना इस समस्या का समाधान थी। कांग्रेस पार्टी के अपने हिन्दू साथियों के साथ सलाह—मशविरा कर उसने अपनी राय कायम की थी कि किस तरह साम्प्रदायिकता खतम की जा सकती और हिन्दुस्तान की एकता बचाई जा सकती है। उसने कई बार कैविनेट मिशन से बातचीत की ओर 15 अप्रैल,1946 को एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसे यहाँ उद्धृत करना जरूरी मालूम होता है क्योंकि आज भारत में लोग इसे सुविधापूर्वक भूल जाते हैं।

मौलाना आजाद ने लिखा था—

"मुस्लिम लीग की पाकिस्तान वाली योजना पर हर पहलू से मैने सोचा—विचारा है। हिन्दुस्तानी की हैसियत से देश की पूरी इकाई पर भविष्य में क्या असर पड़ेगा, इस पर गौर किया है। मुसलमान की हैसियत से, हिन्दुस्तान के मुसलमानों की किस्मत पर इसका क्या असर पड़ सकता है, इसका अन्दाजा लगाया है। इस योजना के सभी पहलुओं पर गौर करने पर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यह न सिर्फ पूरे हिन्दुस्तान के लिये नुकसानदेह है बल्कि मुसलमानों के लिये खासतौर पर है और दरअसल इससे तो जो मसले सुलझते हैं उससे कहीं ज्यादा पैदा होते हैं। मुझे यह कहना है कि 'पाकिस्तान' नाम ही मेरी तबियत के खिलाफ है। इसका आशय है कि दुनिया का कुछ हिस्सा पाक है और बाकी नापाक। इस तरह दुनिया को पाक और नापाक हिस्सों में बाँटना गैर—इस्लामी है, इस्लाम की रूह को गलत साबित करना है। इस्लाम में ऐसे बँटवारे की कोई गुंजाइश नहीं क्योंकि हजरत मुहम्मद ने कहा है— 'खुदा ने मेरे लिये सारी दुनिया ही मस्जिद बनाई है।' इसके अलावा पाकिस्तान की योजना मुझे

---

1. मोसले, लिओनार्ड — भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 10

पराजय का प्रतीक मालूम होती है। जो यहूदियों की मांग के नमूने पर तैयार की गई है। यह तो मान लेना है कि पूरे हिन्दुस्तान की इकाई में मुसलमान अपने पैरों पर टिक नहीं सकेंगे इसलिये एक सुरक्षित कोने में सिमटकर उन्हें तसल्ली मिल जायेगी। यहूदियों की एक राष्ट्रीय आवास की मांग के साथ सहानुभूति रखी जा सकती है क्योंकि वे सारी दुनिया में बिखरे पड़े हैं और कहीं के भी अनुशासन में वे अहम पार्ट अदा नहीं कर सकते। लेकिन हिन्दुस्तान के मुसलमानों की हालत तो बिल्कुल दूसरी है। उनकी संख्या लगभग नौ करोड़ है और हिन्दुस्तान की जिन्दगी में उनकी तादाद और उनकी खूबियाँ इतनी अहम हैं कि अनुशासन और नीति के सभी सवालों पर बखूबी और पुरअसर तरीके से अपना प्रभाव डाल सकते हैं। कुदरत ने कुछ इलाकों में उनको केन्द्रित कर उनकी मदद भी की है।[1]

ऐसी हालत में पाकिस्तान की माँग में कोई ताकत नहीं रह जाती। मुसलमान की हैसियत से कम से कम मैं तो पूरे मुल्क को अपना समझने का, इसकी सियासी और माली जिन्दगी के फैसले में हिस्सा लेने का हक नहीं छोड़ सकता। मुझे तो, जो हमारा बपौती हक है, उसे छोड़ना और उसके एक टुकड़े से तसल्ली करना कायरता का पक्का सबूत मालूम होता है।' इसके बदले आजाद ने एक फार्मूला तैयार किया था जिसे कांग्रेस की वर्किंग कमेटी से मनवा भी लिया था। इसमें पाकिस्तान की योजना की सारी अच्छी बातें तो थीं लेकिन उसकी खराबियाँ नहीं थीं। आबादी की अदला–बदली को खासकर बचाया गया था। आज़ाद के बहुत से हिन्दू साथियों ने तो नहीं लेकिन आजाद ने महसूस किया था कि मुसलमानों का एक बड़ा डर यह था कि अगर पूरे हिन्दुस्तान की इकाई को आज़ादी मिली तो केन्द्र का हिन्दू–प्रधान अनुशासन अल्पसंख्यक मुसलमानों पर दबाव डालेगा, दखल देगा, बंदरघुड़की देगा, आर्थिक दृष्टि से सतायेगा और राजनैतिक तौर पर कुचल देगा। इस डर को दूर करने के लिये उसकी योजना थी कि दोनों पक्ष ऐसा हल मान लें जिसमें मुसलमानों के बहुमतवाले प्रदेश भीतरी मामलों में अपने विकास के लिये स्वतंत्र हों लेकिन साथ ही साथ जिन मामलों में पूरे मुल्क का सवाल उठता हो, केन्द्र पर अपना प्रभाव डाल सकें।

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 11

आजाद ने लिखा:—

"हिन्दुस्तान की हालत ऐसी है कि केन्द्रीभूत और एकात्मक सरकार कायम करने की हर कोशिश असफल होकर ही रहेगी। इसी तरह हिन्दुस्तान को दो टुकड़ों में बाँटने की कोशिश का भी वही हश्र होगा। इस सवाल के सभी पहलुओं पर गौर करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि इसका सिर्फ एक ही हल हो सकता है जो कांग्रेस फार्मूले में मौजूद है, जिसमें प्रदेश और मुल्क, दोनों के विकास की गुंजाइश है।.....मैं उन लोगों में हूँ जो साम्प्रदायिक दंगों ओर तलखियों के इस अध्याय को हिन्दुस्तान की जिन्दगी का चन्द रोज़ा दौर समझते हैं। मेरा पक्का विश्वास है कि जब हिन्दुस्तान अपनी किस्मत की बागडोर खुद सम्हालेगा तो यह खतम हो जायेगा। मुझे ग्लैडस्टोन का एक कथन याद आता है— 'पानी का भय दूर करना है तो उसे पानी में फेक दो।' उसी तरह हिन्दुस्तान अपनी जिम्मेदारी खुद उठा ले और अपना काम सम्भालने लगे तभी डर और शक का यह वातावरण पूरी तरह दूर होगा जब हिन्दुस्तान अपना ऐतिहासिक लक्ष्य प्राप्त कर लेगा तो साम्प्रदायिक शक और विरोध का वर्तमान अध्याय भुला दिया जायेगा और आधुनिक जीवन की समस्याओं का वह आधुनिक ढंग से सामना करेगा। भेद तो तब भी रहेंगे ही लेकिन साम्प्रदायिक न होकर आर्थिक। राजनीतिक पार्टियों के बीच विरोध भी रहेगा लेकिन वह धार्मिक न होकर होगा आर्थिक और राजनीतिक। भविष्य में गठबन्धन और साझेदारी सम्प्रदाय के आधार पर नहीं, वर्ग के आधार पर होंगी और उसी तरह नीतियां निर्धारित होंगी। अगर यह दलील दी जाय कि यह सिर्फ मेरा विश्वास है जिसे भविष्य की घटनायें गलत साबित कर देंगे तो मुझे यह कहना है कि 'नौ करोड़ मुसलमानों को कोई नजरअंदाज नहीं कर सकता और अपने भविष्य को बचाने के लिये वे काफी ताकतवर हैं।[1]

यह हृदय की वाणी थी। कांग्रेस सभापति के ऐसे विचारों ने वाइसराय और कैविनेट मिशन, दोनों पर गहरा असर छोड़ा। जब उन लोगों ने देखा कि दोनों विरोधी दल आपसी समझौते द्वारा कोई हल नहीं निकाल सकते तो मिशन ने अपनी एक योजना सामने रखी। मूलतः यह आजाद के ही प्रस्तावों पर आधारित थी। पूरे देश की इकाई की एक

---

1. वाइसराय और कांग्रेस के नाम भेजे गये एक मेमोरेंडम (स्मरण पत्र) से।

स्वतन्त्र सरकार तो होगी, पर उसके अधीन सिर्फ तीन विभाग होंगे— सुरक्षा, विदेश और संचार—साधन। बाकी के लिये देश तीन अनुशासकीय भागों में बँटा होगा। पहला भाग (ग्रुप ए) वह होगा जहां हिन्दू बहुमत में है यानी हिन्दुस्तान का अधिकांश हिस्सा। दूसरे भाग में होंगे पंजाब, सिंध, उत्तर—पश्चिम सीमांत प्रदेश और ब्रिटिश बलूचिस्तान जहां मुसलमानों का बहुमत है (ग्रुप बी)। तीसरे भाग में होगा बंगाल और आसाम जहाँ मुसलमानों का हल्का बहुमत है (ग्रुप सी)। इस तरह अल्पसंख्यक मुसलमान घरेलू मामले में खुदमुख्तार होंगे और हिन्दुओं के आधिपत्य से बच जायेंगे।

दोनों पक्षों ने यह योजना मान ली। सभी के अचरज का ठिकाना नहीं रहा, वाइसराय और कैविनेट मिशन के लोग खुशी से फूले नहीं समाये। कांग्रेस और मुस्लिम लीग, दोनों ने कुछ हद तक अपनी—अपनी सीमायें भी रखी थीं, लेकिन दोनों संस्थाओं की कार्यकारिणी ने आगे बढ़ने की स्वीकृति दे दी थी। हालांकि गांधी कांग्रेस के पदाधिकारी नहीं थे, फिर भी सदस्यों पर उनका प्रभाव पहले जैसा ही मजबूत था। कैविनेट मिशन के प्रस्ताव को उन्होंने कहा था— 'दुख दर्द से भरे इस देश को अभाव और दुख से मुक्त करने का यह बीज है।.......ब्रिटिश सरकार की ओर से कैविनेट मिशन और वाइसराय द्वारा प्रकाशित इस परिपत्र की चार दिनों तक गहरी छानबीन करने के बाद मुझे विश्वास हो गया है कि वर्तमान परिस्थिति में इससे अच्छा वे कुछ नहीं कर सकते थे।[1]

वातावरण में एक तरह की आशा थी। भारत के सभी हिस्सों से कांग्रेस के प्रतिनिधि वार्षिक कांफ्रेंस के लिये इकट्ठे हुये और आजाद के एक प्रभावशाली भाषण के बाद पार्टी के वामपंथियों का विरोध समाप्त हो गया और मिशन की आजादी की योजना मान ली गई। जहां तक मुस्लिम लीग का सवाल था, कांफ्रेंस की जरूरत ही नहीं थी। मि0 जिन्ना का प्रभाव सर्वशक्तिशाली था और उसने यह बता दिया कि मिशन की योजना मुसलमानों के लिये पाकिस्तान के सबसे अधिक निकट थी।

---

1. मोसले, लिओनार्ड — भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 13

आखिरकार शांति ? 150 वर्ष की ब्रिटिश हुकूमत से आजादी ? साम्प्रदायिक दंगे और आपसी लूटमार से मुक्ति ? लगता ऐसा ही था।

ठीक इसी समय दूध के मटके में खट्टा पड़ गया।

यह हमेशा याद रखना चाहिये कि मुसलमान नेता मुहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस के इरादों और लक्ष्य को हमेशा गहरे शक की नजर से देखता था। उसके हिन्दू–विरोधी उसे बड़ा ही सिड़ी, उद्दण्ड और टेढ़ा आदमी मानते थे। शायद यह ठीक भी हो लेकिन उसका भी विश्वास था और निराधार नहीं था कि कांग्रेस का लचीलापन एक खास ढंग का था। पिछले वर्षों में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस के साथ राजनीतिक व्यवस्था की थी। लड़ाई के पहले उत्तर प्रदेश की तरह एक सम्मिलित आधार पर चुनाव लड़ा गया था ताकि चुनाव जीतने पर मुस्लिम लीग को मन्त्रिमण्डल में उचित हिस्सा मिले। लेकिन जहां–जहां मुस्लिम लीग की मदद के बिना कांग्रेस का बहुमत हुआ और मुस्लिम लीग की मदद की जरूरत नहीं थी, कांग्रेस ने राजनीतिक व्यवस्था तोड़कर मुस्लिम लीग को बहुत ही महत्वहीन एकाध जगह दी या वह भी नहीं।

जिन्ना ने कैविनेट मिशन की योजना मानने की मंशा जाहिर तो की लेकिन उसकी हालत रेस के उस घुड़सवार की थी जिसने अपना दो–चार पौंड वज़न कम किया था ताकि रेस में शामिल हो सके लेकिन भूखे और दुबले–पतले ऐसे घुड़सवार की ही तरह वह भी भरा और तना हुआ था। रेस की यह चर्चा उसके सामने की जाती तो उसे गहरा धक्का लगता। लेकिन बात बेजगह नहीं है। उसको शक था कि कुछ कांग्रेस सदस्य मुस्लिम लीग को धोखा देने पर तुले हुये थे और वह तुला हुआ था कि किसी भी कीमत पर यह नहीं होने दिया जायेगा। जिन्ना के मतानुसार कैविनेट मिशन की योजना मान लेना ही बहुत बड़ा समझौता था। अगर इसे अमल में लाया गया तो एक स्वतन्त्र राज्य पाकिस्तान की बात ही छोड़ देनी पड़ेगी। वह और उसके साथी मुसलमान अपने प्रदेशों में क्षेत्रीय स्वतंत्रता तो पा जायेंगे लेकिन फिर भी हिन्दुओं के प्रभुत्ववाले राज्य का अंश होकर ही उन्हें रहना पड़ेगा और वह तुला हुआ था कि ऐसी हालत में मुसलमानों के हित की रक्षा के लिये वह सब कुछ करेगा। कांग्रेस

पार्टी ने अपनी कांफ्रेंस में कैविनेट मिशन की योजना भारी बहुमत से स्वीकार की थी।[1]

लेकिन क्या वे अपने वायदे पर कायम रहेंगे ?

कैविनेट मिशन इंग्लैण्ड वापस गया इस आशा से कि एक अच्छा काम सम्पन्न हुआ और इस देश का भविष्य आशाजनक है। जिस तरह आजाद ने मिशन की योजना को कबूल करवाया, इसके लिये लार्ड पेथिक लारेंस और सर स्टैफोर्ड क्रिप्स ने मुबारकबाद और शुभकामनाओं का उसे तार भेजा क्योंकि दोनों का विश्वास इतना दृढ़ था कि आगे का रास्ता बिल्कुल साफ हो गया। शायद उन लोगों ने थोड़ी जल्दी कर दी। उसी कांफ्रेंस में, जिसमें मिशन की योजना मान ली गई, कांग्रेस का सभापति बदला। कांग्रेस के दक्षिण पक्ष के लोग सरदार बल्लभभाई पटेल के सभापति होने की सिफारिश कर रहे थे। खुद आजाद (जिसका उसे आजीवन दुख रहा) ने फैसला किया कि जवाहरलाल नेहरू दोनों में अच्छा चुनाव होगा और सभी सदस्यों के पास उन्होंने एक परिपत्र भेजा कि जवाहरलाल नेहरू को सभापति चुना जाय। दरअसल हुआ भी यही।

कांग्रेस हाईकमांड के जिन सदस्यों ने कैविनेट मिशन की योजना मानने के पक्ष में वोट दिया था, जवाहरलाल नेहरू भी उनमें एक थे लेकिन बाद की घटनायें इशारा करती हैं कि उस समय जवाहरलाल नेहरू ने सिर्फ इसलिये मान लिया था कि गांधी उसके पक्ष में थे। अगर उस समय विरोध होता तो जवाहरलाल नेहरू वोट में हार जाते। जब वह सभापति हो गये तो उन्होंने अपने हार्दिक विचार व्यक्त किये। जिस तरह उनका दिमाग काम कर रहा था उसका साफ इशारा है कि इतनी देरी के बावजूद उसे इस बात का एहसास ही नहीं था कि मि० जिन्ना ने मुसलमानों के नेता की हैसियत से अपना प्रभाव किस हद तक बढ़ा लिया था। उसने एक बार ताकत आज़माने का फैसला किया। जिन्ना के प्रति उसकी भावना छिपी नहीं थी (दोनों का यही हाल था)। मुस्लिम लीग और उसके लक्ष्य को वह इतना नापसन्द करता था कि उसकी ताकत का भी सही अन्दाज नहीं था। मुस्लिम लीग के बारे में जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था– 'यह संस्था बहुत ताकतवर और बहुत कमजोर, दोनों थी। अपने

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ०सं० 14

समर्थकों को सड़क पर निकालना, मुसीबत खड़ी करना, हिंसा की धमकी देना इसके लिये हमेशा सम्भव था लेकिन सिवा हिन्दू–विरोधी नकारात्मकता के इसके पास विचार का और कोई स्तम्भ नहीं था।' जिन्ना के बारे में उन्होंने कहा था– जानते हैं, जिन्ना के कांग्रेस छोड़ने का असली कारण क्या था? कांग्रेस का आधार एकाएक व्यापक हो गया और जनता को यह संस्था भाने लगी। यह जिन्ना को अच्छा नहीं लगता था। कांग्रेस सिर्फ सफेदपोशों की संस्था नहीं रह गई थी। जिन्ना हमेशा सोचते थे कि कांग्रेस की सदस्यता सिर्फ उन्हीं तक सीमित रहनी चाहिये जो मैट्रिकुलेशन पास हों। यह स्तर किसी भी देश के लिये जरा ज्यादा ही पड़ता लेकिन हिन्दुस्तान के लिये तो इसका मतलब था कि जनता कभी इसमें आ ही नहीं सकती थी। उनकी नाक बहुत लम्बी थी। जब किसान कांग्रेस में आने लगे तो वह नाराज हुये। ये तो अंग्रेजी भी नहीं बोल सकते थे। जो किसानों से कपड़े पहनते थे, यह संस्था उनके लिये नहीं थी।' मुस्लिम लीग के नेतृत्व के बारे में जवाहरलाल नेहरू जी ने कहा था– मुसलमानों के बारे में उनके ह्रदय में कोई सच्ची भावना नहीं थी। वह सच्चे मुसलमान थे ही नहीं। मैं मुसलमानों को जानता हूं। मैं कुरान को जानता हूं। जिन्ना तो नमाज़ भी नहीं पढ़ सकते थे और कुरान भी इन्होंने नहीं पढ़ी थी लेकिन जब मुस्लिम लीग का नेतृत्व सामने आया तो उन्होंने मौके को समझा और कबूल किया। इंग्लैण्ड में बैरिस्टर की हैसियत से उन्हें सफलता नहीं मिली थी। यह एक रास्ता था लेकिन उनकी विचारधारा इस कहानी में निहित है जो मैने सुनी थी। यह तब की कहानी है जब वह पहली बार इंग्लैण्ड गये थे और उनसे पूछा गया था कि वह राजनीति में शामिल होंगे। उन्होंने कहा था कि उन्होंने इस पर गौर किया है। उनसे तब पूछा गया कि वह दक्षिण पक्ष में शामिल होंगे या उदार दल में? 'अब तक मैं फैंसला नहीं कर पाया हूँ– जिन्ना का उत्तर था। उनमें कोई गुण नहीं था, सिवा इसके कि वह सफल हो गये।'[1]

जिन्ना के चरित्र पर यह चित्रण शायद कुछ हद तक ठीक भी हो। मैं इसके कुछ पहलुओं पर बाद में भी लिखूँगा लेकिन राजनीतिक विरोधी को नापसन्द करना एक बात है और उसकी शक्ति का गलत अन्दाज़ करना दूसरी बात। जिन्ना में दोष होंगे लेकिन

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 15

उसमें शक्ति थी और बड़ा ही दृढ़ निश्चयी था। 1946 की गर्मियों में (और यह आखिरी बार की गलती नहीं थी) जवाहरलाल नेहरू ने उसकी ताकत का बहुत ही गलत अन्दाज लगाया। वह विश्वास नहीं कर सका कि जिन्ना भारत के सभी मुसलमानों की ओर से बात कर रहा था। उसका तब भी विश्वास था कि उसके सभापति में जिन्ना का पासा पलटा जा सकता था।

10 जुलाई को कांग्रेस का सभापति चुने जाने के बाद उसने कांग्रेस की नीति पर बातचीत करने के लिये एक प्रेस कांफ्रेंस बुलाई। यह इतिहास का ऐसा क्षण था जब सावधानी बरती जानी चाहिये थी। चुप रहने से भी बहुत बड़ा फायदा था। हिन्दुस्तान की तकदीर का फैसला सिर पर था, एक गलती से पासा पलट सकता था। जवाहरलाल नेहरू की 'आत्मकथा': लेखक माइकेल ब्रेशर के शब्दों में– 40 वर्ष के सार्वजनिक जीवन के सबसे गर्म और छेड़वाले भाषण के लिये जवाहरलाल नेहरू ने इसी घड़ी को चुना।' प्रेस प्रतिनिधियों ने पूछा कि कैविनेट मिशन की योजना मान लेने का क्या यह अर्थ है कि कांग्रेस सोलह आना उसे मान चुकी है? जवाहरलाल नेहरू ने ढिठाई के साथ जबाब दिया कि कांग्रेस पर समझौतों का कोई बन्धन नहीं और वह हर स्थिति का जिस तरह वे सामने आती हैं, सामना करने के लिये स्वतन्त्र है।' फिर पूछा गया कि क्या इसका मतलब है कैविनेट मिशन की योजना में रद्दोबदल भी हो सकता है?

उसने आनेवाले शब्दों में स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस के सभापति की हैसियत से योजना में रद्दोबदल करने की उसकी हर मंशा थी। 'इसमें शक नहीं कि हम लोग इसका (अल्पसंख्यकों की समस्या का) हल ढूंढ़ निकालेंगे। लेकिन इसमें किसी का दखल देना हमें कबूल नहीं, ब्रिटिश सरकार का तो कभी नहीं।' कैविनेट मिशन की योजना (देश को तीन हिस्सों में बांटने) के बारे में, जिसे कांग्रेस ने कुछ ही दिन पहले मान लिया था, जवाहरलाल नेहरू ने कहा–[1]

'चाहे जिस तरह इस मसले को देखा जाय, सबसे ज्यादा सम्भावना इस बात की है कि टुकड़े बनें ही नहीं। स्पष्ट है कि खंड ए (हिन्दू बहुमत) इसके

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 16

विरोध में वोट देगा। अगर सट्टेबाजों की भाषा में बात की जाय तो एक के खिलाफ चार की संभावना है कि उत्तर–पश्चिम सीमान्त प्रदेश भी टुकड़ों के खिलाफ वोट देगा। इसका अर्थ हुआ कि ग्रुप बी खतम। इस बात की बहुत बड़ी संभावना है कि बंगाल और आसाम भी टुकड़ों के खिलाफ ही जायेगा।......इसलिये यह साफ है कि टुकड़ों में बांटने की यह बात, चाहे जिस तरह उसे देखिये, आगे नहीं बढ़ पाती।'

क्या जवाहरलाल नेहरू ने यह महसूस किया था कि वह क्या कह रहे थे? वह दुनिया को कह रहे थे कि एक बार सत्ता हाथ में आने पर कांग्रेस मिशन की योजना को अपनी मर्जी के अनुसार बदलने के लिये केन्द्रीय सत्ता का उपयोग करेगी। लेकिन मुस्लिम लीग ने योजना को अपने कटे–छँटे रूप में स्वीकार कर लिया था (कांग्रेस ने भी किया था)। यह समझौते की योजना थी। इसलिये ज़ाहिर था कि किसी भी पक्ष की सुविधा के अनुसार पीछे इसमें रद्दोबदल की गुंजाइश नहीं थी। ऐसी स्थिति में जवाहरलाल नेहरू का विचार पीठ पीछे छुरा भोंकने के काम जैसा था। पता नहीं, जवाहरलाल नेहरू की मंशा क्या थी– मुस्लिम लीग और जिन्ना की ताकत का सही अन्दाज नहीं रहने के कारण यह उसे तोड़–फोड़ करने का तरीका या ऐसे राजनीतिक नेता के घिसे–पिटे विचार, जिसे पता नहीं कब चुप रहना चाहिये। इस विषय पर आजकल जवाहरलाल नेहरू अपनी राय प्रकट नहीं करते। लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं, जैसा उसकी जीवनी के लेखक ब्रेचर ने लिखा है– 'यह दुनियादारीकी दृष्टि से बड़ी भारी गलती थी। इससे जिन्ना को एक ऐसा हथकंडा मिल गया जिसके सहारे उसने अपनी पाकिस्तान की माँग को कांग्रेस उत्पीड़न के नाम पर और भी जोर से पेश किया।'

मौलाना आज़ाद ने एक कदम आगे बढ़कर लिखा:–

'जवाहरलाल मेरे सबसे प्यारे दोस्तों में हैं और इस मुल्क की राष्ट्रीय जिन्दगी में उनका योगदान किसी से कम नहीं। उन्होंने हिन्दुस्तान की आजादी के लिये मेहनत की है और दुख उठाया है और आजादी के बाद से मुल्क की एकता और तरक्की का यह प्रतीक बन गये हैं फिर भी मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है कि वह भावनाओं में बहक जाते हैं। इतना ही नहीं, सैद्धान्तिक बातों का कभी–कभी इतना खयाल करते हैं कि स्थिति का व्यावहारिक पहलू नजरअन्दाज कर

देते हैं। 1946 की गलती बड़ी मँहगी साबित हुई।[1]

बात सही थी। मि0 जिन्ना की प्रतिक्रिया उस फौजी नेता की सी हुई जो सुलह के झण्डे को देखकर समझौते की बातचीत के लिये आया हो, पर जो अपने को पिस्तौल के सामने पा रहा हो। तुरन्त दगा, फरेब, चिल्लाता हुआ वह छिपने की जगह ढूँढ़ने लगा। खुद को और अपने साथियों को यह समझाने में देरी नहीं लगी कि यह सारा कुछ एक बड़ी गलती थी; कैबिनेट मिशन की योजना मानकर, पाकिस्तान के अपने लक्ष्य से समझौता कर उन लोगों ने बुनियादी गलती की थी; कांग्रेस हमेशा की तरह चालबाज और खतरनाक थी।

जवाहरलाल नेहरू के भाषण का बड़ा ही गहरा और अफसोसनाक नतीजा निकला। 27 जुलाई, 1946 को मुस्लिम लीग की बैठक हुई और जिन्ना के कहने पर मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन की योजना की स्वीकृति रद्द कर दी। काफी बुरी बात थी क्योंकि निकट भविष्य में इस देश की आजादी का सपना टूट गया, हिन्दू और मुसलमान फिर दो विरोधी और परस्पर शक करने वाले दलों में बँट गये। वाइसराय ने दोनों दलों को फिर से इकट्ठा करने की कोशिश की और वेवल की कोशिश से कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन योजना में अपने विश्वास का प्रस्ताव किया, जवाहरलाल नेहरू के भाषण से विरोध प्रकट किया (नेहरू की निन्दा सम्भव नहीं थी)।

जिन्ना का प्याला भर चुका था। हिन्दुओं के साथ बातचीत का सिलसिला उसके लिये खतम हो गया था। उसने एक प्रस्ताव तैयार किया जो सर्वसम्मति से पास हुआ। इस प्रस्ताव में मुस्लिम लीग के सदस्यों को सभी उपाधि छोड़ने के लिये कहा गया था।

---

1. आजाद, मौलाना अबुल कलाम– इण्डिया विन्स फ्रीडम ।

७. संविधान सभा के लिये निर्वाचन और नेहरू

मन्त्रिमण्डलीय शिष्टमण्डल की यह इच्छा थी कि वह संविधान सभा बनाने की प्रक्रिया आरम्भ कर दे– एक ऐसी प्रक्रिया जिससे भारतीय लोग स्वयं अपना संविधान बना सकें। यह संविधान सभा प्रान्तीय विधान सभाओं द्वारा ही चुनी जानी थी, क्योंकि वयस्क मताधिकार के आधार पर इसके चुनाव में तो समय बहुत लग जाता।

प्रान्तीय विधान सभा के सदस्यों को तीन भागों में बांटा जाना था, सामान्य, मुस्लिम तथा सिक्ख और प्रावधान यह था कि प्रत्येक वर्ग अपने–अपने प्रतिनिधि, अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा चुनेगा। गवर्नरों के प्रान्तों में भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधि उनकी जनसंख्या के अनुपात से ही मिलने थे और लगभग प्रत्येक दस लाख लोगों के लिये एक–एक प्रतिनिधि होना था। चार मुख्य आयुक्तों के प्रान्तों का प्रबन्ध भिन्न था। निम्नलिखित तालिका दर्शाती है कि स्थानों का बंटवारा किस प्रकार था:–[1]

वर्ग (अ)

प्रान्त	सामान्य	मुस्लिम	योग
मद्रास	45	4	49
बम्बई	19	2	21
संयुक्त प्रान्त (यू0पी0)	47	8	55
बिहार	31	5	36
मध्य प्रान्त	16	1	17
उड़ीसा	9	0	9
योग–	167	20	187

1. ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ0सं0 116

वर्ग (ब)

प्रान्त	सामान्य	मुस्लिम	सिक्ख	योग
पंजाब	8	16	4	28
सीमा प्रान्त	0	3	0	3
सिन्ध	1	3	0	4
योग–	9	22	4	35

वर्ग (स)

प्रान्त	सामान्य	मुस्लिम	योग
बंगाल	27	33	60
आसाम	7	3	10
योग–	34	36	70

भारतीय प्रान्तों का कुल योग–	292
भारतीय रियासतों के लिये अधिकाधिक प्रतिनिधि–	93
मुख्य आयुक्तों के प्रान्तों के लिये अधिकाधिक प्रतिनिधि–	4
कुल योग–	389

इस प्रकार की बनी हुई संविधान सभा को तीन भागों में बांटा जाना था (तीनों वर्गों के अनुसार)। इनमें से प्रत्येक भाग अपने–अपने वर्ग के लिये संविधान बनायेगा और निर्णय भी करेगा कि क्या सम्पूर्ण देश के लिये संविधान बनाया जाय? तीनों वर्ग

तथा भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि मिलकर अर्थात सम्पूर्ण संविधान सभा, समस्त संघीय संविधान का निर्णय करेंगे। इसके अतिरिक्त एक परामर्शदात्री समिति भी बनाई जायेगी जो नागरिकों, अल्पसंख्यकों, जन–जातियों तथा अपवर्जित प्रदेशों के अधिकारों के विषय में परामर्श देगी। संघ तथा वर्गों के संविधान में एक ऐसा प्रावधान भी था कि कोई प्रान्त अपनी संविधान सभा के बहुमत से पहले दस वर्षों के पश्चात यह निर्णय कर सकेगा कि संविधान का पुनरीक्षण किया जाय और यह प्रक्रिया प्रत्येक दस वर्ष के पश्चात हो सकेगी। इसके अतिरिक्त प्रान्तों को यह भी अधिकार दिया गया था कि वे अपने वर्ग को छोड़ भी सकते हैं, परन्तु यह प्रक्रिया नवीन संविधान के अधीन हुये आम चुनावों के उपरान्त अपनी–अपनी विधान सभाओं के निर्णय के अनुसार ही हो सकेगी। इस विधान सभा को शक्ति हस्तान्तरण से सम्बद्ध मामलों के विषय में इंग्लैण्ड की सरकार के साथ एक संधि भी करनी होगी।

भारतीय रियासतों के विषय में मन्त्रिमण्डलीय शिष्ट मण्डल ने यह घोषणा की कि जिस दिन से यह नया संविधान लागू हो जायेगा उस दिन से अंग्रेजी सरकार अपनी सर्वश्रेष्ठता की शक्ति का प्रयोग करना बन्द कर देगी। उस अवस्था में वे सब अधिकार जो रियासतों ने सर्वश्रेष्ठ शक्ति को दे रखे हैं पुनः उनके पास लौट जायेंगे, अर्थात वे पूर्णरूप से स्वतन्त्र हो जायेंगी। वे सभी राजनीतिक प्रबन्ध जो ब्रिटिश–क्राउन तथा भारतीय रियासतों के बीच हैं, समाप्त हो जायेंगे।

यह रिक्त स्थान रियासतों को, अंग्रेजों की उत्तराधिकारी सरकार अथवा सरकारों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके भरना होगा अथवा यदि ऐसा न हो सके तो वे कोई राजनीतिक प्रबन्ध इन वर्गों से कर लें।[1]

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल–भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास,पृ०सं० 117

छठवां अध्याय

1. लीग के द्वारा उत्पन्न परिस्थितियाँ व नेहरू
2. अन्तरिम सरकार का गठन व नेहरू
3. 13 दिसम्बर,1946 संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत व नेहरू
4. लार्ड लुई माउण्टवेटन वाइसराय बने– राजनीतिक हल के लिये प्रयत्न व नेहरू का योगदान
5. भारत विभाजन का प्रस्ताव– नेहरू की प्रतिक्रिया
6. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम और नेहरू
7. देश का विभाजन– भारत व पाकिस्तान के रूप में व नेहरू

9. लीग के द्वारा उत्पन्न परिस्थितियाँ व नेहरू

16 अगस्त,1946 'डायरेक्ट एक्शन डे' (सीधी कार्रवाई दिवस) के रूप में मनाने के लिये कहा गया ताकि मुसलमान हिन्दुस्तान के बंटवारे और अपनी पाकिस्तान की मांग का निश्चय प्रदर्शित कर सकें। पीछे चलकर जिन्ना ने कहा– हम लोगों ने आज जो किया है, हमारे इतिहास का वह सबसे बहादुरी का काम है। लीग के पूरे इतिहास में हम लोगों ने कभी भी वैधानिक तरीकों को छोड़कर और कोई रास्ता नहीं अपनाया। लेकिन इसके अलावा हमारे पास अब कोई दूसरा रास्ता नहीं, हम इसके लिये मजबूर किये गये हैं। आज के दिन हम वैधानिक तरीकों से अलग होते हैं......आज हमने अपने लिये एक अस्त्र तैयार किया है और उसके उपयोग की स्थिति में है।

16 अगस्त,1946 के सुबह जिन्ना के बदसूरत लेकिन भरे–पूरे कीमती मकान (मलाबार हिल,बम्बई) में जवाहरलाल नेहरू मिलने गये। वाइसराय ने अपील की थी कि दोनों पार्टियों के बीच की खाई पाटने की आखिरी कोशिश करनी चाहिये। कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार एक अस्थायी सरकार बनाई जा रही थी और मन्त्रिमण्डल में मुस्लिम लीग के लिये पांच सीटें निश्चित की गई थीं। जब तक ब्रिटिश हिन्दुस्तान में थे, वाइसराय को वीटो का अधिकार था, लेकिन अन्यथा नई सरकार केन्द्रीय अनुशासन चलाने के लिये स्वतन्त्र थी और जवाहरलाल नेहरू उसके नेता होने वाले थे। उस दिन की सुबह यह जवाहरलाल नेहरू का काम था कि जिन्ना को 'डायरेक्ट ऐक्शन' (सीधी कार्रवाई) भूलने के लिये राजी करें और लीग को सरकार बनाने में सहायता करने दें।[1]

इस बात की उम्मीद नहीं थी कि ऐसी परिस्थिति में कोई भी जिन्ना को अपने विचार बदलने के लिये राजी कर सकता था। लेकिन असफलता के लिये जवाहरलाल नेहरू से अधिक उपयुक्त आदमी शायद ही कोई दूसरा हो। ये दो आदमी ऐसे थे जिनमें एक–दूसरे से मिलने की कोई बात ही नहीं थी, हिन्दुस्तान का भविष्य भी नहीं। हैरो और

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 18

ऑक्सफोर्ड में शिक्षा पाने वाले बुद्धिजीवी, कविता के प्रेमी और किताबों के लेखक जवाहरलाल नेहरू के लिये जिन्ना संकीर्ण दिमागवाला सम्प्रदायवादी था। एक बार जवाहरलाल नेहरू ने कहा था– उसकी असली शिक्षा नहीं हुई थी, आप उसे शिक्षित नहीं कह सकते। कानूनी किताबें पढ़ी थीं और कभी–कभी हल्के–फुल्के उपन्यास–कहानी लेकिन असली किताब कभी नहीं। बड़ा ही घमण्डी, हमेशा डाँट–फटकार सुनाने के लिये चौकस रहने वाला जिन्ना का ऐसे आदमी के सामने झुकना सम्भव नहीं था जिसके बारे में उसने कभी कहा था– 'उद्‌दण्ड ब्राह्मण जो अपनी चालबाजी को पश्चिमी शिक्षा के आवरण से ढंककर रखता है। जब वह वादा करता है, कोई न कोई रास्ता छोड़ देता है और जब कोई रास्ता नहीं मिलता तो सफेद झूठ बोलता है।

दोनों की मुठभेड़ अस्सी मिनट तक होती रही। लेकिन इसे मुठभेड़ ही कहा जायेगा, दो दिमागों का मिलना नहीं। शायद यह जवाहरलाल नेहरू के प्रति अन्याय होगा अगर यह कहा जाय कि उन्होंने कोशिश नहीं की। स्वतंत्र हिन्दुस्तान को कैसे चलाया जाय इसकी उनकी अपनी धारणा होगी लेकिन उसको हासिल करने के बेताव इरादे के बारे में शक नहीं हो सकता। उन्होंने अपनी जिन्दगी का अधिकांश हिस्सा अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन में लगाया (काफी अरसे तक जेल में रहे) और अंग्रेजों की नीयत के बारे में चाहे उन्हें अब भी शक हो, उन्हें यह विश्वास हो गया था कि आखिरकार अब अंग्रेज कूच करने के लिये तैयार हैं। जिसकी ज़िद देश की आजादी का दरवाजा रोके खड़ी थी, उसी से मेहरबानी के लिये कहना बड़ी मुश्किल से काबिले बरदाश्त रहा होगा। यह महसूस करना कि अपने ही अनाड़ीपन के कारण यह स्थिति पैदा हो गई है और भी मुश्किल पड़ता होगा। फिर भी जवाहरलाल नेहरू ने कोशिश की, जो कुछ भी उनके पास था,सब लगाकर कोशिश की लेकिन फल कुछ नहीं हुआ। जिन्ना विनम्र रहे लेकिन टस से मस नहीं हुये। मुलाकात सिर्फ असफल ही नहीं रही, मुलाकात के बाद दोनों का विरोध चरम सीमा तक पहुंच गया। जवाहरलाल नेहरू का विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि सिर्फ यही आदमी देश की आज़ादी का दरवाजा रोक कर खड़ा है, इसे और इसके पाकिस्तान के सपने को नष्ट करना ही होगा। लेकिन साथ ही साथ जिन्ना की ताकत से, देश के मुसलमानों पर उसके प्रभाव से जवाहरलाल नेहरू अनभिज्ञ ही रहे।

मलाबार हिल से जब बाहर निकले तो कांग्रेस सभापति ने मातम का काला झण्डा देखा, काला झण्डा जो कि 'डायरेक्ट ऐक्शन' की घोषणा कर रहा था, काला झण्डा जो मुसलमानों के घरों और उनकी बन्द दुकानों पर लहरा रहा था। लेकिन बम्बई में हिन्दुओं का बहुमत था; सड़कें शांत थीं, कहीं कोई गड़बड़ी नहीं थी। कराची और पंजाब, मुसलमानों के दो सबसे बड़े क्षेत्र भी नियन्त्रण में थे। कराची तो इसलिये कि सिंध सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने 16 अगस्त को सरकारी छुट्‌टी नहीं दी और पंजाब इसलिये कि पंजाब के अंग्रेज गवर्नर सर इवान जेन्किन्स का प्रदेश पर अच्छा और शान्त नियन्त्रण था तथा स्थिर प्रादेशिक सरकार थी।[1]

लेकिन हिन्दुस्तान में एक प्रदेश की सरकार मुसलमानों के अधीन थी। यह प्रदेश बंगाल था जिसकी राजधानी, देश का सबसे बड़ा शहर कलकत्ता थी (1946 की आबादी 2,500,000)। बंगाल में न सिर्फ मुसलमानों की संख्या ही अधिक थी (33,000,000 मुसलमान, 27,315,000 बाकी लोग) अपितु चुनाव में उनका बहुमत था बल्कि अल्पसंख्यकों के 'वेटेज' प्रणाली के अनुसार (अंग्रेजों ने अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिये इसे लागू किया था) कुछ अधिक सीटें भी मिली थीं। इसका मतलब था कि अगर उनके पक्षवाले पूरी संख्या में वोट न भी दें तो भी उनका बहुमत बना ही रहेगा।

बंगाल के गवर्नर सर फ्रेडरिक बरोज, पुराने रेलवे और यूनियन अधिकारी थे जिनको लेबर सरकार ने 1946 में मि0 आर0जी0 केसी के बाद बहाल किया। वह कुशल और खुशमिजाज शासक थे जिनकी हिन्दू–मुसलमानों के साथ–साथ ब्रिटिश फौजी अफसरों से भी अच्छी पटती थी। लेकिन वह बहुत ही शक्तिशाली और तुरन्त फैसला करने वाले नहीं थे। व्यक्तित्व की हैसियत से बंगाल के मुख्यमंत्री मि0 शहीद सुहरावर्दी से उनका कोई मुकाबला नहीं था। मि0 सुहरावर्दी बड़ा ही चालाक, चुस्त और आकर्षक व्यक्तित्व का आदमी था। मि0 सुहरावर्दी मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी के सदस्य भी थे इसलिये मि0 जिन्ना के इशारे पर अन्य लोगों की ही तरह उनके भी उछलने–कूदने की उम्मीद थी ही। दरअसल बात

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 19

यह थी कि मि0 सुहरावर्दी बड़ी ही आज़ादी बरतता था और जिन्ना को साफ बता दिया गया था कि शासन में किसी तरह की दखलन्दाजी उसे बर्दाश्त नहीं थी। जिन्ना उसे पसन्द नहीं करता था क्योंकि उसे शक था कि जबानी तौर पर वह हमेशा पाकिस्तान की दुहाई तो देता है, पर भीतर ही भीतर एक नया सपना पाल रहा है– जिन्ना के नियन्त्रण से बाहर एक स्वतन्त्र बंगाल कायम करना। मि0 सुहरावर्दी उस तरह का पार्टी नेता था जिसका विश्वास था कि एक बार पुलिस अनुशासन चुनाव केन्द्रों पर कब्जा कर ले तो राजनीतिक नेता की सरकार हमेशा कायम रहेगी। सार्वजनिक जीवन में आने के बाद किसी मन्त्री को आर्थिक हानि क्यों हो! हर रिश्तेदार या राजनीतिक मददगार को इनाम मिलना ही चाहिये। धन, सुरा और सुन्दरी से उसे प्यार था। नाइटक्लबों में नाचना उसे अच्छा लगता था और कहा जाता है कि लड़ाई के जमाने में उसने काफी पैसा बनाया। वह कलकत्ता को प्यार करता था। वहाँ की गन्दगी और मुफलिसी भी उसमें शामिल थी। हावड़ा की गुंजान गलियों से ही उसने गुण्डे चुने थे जो उसके अंगरक्षक की हैसियत से हमेशा उसके साथ रहते थे।

बाहर से मिलनसार लेकिन भीतर से क्रूर इस राजनीतिज्ञ के लिये 16 अगस्त को 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' के रूप में मनाने की जिन्ना की घोषणा सुनहला मौका बन कर सामने आयी ताकि वह बंगाल के मुसलमानों पर अपने प्रभाव और पाकिस्तान के समर्थन का प्रदर्शन कर सके। उसने घोषणा की कि 16 अगस्त हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिये छुट्टी का दिन होगा। जब विधान सभा के हिन्दू सदस्यों ने इसका विरोध किया कि राजनीतिक हड़ताल में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं तो वोट से उनका विरोध कुचल दिया गया। 'स्टेट्समैन' के 5 अगस्त वाले अंक में शहीद उपनाम से उसने लिखा कि और जैसा बदकिस्मती से हुआ भी कि "खून–खराबी और अशान्ति अपने में कोई बुरी बात नहीं, अगर किसी अच्छे काम के लिये उनका उपयोग किया जाय। आज मुसलमानों के लिये पाकिस्तान से बड़ा और अच्छा कुछ नहीं।" 10 अगस्त को दिल्ली के अपने भाषण में उसने धमकी दी कि अगर कांग्रेस सिर्फ अपनी अस्थायी सरकार बनाती है तो वह बंगाल की स्वतंत्रता की घोषणा करेगा। उसने घोषणा की कि 'हम बंगाल को स्वतंत्र सरकार मान लेंगे और ऐसी केन्द्रीय सरकार को कोई कर बंगाल से

प्राप्त नहीं होगा। 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' के अवसर पर उसके एक सहकारी ने मुसलमानों को एक नारा दिया– 'लडके लेंगे पाकिस्तान'[1]।

जो प्रदर्शन देश को दो टुकड़ों में बाँटने वाला था उसकी सारी तैयारियाँ पूरी हो गई थीं। 16 अगस्त को सूर्योदय के करीब हुगली नदी पार कर बंगाली लोग हावड़ा से कलकत्ता आये। लाठी, छुरे, बोतल, लोहे के टुकड़ों से लैस। इस समय तो इनमें अधिकांश मुसलमान ही थे। गलियों और दरवाजों के पास छिपकर दुकान खुलने का ये इन्तजार करते रहे। जो स्थिति थी उसमें गैर–मुसलमान दुकानें ही खुलतीं। जैसे ही दुकानदार दुकान खोलता, उसके सिर पर लाठी पड़ती या छुरा भोंका जाता; फिर दुकान के सामान की लूट। पहले यह सब बड़े ही शान्त ढंग से शुरू हुआ। शायद किसी ने महसूस किया हो कि कितनी खतरनाक चीज की शुरूआत हो गई। एक अंग्रेज ने जो साइकिल पर अस्पताल जा रहा था, देखा कि एक झाड़ू देने वाला उसकी ओर भागा आ रहा है और एक भीड़ उसका पीछा कर रही है। वह साइकिल से उतर गया। भीड़ का एक आदमी उसके पास पहुंचा, इतनी जोर की लाठी मारी कि झाड़ू देने वाले के पैर की हड्डी टूटने की आवाज साफ सुनाई पड़ी। जैसे ही वह जमीन पर गिरा भीड का दूसरा आदमी झुका, उसका गला काटकर उसके कान काट लिये। बाकी भीड़ ने नज़ारे को देखकर सन्तोष से सिर हिलाया। फिर अंग्रेज को देखकर शुभ–अभिवादन किया और स्क्वायर की दूसरी ओर भीड़ चली गई।

शुरू में तो इक्की–दुक्की घटनायें हुईं। एक बूढ़ी औरत को रोका गया, चिढाया गया, एक आदमी से दूसरे आदमी के हाथ वह गई और जब उसने खौंसा या नाखून लगाया या किसी तरह का हमला किया तो अचानक खटाक की आवाज के साथ बुढ़िया के सिर पर लाठी का प्रहार! लंगड़े, लूले और भिखमंगों का खेल बन गया और कलकत्ता भर में उनकी कमी न रही। उनके ठेले छीन लिये गये और उनको या तो सड़कों पर कराहने के लिये छोड दिया गया या कूड़ादानों में ठूंस दिया गया। छोटी लडकियों और बूढ़ों को रेंगकर ऐसी जगह चलने पर मजबूर किया गया जहां पहले से गाय तैयार रखी गई थी। कलकत्ता में

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 20

धर्म के नाम पर छोड़ी गई गायों की कमी नहीं। फिर जबरदस्ती उनके हाथ में वह छुरी पकड़ा दी गई जिससे गायों का गला काटा गया। हिन्दू के लिये यह बड़ा ही घोर पाप था(बंगाल के अकाल में भी किसी हिन्दू ने जान—बूझकर किसी गाय का गला नहीं काटा और गो—मांस खाने का तो सवाल ही नहीं उठता)।

दोपहर तक हिंसा के बिखरे—बिखरे और छोटे—मोटे कारनामे ज्वाला के रूप में धधकने लगे। आग फैलने लगी। पहले तो खून और मारपीट का काम सिर्फ गुंडे करते थे, बाकी भीड़ तमाशा देखती थी और दुकानों की लूट—पाट में, गाड़ियों को उलटने में मदद करती थी। लेकिन धीरे—धीरे ये तमाशा देखने वाले भी कत्ल में हिस्सा लेने लगे। अब कलकत्ता के बहुत सारे हिस्सों में गुस्से या दुख—दर्द की तीखी आवाज़ आने लगी जो मन्द या तेज होती हुई चार दिनों तक नरक की यातना की तरह सुनाई पड़ती रही।

16 अगस्त,1946 को दो बजे शहीद सुहरावर्दी ने कलकत्ता मैदान की सार्वजनिक सभा में भाषण दिया। उसके चेहरे पर खुशी छाई थी। उसने अपने श्रोताओं को उनकी संख्या, उनके उत्साह और पाकिस्तान की उनकी कोशिशों के लिये धन्यवाद दिया। जब वह भाषण दे रहा था, दो गली पार लोगों का कत्ल हो रहा था। मैदान से आग का धुआँ साफ दिखाई पड़ता था। अब तक लोगों ने पेट्रोल के स्टेशनों पर कब्जा कर लिया था और पेट्रोल छिड़क कर दुकानों आदि में आग लगाई जा रही थी। लेकिन न तो सुहरावर्दी और न उसके अंगरक्षक पुलिस—फौज को यह सब दिखाई दिया। सच्ची बात तो यह थी कि कलकत्ता की पुलिस दंगे को रोकने में अपने को असमर्थ पा रही थी। शुरू में तो कठिनाई यह थी कि कत्ल और लूट का काम मुसलमान ही कर रहे थे—सहधर्मी। कलकत्ता की पुलिस के अधिकांश सदस्य मुसलमान थे। लेकिन तीसरे पहर तक धौंकनी आग सुलगा चुकी थी, बदले के लिये हिन्दू और सिक्ख निकल पड़े थे। मुसलमान गुंडों से सीधा मोर्चा लेने या अपने लोगों को बचाने का भी इरादा नहीं था उनका। कलकत्ता की भीड़ इस तरह काम नहीं करती। जब मुसलमानों की भीड़ इक्के—दुक्के हिन्दुओं और उनकी दुकानों की तलाश कर रही थी, हिन्दू और सिक्ख बेसहारा मुसलमानों की ताक में थे। बूढ़ों, बच्चों और औरतों की शामत थी। औरतों की छातियाँ

काट ली गईं, बूढ़ों की टाँगें तोड़ दी गईं, बच्चों के हाथ काट दिये गये। हिन्दुओं और मुसलमानों में सिर्फ एक जगह, रिपन कॉलेज में जमकर लड़ाई हुई। मुसलमानों ने मुस्लिम लीग का झण्डा फहरा दिया था। उसे उतारकर एक हिन्दू ने कांग्रेस का झण्डा फहरा दिया। नीचे दोनों दलों में थोड़ी देर के लिये मुठभेड़ हो गई। फिर दोनों दल भाग गये। वे जोखिम उठाने के लिये नहीं गये थे, वे तो गये थे दुश्मनों के बीच बेसहारा लोगों को अपंग बनाने के लिये, उनको कत्ल करने के लिये। हालांकि पुलिस मुख्य सड़क पर अश्रु गैस का प्रयोग कर उसे खाली करा देती थी, लेकिन पुलिस के हटते ही फिर भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। कलकत्ता में ऐसी गलियों—दर—गलियों की कमी नहीं जहाँ पुलिस के हटने का आसानी से इन्तजार किया जा सके।[1]

मि0 जिन्ना ने 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' का नारा लगाया था इसलिये कि अंग्रेज पाकिस्तान की मांग मानने के लिये तैयार नहीं थे। लेकिन एक बार जब कलकत्ता में दंगा शुरू हो गया तो वहां सिर्फ अंग्रेज ही सुरक्षित थे। कई अंग्रेज चौरंगी के ग्रेंड होटल में गुण्डों से घिरे हुये थे। गुंडों का नेता होटल से अंग्रेज़ों को निकाल देने के लिये राजी था। बाकी लोगों की सुरक्षा का सवाल नहीं था। अंग्रेजों ने एक बैठक बुलाई और निश्चय किया कि वे लोग होटल नहीं छोड़ेंगे। उसी दिन शाम को उन्होंने सिक्खों के एक दल को होटल की खिड़की से देखा जो एक जिन्दा मुसलमान के टुकड़े—टुकड़े कर रहा था और खुशी से उछल—कूद रहा था, चिल्ला रहा था। मि0 किम क्रिस्टेन ने पीछे चलकर लिखा— 'लड़ाई के अस्पतालों में काम करने के कारण मेरा कलेजा पत्थर का हो गया है। लेकिन लड़ाई भी ऐसी चीज नहीं। चितरंजन ऐवेन्यू होकर मैं मेडिकल कॉलेज की ओर साइकिल पर चला। मैं उम्मीद कर रहा था कि लड़ाई के अनुभवों का उपयोग करूँगा और जितना भी बन पड़ेगा, सहायता करूँगा। मेडिकल कॉलेज से सिर्फ दो सौ गज दक्षिण पर भीड़ कत्ल में जुटी हुई थी, जलती हुई गाड़ियों के बीच लाशें पड़ी थीं। मैं कुछ देर इन्तजार करता रहा। जब भीड़ गली में चली गई तो मैं अस्पताल की ओर आगे बढ़ा। अस्पताल में ही स्थिति की भयानकता का अन्दाज मिला। अस्पताल की गाड़ियों, पुलिस की गाड़ियों, फ्रेंड्स सर्विस यूनिट की गाड़ियों में भर—भर

---

1. मोसले, लिओनार्ड — भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 23

कर घायलों को लाया जाता था और खुली गाड़ियों और ठेलों में लाशों को। मैं रेडक्रॉस के एक ट्रक के पास गया और डाक्टरी के कुछ विद्यार्थियों के साथ काम में जुट गया। उन लोगों ने मेरी कमीज पर रेडक्रॉस का एक टुकड़ा लगा दिया और हम मिर्ज़ापुर की ओर गये। जहाँ लाशों की संख्या अधिक थी, उतरकर हम लोगों ने जाँच शुरू की— शायद जीवन का कोई चिन्ह कहीं बाकी हो। थोड़े से ऐसे लोग मिले, खून से लथपथ। स्ट्रेचर पर उनको लादा गया और चले अस्पताल की ओर जहाँ तिल रखने की भी जगह नहीं थी। दिन—रात यह खोज होती रही। हम लोग उत्तर पूर्व की ओर गये। फटे हुये सिर और टूटे अंगों वालों को निकटतम अस्पताल में पहुँचाया। भीड़ ने हर प्रकार के हथियारों का उपयोग किया था— भारी औजार, लोहे के डंडे, लाठियों में बंधे लोहे के टुकड़े। ठेलों में भरे ईंट—पत्थर मुठभेड़ की जगह जमा थे। एक आदमी लोहूलुहान पीठ देकर सड़क के किनारे बैठा था। उसे शीशे की खिड़की से नीचे फेंक दिया गया था। सड़क पर बैठा—बैठा वह छड़ी के छोर पर शीशे का टुकड़ा बाँध रहा था ताकि कुल्हाड़ी की तरह उसका उपयोग कर सके। सभी अस्पतालों में 'जगह खाली नहीं है' का नोटिस लगा था। डाक्टर और नर्स लगातार काम कर रहे थे। जिन विद्यार्थियों की डाक्टरी की किताबें अभी कोरी ही थीं उन्हें भी काम पर लगा दिया गया था। इस अनोखी शिक्षा में ऐम्बुलेंस को हिदायत थी कि सिर्फ उन्हें उठाया जाय जिनकी जान खतरे में हो।

पहले 48 घण्टे के बाद कलकत्ता पर मौत और वीरानेपन की हवा छा गई। बड़ी उमसवाली गर्मी थी। हलकी वर्षा भी हो रही थी। धुआँ और आग से हवा बोझिल थी। कभी—कभी साइकिल पर कोई अंग्रेज या फौज की जीप निकल जाती। सारा शहर थम गया था। कोई रेलगाड़ी हावड़ा या सियालदह नहीं आती थी। शहर की नालियों का पानी सड़क पर बह रहा था। इन बदबूदार नालियों में औरत, मर्द और गायों की लाशें पास—पास पड़ी सड़ रही थीं। चीलों का भोज हो रहा था। लाशों की संख्या 4000 तक पहुंच चुकी थी। घायलों की गिनती ही नहीं थी। लेकिन कहानी खतम नहीं हुई थी अब तक। अंग्रेजों के कमांड में फौज बुलाई गई थी और दूसरी जगहों से और भी फौज आ रही थी। अंग्रेज और गुरखा फौज को देखते ही भीड़ अपने कारनामे बन्द कर देती थी। कभी—कभी उसका स्वागत भी होता। बड़ी

शान्ति से फौज की ये टुकड़ियाँ सड़कों को साफ करतीं, भीड़ को तितर–बितर करतीं। अगर किसी मकान से चीख–पुकार की आवाज आती तो उसका पता लगातीं। लेकिन फौज को बुलाया ही देर से गया था। इसलिये वह असर ही नहीं पड़ा जो दंगे को पहले ही दिन खतम कर देता। फौज के आने के बाद सड़कों पर भीड़ का इकट्ठा होना और मुठभेड़ तो रुक गया, लेकिन अब भी कुछ चीजें ऐसी थीं जो फौज के लिये असम्भव थीं। गलियों में लाठीबाजी और छुरेबाजी अब भी चल रही थी।[1]

कलकत्ता के इस भयानक कत्ल के दूसरे दिन ही फौज बुलाई गई थी। पहले दिन ही सर फ्रेडिरिक बरो ने दंगे के इलाकों का अपना दौरा किया था लेकिन उसके आने के पहले ही भीड़ छिप जाती और सुहरावर्दी यह विश्वास दिलाने में सफल हो गया कि स्थिति काबू में है। जब हिन्दू और सिक्ख बदला लेने निकले तभी फौज की बुलाहट हुई और पहली बार सुहरावर्दी ने महसूस किया कि जिस दुखद घटना का श्री गणेश हुआ, वह कितनी बड़ी थी। कलकत्ता की यह बदकिस्मती थी कि उस क्षेत्र के प्रधान फौजी कमांडर (जी.ओ.सी) ले० जनरल सर फ्रांसिस टकर को स्टाफ कान्फ्रेंस के लिये ब्रिटेन बुला लिया गया था। उसके अधीनस्थों के हाथ फौजी फैसले थे। बहुत सारे हिन्दुस्तानी नेताओं के बारे में या बंगालियों की लड़ने की ताकत के बारे में टकर की राय बहुत अच्छी नहीं थी। लेकिन वह ऐसा भी आदमी नहीं था कि औरत, मर्द और बच्चों के कत्ल के समय किसी की आज्ञा की अपेक्षा रखता और हाथ पर हाथ धरकर बैठा रहता। लौटते ही उसने स्पष्ट कर दिया कि वह सर फ्रेडरिक बरोज को उसी दम टेलीफोन करता जब पहले ही दिन यह साफ हो गया था कि दंगों की गम्भीरता क्या है। एक साल बाद उसने साबित कर दिया कि गुण्डों को सर करने का उसके पास सीधा–सादा और कारगर तरीका है लेकिन इस समय यह फैसला उसके अधीनस्थों के हाथ था जो अनिश्चित थे, हिचकिचाहट के शिकार थे। धीरे–धीरे, बहुत ही धीरे–धीरे कलकत्ता की जिन्दगी वापस होने लगी। बुखार उतर गया, लेकिन पूरा शहर बहुत बड़े जख्म–जैसा था, जो अभी भरा नहीं था।

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ०सं० 23, 24

अंग्रेजों के अखबार 'स्टेट्समैन' ने लिखा– "दो दिन पहले जब हमने लिखा था, कलकत्ता की हालत दर्दनाक थी, उसके बाद हालत बदतर हो गई। जो भी विशेषण इसके लिये ठीक हो, हम लोगों ने जो कुछ देखा है, उसका कोई मुकाबला ही नहीं। आहतों की संख्या 3000 कूती गई हैं जो सड़कों पर मरे पड़े हैं। घायलों की संख्या कई हजार है और यह कहना मुश्किल है कि कितने घर या दुकान तहस–नहस हुये। यह दंगा नहीं है। इसके लिये सामन्तशाही युग का शब्द 'प्रबल उत्पात'(फ्यूरी) है। लेकिन प्रबल उत्पात में एक तरह की तत्क्षणता है और इस उत्पात का श्रीगणेश करने के लिये कुछ सोच–विचार, कुछ तैयारी की गई थी। जो भीड़ लोगों का सिर तोड़ती और कत्ल करती घूम रही थी, उसे हथियार सड़कों पर मिल गये थे या उनकी जेब से निकल आये थे, यह विश्वास नहीं किया जा सकता। हम लोगों ने पहले ही इस ओर ध्यान खींचा है कि कुछ लोगों को पेट्रोल और गाड़ियाँ आसानी से मिल गई थीं जबकि आम लोगों के लिये यह दुश्वार थीं। यह कल्पना मात्र नहीं है कि कलकत्ता में बाहर से लोग बुलाये गये थे।.......हजारों की जान गई। औरत, मर्द और बच्चों को अपंग करना ऐसी राजनीतिक दलील है जिसकी बीसवीं सदी में किसी को उम्मीद नहीं।[1]

हिन्दुओं का पक्ष लेने वाले अखबार 'अमृतबाजार पत्रिका' ने लिखा– "हमारे आधुनिक शहर में वहशियाना जंगलीपन का ऐसा प्रदर्शन हुआ है कि हिन्दू और मुसलमान सभी का सिर शर्म से झुक जाना चाहिये। हममें से जो सबसे बड़े हैं वे भी बाहरी दुनिया की नज़रों में कितने छोटे दिखाई पड़ते होंगे।"

इस खून–खराबी की जिम्मेदारी निश्चित करनी थी। 'स्टेट्समैन' ने, जिसका तत्कालीन सम्पादक मुसलमानों का तरफदार था, लिखा–"हिन्दुस्तान के सबसे बड़े शहर पर जो कयामत आई उसे साम्प्रदायिक दंगा नहीं कहा जा सकता, कम से कम जिस अर्थ में उसका आज तक उपयोग होता रहा है। तीन दिनों तक शहर में बेरोक–टोक गृह–युद्ध चलता रहा। इसकी खास जिम्मेदारी जिन लोगों पर है वह स्पष्ट है। गवर्नर(सर फ्रेडरिक बरोज)की आलोचना हुई है। हम भी नहीं समझते कि इस परीक्षा में उनका फल बहुत अच्छा

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 25

निकला। लेकिन परम्परागत इस पद के कारण बहुत बड़ी प्रतिभावाला ही ऐसे आकस्मिक संकट के समय कुछ कर पाता। इसकी प्रमुख जिम्मेदारी उन पर है जिनकी ओर हमने संकेत किया है– प्रान्तीय मुस्लिम लीग की कैबिनेट जिस पर बंगाल की शान्ति और अनुशासन का बोझ है और उसमें भी खास कर ऐसा आदमी जिसे बड़े अनुशासन का अनुभव है, वहाँ का मुख्यमन्त्री (सुहरावर्दी)। सारे हिन्दुस्तान में लीग के अनुसार शान्तिपूर्ण 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' के अवसर पर बंगाल में जहाँ लीग की मिनिस्ट्री है, यह खून–खराबी हो, हम लोगों को हैरत में डाल देती है।"

खुद सुहरावर्दी ने जवाब में कोई वक्तव्य नहीं दिया। पीछे चलकर उसने जो कार्रवाइयाँ कीं उनसे विश्वास होता है कि वह भी इस कत्ल से घबरा गया था। जवाहरलाल नेहरू और जिन्ना, दोनों ने तुरंत इसकी निन्दा की। मुस्लिम लीग के नेता ने एक वक्तव्य में कहा– मैं खुले तौर पर इसकी निन्दा करता हूँ और जिनकी हानि हुई है उनसे मेरी सहानुभूति है। अभी तो मुझे पता नहीं कि जान और माल के इस नुकसान के लिये, जिसका अखबारों में जिक्र है, कौन जिम्मेदार है। जो इसके लिये जिम्मेदार हैं उनको कानूनन सजा मिलनी चाहिये क्योंकि उनके काम मुस्लिम लीग की हिदायतों के बिलकुल खिलाफ हैं। उन्होंने दुश्मनों का काम किया है। शायद दुश्मनों की ओर से भड़कानेवालों का यह काम रहा हो।

लेकिन हिंसा के इस काण्ड की निन्दा के बावजूद मि० जिन्ना को सन्तोष ही हुआ होगा इस काण्ड के परिणामों से। क्या और कोई चीज इससे ज्यादा बेदर्दी से यह साबित कर सकती थी कि देश के आज़ाद होने पर हिन्दू और मुसलमान शान्तिपूर्वक नहीं रह सकेंगे और गृह–युद्ध होगा, यही उसका दावा था।

यह उम्मीद की जा सकती थी कि कांग्रेस के जवाहरलाल नेहरू और लीग के जिन्ना कलकत्ता आकर साथ–साथ घूमेंगे ताकि राजनीतिक लक्ष्य के लिये इस तरह की खूँरेजी के खिलाफ उनकी सम्मिलित भावना स्पष्ट हो सके। लेकिन दोनों को इस तरह के काम के लिये फुरसत नहीं थी। मि० जिन्ना मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटी के कान्फ्रेन्स में कांग्रेस के खिलाफ मोर्चेबन्दी के दावपेंच सुलझा रहे थे। जवाहरलाल नेहरू अन्तरिम सरकार की कैबिनेट का चुनाव (मुसलमानों को छोड़कर) कर रहे थे।

कलकत्ता के नागरिकों के साथ दुख–दर्द में शिरकत करने और आँखों–देखे हाल पर दुख–दर्द झेलने वाइसराय, लार्ड वेवेल कलकत्ता आये। उसने ही सुना कि इस खून–खराबी के बीच जब मुसलमान हिन्दू का और हिन्दू मुसलमान का कत्ल कर रहे थे, आशा की किरणें उस घने अन्धकार में भी दिखाई पड़ रही थीं। पूरे शहर में ऐसी घटनायें प्रकाश में आ रहीं थीं जब मुसलमान को बचाने में हिन्दू ने अपनी जान दे दी थी और हिन्दू को बचाने में मुसलमान ने अपनी जान का खतरा उठाया था, जब अन्त में हिन्दू और मुसलमान नौजवानों ने लीग और कांग्रेस के झण्डे को एक साथ बाँधकर भीड़ को तितर–बितर किया था और सड़कों पर जुलूस निकालकर 'हिन्दू–मुस्लिम एक हो' के नारे लगाये थे।[1]

रोंगटे खड़े कर देने वाला यह दृश्य था! कलकत्ता के बदसूरत शहर में भी सभ्यता का चिन्ह शेष था, अब भी कुछ हिन्दुस्तानी ऐसे थे जो कन्धे से कन्धा मिला कर काम कर सकते थे, लड़ सकते थे। धार्मिक मतभेद उनके रास्ते में नहीं आता था। उसके लिये नालियों में पड़ी लाशें उनके लिये निराशा के बदले आशा का प्रतीक थीं। शायद उनको देखकर सभ्यता का कुछ अंश, मानवता की एक रेखा देश के बददिमाग मुसलमानों, हिन्दुओं और सिक्खों में फिर से जाग उठे।

अगस्त, 1946 के इस कत्ल से बहुत नसीहतें लेनी थीं– कठिन, क्रूर, खूनी और व्यावहारिक।

लेकिन कुछ सप्ताह बाद यह विश्वास करना कठिन था (शायद महात्मा गांधी को छोड़कर) कि किसी ने भी कोई सीख ली हो।

न हिन्दुओं ने, न मुसलमानों ने, न अंग्रेजों ने।[2]

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 26
2. Ibid, P- 27

२. अन्तरिम सरकार का गठन व नेहरू

अन्तरिम सरकार का गठन दलों को निकट लाये और वास्तविक सत्ता सौंपने पर यह सम्भव हो कि सारी स्थिति का सामना मिलकर ही करें। वाइसराय ने जिन्ना और जवाहरलाल नेहरू से और वार्ता की। जवाहरलाल नेहरू ने सरकार गठित करने का निमंत्रण तब तक अस्वीकार कर दिया, जब तक सरकार की स्थिति और शक्ति का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख न कर दिया जाये। जिन्ना ने सीधी कार्रवाई के प्रस्ताव के बल पर उसे नकार दिया। अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति पाने के कारण वाइसराय ने जवाहरलाल नेहरू से अन्तरिम सरकार बनाने का प्रस्ताव देने को कहा। बम्बई में जवाहरलाल नेहरू ने जिन्ना से बातचीत की, पर उनमें कोई समझौता न हुआ। जो व्यक्ति ऐसा समझते थे कि अगर जिन्ना को सरकार का नेतृत्व सौंप दिया जाता तो अनेक गलतफहमियां दूर हो जातीं और सहयोग सम्भव हो जाता, वे उस समय के माहौल को नहीं जानते। वे मानो अवैयक्तिक रवैयों को व्यक्तिगत रूप से सुलझाने का सुझाव दे रहे थे। किसी भी तरह का कदम उठाने का समय बीत चुका था, देश का भविष्य खतरे में था। जवाहरलाल नेहरू उस जिन्ना को पहल का मौका देने को तैयार न थे, जो हर छूट तथा हर मौके का लाभ उठाने की ताक में रहता था और कांग्रेस के प्रति उसके विरोधी रवैये के कारण उसके साथ काम करना सम्भव न था।

जवाहरलाल नेहरू ने वाइसराय के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया और वे 2 सितम्बर 1946 को कार्य परिषद के उपाध्यक्ष और परराष्ट्र तथा राष्टमंडलीय सम्बन्ध विभाग के मंत्री बने। मौलाना आजाद, सरदार पटेल और राजेन्द्र प्रसाद भी उनकी टीम में थे। अतिरिक्त कांग्रेसी मुसलमान दूसरे सदस्य थे तथा स्वतंत्र सदस्य के रूप में तीसरे सदस्य थे। शफात अहमद खाँ गैर कांग्रेसी बल्देव सिंह सिक्ख सदस्य थे। सी.एस. भाभा को स्वतन्त्र व्यापारी के रूप में शामिल किया गया। महिलाओं और ईसाइयों के प्रतिनिधि के रूप में कुमारी अमृत कौर थीं। यह टीम छोटी थी। मुस्लिम लीग के शामिल होने की आशा से स्थान रिक्त रखे गये थे।

अन्तरिम सरकार ने प्रारम्भिक दिनों में सूझबूझ और स्फूर्ति का परिचय दिया। यह एक जैसी और संयुक्त थी और जवाहरलाल नेहरू ने इसको बहादुरी के संकल्प और उद्देश्य की भावना प्रदान की। कुछ शताब्दियों के बाद जनता की पहली स्वतंत्र सरकार अवसर को नहीं खो देना चाहती थी। जवाहरलाल नेहरू ने ऐसी नीति की घोषणा की जो आज भी कायम है, यानि जनता के लिये रहन–सहन के ऊँचे स्तर का लक्ष्य, साम्प्रदायिक सामंजस्य, अछूतोद्धार, सब लोगों को उपनिवेशवाद तथा जातीय भेदभाव से आजादी, सत्ता गुटों से निरपेक्षता, संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के साथ मित्रता, राष्ट्र मण्डल के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध, शेष एशिया के साथ घनिष्ठ बन्धन और विश्व संघ। उन्होंने सभी दलों से अपील की कि इन लक्ष्यों के लिये वे सहयोग करें। प्रारम्भ से ही जवाहरलाल नेहरू ने उस दृष्टिकोण से काम किया, जो एक स्वतंत्र देश के प्रधानमंत्री का होना चाहिये। प्रतिबन्ध थे और अन्तरिम सरकार के मंत्रियों को यदि देशी रियासतों में जाना होता था तो उन्हें पहले राजनीतिक विभाग को सूचना देनी पड़ती थी और राजनीतिक भाषण करने से बचना होता था। उन्होंने इसका विरोध किया और वाइसराय ने कहा कि वे इस बात का ध्यान रखें कि राजनीतिक विभाग सरकार की धारा के साथ काम करता है।[1]

वाइसराय ने जिन्ना के साथ इसलिये वार्ताएं शुरू की कि मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकार में शामिल हो। जिन्ना की मांगें थीं, जो जवाहरलाल नेहरू को बता दी गयीं थीं कि कांग्रेस को राष्ट्रीय मुस्लिम मनोनीत करने का अधिकार नहीं होना चाहिये, कि साम्प्रदायिक प्रश्नों पर कार्यकारिणी के निर्णयों को निषेध करने का अधिकार मुस्लिम लीग को होना चाहिये। कार्यकारिणी के उपाध्यक्ष का पद बारी–बारी से कांग्रेस और मुस्लिम लीग के सदस्यों में बदलना चाहिये कि मुख्य विभाग दो दलों में बराबर रूप से बांट दिये जायें, कि जो स्थान रिक्त हों वे वाइसराय दोनों दलों से पूछकर भरें और यह कि जो विभाग बांटे जायें उनमें दोनो दलों की रजामंदी के बिना कोई परिवर्तन न हो। जवाहरलाल नेहरू केवल इस बात के लिये तैयार थे कि मुस्लिम लीग को कार्यकारिणी परिषद की समन्वय समिति के उपाध्यक्ष

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 128, 129

का पद मिलना चाहिये, एक मुस्लिम मन्त्री केन्द्रीय धारा—सभा का नेता हो सकता है। साम्प्रदायिक प्रश्नों पर यदि कोई मतभेद हों तो वे संघीय न्यायालय को भेजे जा सकते हैं और जो स्थान खाली हों, उन्हें कार्यकारिणी परिषद भरे, वाइसराय नहीं। यद्यपि जिन्ना की अधिकांश मांगें स्वीकार नहीं की गयीं, पर वे इस बात के लिये राजी थे कि मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकार में शामिल हो। वे चाहते थे कि मुस्लिम लीग अन्दर रह कर सरकार को तोड़े। इस प्रकार मुस्लिम लीग विरोध के साथ अन्दर गई, यद्यपि इसे तब तक शामिल होने का कोई अधिकार नहीं था जब तक यह कैविनेट मिशन की दीर्घकालीन योजना को स्वीकार न करें।[1]

पन्द्रह अक्टूबर को अन्तरिम सरकार का पुनर्गठन हुआ। उसमें कार्यकारिणी परिषद में मुस्लिम लीग के जो पांच सदस्य थे, उसमें बंगाल से अनुसूचित जाति के एक सदस्य जोगेन्द्रनाथ मण्डल भी थे, जिनको यह अनोखी विशेषता प्राप्त थी, कि उन्होंने कुछ समय के लिये पाकिस्तान के मन्त्रिमण्डल की सदस्यता भी प्राप्त की, और अन्त में वे पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के साथ दुर्व्यवहार के कारण भारत भाग आये। नवनियुक्त मुस्लिम लीगी मंत्रियों के अनुसार अन्तरिम सरकार प्रत्यक्ष कार्रवाई आन्दोलन का एक मोर्चा बनना था और वेवेल का सदुद्देश्य, लेकिन प्रत्यक्षतः अस्वाभाविक प्रयोग, असफल ही होना था। उन्हें मुस्लिम लीग ने एक नया नमूना उपस्थित किया कि हिन्दू और मुसलमान सामंजस्य के साथ कार्य नहीं कर सकते और जवाहरलाल नेहरू ने केवल वावेल को अपनी दुश्चिन्तायें पहले ही बता दी थीं। मुस्लिम लीग ने जाब्ते से कैविनेट मिशन की योजना को स्वीकार नहीं किया और जिन्ना ने तब किसी प्रकार का वायदा भी नहीं किया था, जब कि उन्होंने वाइसराय को सहयोग देने का आश्वासन दिया था। जवाहरलाल नेहरू को, मुस्लिम लीग के इशारे पर होने वाले घटनाक्रमों के ढरकाव पर, बार—बार वेवेल को लिखना पड़ा, कभी विरोध करते हुये, कभी प्रतिरोध करते हुये और कभी चेतावनी देते हुये। जब मुस्लिम लीग ने अन्तरिम सरकार में प्रवेश किया तो विभागों के पुनर्वितरण पर जवाहरलाल नेहरू ने वाइसराय के इस अनुरोध को नहीं माना कि विदेश मंत्रालय, प्रतिरक्षा और गृह मंत्रालय मुस्लिम लीग को दे दिये जायें। यह सब भारत के

---

1. चेलापति राव, एम0 — आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 130, 131

भविष्य के लिये और भावी घटनाक्रम के लिये महत्वपूर्ण था। सरदार पटेल ने इस प्रश्न पर कड़ा रुख अपनाया। जब वेवल ने जिद की तो जवाहरलाल नेहरू ने त्यागपत्र देने की धमकी दी। वाइसराय झुके और मुस्लिम लीग को अन्य विभाग लेने पड़े। वित्त विभाग लियाकत अली खां को गया।

मुस्लिम लीगी मंत्रियों को अन्तरिम सरकार में बैठकर पाकिस्तान के लिये कार्य करना था और जिन्ना ने इस रणनीति के बारे में सार्वजनिक वक्तव्य भी दिये। उसका उद्देश्य ऐसी प्रत्येक वस्तु का विरोध करना था, जो पाकिस्तान की मांग के विरुद्ध है। जिन्ना ने पहले तो इस बात पर जोर दिया कि संविधान सभा को अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया जाय और जब वेवल ने उसका अधिवेशन बुलाया, तो मुस्लिम लीग के सभी सदस्यों को आदेश दिया कि वे उसका बहिष्कार करें। वेवेल को मूर्ख बनाया गया। उन्होंने मुस्लिम लीग को अन्तरिम सरकार में लाने के लिये कोशिश की थी, बिना इस बात को पक्का किये कि मुस्लिम लीग को कैविनेट मिशन की दीर्घकालीन योजना स्वीकार है या नहीं। उन्होंने तो दो विरोधी तत्वों को एक साथ लाकर रख दिया था। जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के मेरठ अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता आचार्य कृपलानी ने की थी, मुस्लिम लीग की चालों और उनमे वाइसराय की साठगांठ, दोनों की निन्दा की थी। वेवल ने उस भावना को त्याग दिया था, जिसके अन्तर्गत अन्तरिम सरकार पहले बनाई गई थी। उन्होंने वरिष्ठ ब्रिटिश अधिकारियों को मुस्लिम लीग के सांठगांठ के साथ कार्य करने की छूट दे दी थी। कांग्रेस ने दो बार त्यागपत्र देने की सोची और अब भी त्यागपत्र देने को तैयार थी। जिन्ना के लिये यह अखरने की बात थी कि जवाहरलाल नेहरू देश के प्रधानमंत्री होने की कोशिश कर रहे हैं। उनके लिये उनका यह दावा जरूरत से ज्यादा था। लेकिन कांग्रेस ने हमेशा यह आग्रह किया था कि अन्तरिम सरकार को एक औपनिवेशिक स्वराज्य वाली सरकार माना जाये और वाइसराय इसे जानते थे। जवाहरलाल नेहरू भावना पर जोर देते थे। जिन्ना साहब कानूनी रूप का फायदा उठा रहे थे।[1]

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 131, 132

३. १३ दिसम्बर, १९४६ संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत व नेहरू

मेरठ कांग्रेस की गम्भीर मुद्रा के बाद जवाहरलाल नेहरू को उनकी अनिच्छा होते हुये भी प्रधानमन्त्री एटली ने इस बात के लिये राजी कर लिया कि वह लन्दन में एक ऐसे सम्मेलन में भाग लें जिसमे दो कांग्रेस के प्रतिनिधि हों, दो मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि हों और एक सिक्ख हो। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने इसे चाल समझा। जवाहरलाल नेहरू अनुभव करते थे कि संवैधानिक योजना पर नये सिरे से विचार न होना चाहिये। एटली ने यह आश्वासन दिया कि कैबिनेट मिशन की योजना को या संविधान सभा के प्रारम्भ होने की तारीख को, जो 9 दिसम्बर तय की गई थी, बदलने का कोई इरादा नहीं है और कैबिनेट मिशन की योजना को कार्यान्वित करने की दिशा में ही वार्तायें होंगी। जिन्ना को, जो लन्दन जाने के लिये उतने ही अनुत्सुक थे, एटली ने यह आश्वासन दिया कि सम्मेलन में सभी प्रश्नों पर पूरी तरह विचार किया जायेगा। यह एक निराशाजनक सम्मेलन था।[1]

जवाहरलाल नेहरू को ब्रिटिश सरकार की उनके और कांग्रेस के प्रति समझदारी की कमी, यहां तक कि सहानुभूति की कमी पर दुःख हुआ। जब गतिरोध स्पष्ट हो गया तो ब्रिटिश सरकार ने छह दिसम्बर को एक वक्तव्य दिया, जिसमें उसने यह कहा कि वह समूहों की कार्य प्रणाली के बारे में मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण का समर्थन करती है। उन्होंने ऐसा उस कानूनी सलाह के आधार पर कहा था और संविधान सभा को यह अधिकार दिया गया कि वह इस तथा अन्य झगड़ों को संघीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है। इसका उद्देश्य मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों को प्रसन्न करना था और जब कांग्रेस ने समूह की योजना को संघीय न्यायालय के सामने ले जाना चाहा, तो लार्ड पैथिक लारैंस ने (जो भारत मन्त्री थे) यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार अपनी व्याख्या से नहीं हटेगी, भले ही यह प्रश्न संघीय न्यायालय को क्यों न सुपुर्द कर दिया जाये। इससे मुस्लिम लीग को और खुश किया

---

1. चेलापति राव, एम० — आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ० सं० 132, 133

गया। ब्रिटिश सरकार चाहती थी कि यदि संविधान सभा को सफल होना है तो मुस्लिम लीग का उसमे प्रवेश होना चाहिये और उसने यह घोषणा की कि इसका ऐसा कोई विचार नहीं था कि एक अधूरी संविधान सभा द्वारा तैयार किये गये किसी संविधान को देश के उन भागों पर लादा जाये, जो इसके लिये राजी नहीं थे। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग को ठीक दिशा में लाने के लिये समझाने का कोई प्रयास नहीं किया था।[1]

जवाहरलाल नेहरू के लिये यह लन्दन यात्रा निष्फल और कटु थी। ब्रिटिश सरकार ने इस बात का कोई प्रयास नहीं किया कि मुस्लिम लीग ठीक तरह से आचरण करे और अन्तरित सरकार के संचालन में सहयोग दे। इसके विपरीत ब्रिटिश सरकार ने एक घोषणा की, जिसने संविधान सभा की प्रतिष्ठा को चोट पहुंचाई और मुस्लिम लीग को सहयोग न देने के लिये और प्रोत्साहित किया। बरसों से चली आ रही गलतियों की श्रृंखला के बाद भी ब्रिटिश सरकार को अधिक प्रकाश नहीं मिला। सवाल इस दल या उस दल की ओर से चलने वाली चालों का नहीं था। ऐतिहासिक प्रक्रिया तो अनवरत रूप से कार्य कर रही थी। संविधान सभा की, जिसकी बैठक श्री सच्चिदानन्द सिन्हा की अस्थायी अध्यक्षता में प्रारम्भ हुई,

जवाहरलाल नेहरू द्वारा 13 दिसम्बर को उद्‌देश्य प्रस्ताव पर शानदार वक्तृता और उसको ऐतिहासिक दृष्टि के कारण, बड़ी अच्छी शुरूआत हुई। उन्होंने इतिहास की पृष्ठभूमि और भविष्य के परिप्रेक्ष्य में संविधान सभा के मोटे—मोटे लक्ष्यों का प्रतिपादन किया। उनका मन संविधान सभाओं के इतिहास से भरा हुआ था और उन क्रान्तियों से, जिनकी वे प्रतीक थीं। उन्होंने अमेरिकी, फ्रान्सीसी और रूसी क्रान्तियों के बारे में भाषण दिया। संविधान सभा के सदस्यों के लिये जिनमें केवल कांग्रेसजन ही नहीं थे, बल्कि प्रमुख उदारपंथी भी थे, निर्दलीय थे और गैर—मुस्लिम अल्पमतों के प्रतिनिधि थे तथा कुछ साधारण स्थानों से चुने हुये मुस्लिम सदस्य भी थे, मुस्लिम लीग के रोड़ा अटकाने वाले विरोध की तुलना में भविष्य का महत्व अधिक था। जवाहरलाल नेहरू का मन संविधान निर्माण के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं से भी भरा हुआ था। उन्होंने उनका अध्ययन किया था। उन्होंने अवसर के अनुकूल दृढ़ता और

---

1. चेलापति राव, एम० – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ० सं० 133

उपयुक्त भाषा में व्याख्या की जो निराशा थी वह दूर हो गई। यह केवल संविधान निर्माण का प्रश्न नहीं था, अपितु एक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति लाने का। जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि यह प्रस्ताव एक घोषणा है, एक संकल्प है, एक प्रतिज्ञा है और एक दायित्व है। राष्ट्रपिता गांधीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये जवाहरलाल नेहरू ने किसी के संरक्षण या किसी के हस्तक्षेप का प्रतिवाद किया। वे मुस्लिम लीग और ब्रिटिश साम्राज्य को लक्ष्य करके बोल रहे थे। यद्यपि जहां यह भी चाहते थे कि मुस्लिम लीग संविधान सभा में आये, वहां जवाहरलाल नेहरू ने ब्रिटिश सरकार को यह चेतावनी दी कि संविधान सभा ही भारत का संविधान बनायेगी, लंदन में बैठी ब्रिटिश संसद नहीं। संविधान सभा को जनवरी, 1947 तक इसलिये स्थगित कर दिया गया कि मुस्लिम लीग को उसमें सम्मिलित होने का समय मिले। जिन्ना ने यह मांग की कि इससे पूर्व मुस्लिम लीग संविधान सभा में आये, कांग्रेस ब्रिटिश सरकार की व्याख्या स्वीकार कर ले। अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति ने, जिसकी बैठक जनवरी में हुई थी, बहुत विरोध होते हुये भी ब्रिटिश सरकार की यह व्याख्या स्वीकार कर ली जिनके अनुसार सीमान्त प्रदेश, असम तथा सिक्खों को, परिस्थिति अनुसार वह जैसा समझें, निर्णय करने का अधिकार दिया गया।[1]

संविधान सभा की बैठक 20 जनवरी को दोबारा प्रारम्भ हुई और उसने उद्देश्य प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित कर दिया। अपने समापन भाषण में जवाहरलाल नेहरू ने मुस्लिम लीग को निमंत्रित किया, लेकिन साथ ही साथ यह भी घोषणा की कि वे काफी देर तक प्रतीक्षा कर चुके हैं और भविष्य में काम रुकेगा नहीं, चाहे कोई आये या न आये। जनवरी के अन्त में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस महासमिति के प्रस्ताव की निन्दा की और उद्देश्य प्रस्ताव को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि यह संविधान सभा की क्षमता से बाहर था। उसने ब्रिटिश सरकार से यह मांग की कि वह कैबिनेट मिशन योजना को वापस ले ले और संविधान सभा को बर्खास्त कर दे। फरवरी में कांग्रेस ने यह मांग की कि मुस्लिम लीगी मंत्रियों को अन्तरिम सरकार से हटा दिया जाये। यह तलवारों की लड़ाई थी, और सरदार पटेल ने इस

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 134

प्रकार के कुछ शब्दों का प्रयोग भी किया था।[1]

ब्रिटिश सरकार इस समस्या को खत्म करना चाहती थी, पर उसे यह नहीं मालूम था कि कैसे शुरू किया जाये और उसने एटली के द्वारा 20 फरवरी को एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें यह घोषणा की गयी कि, "इस बात का निश्चित इरादा है कि उत्तरदायी भारतीय हाथों में सत्ता का हस्तान्तरण किसी ऐसी तारीख तक कर दिया जाये जो जून 1948 के बाद की न हो, और यदि एक संविधान उस समय से पहले पूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त संविधान सभा नहीं बना सकेगी तो ब्रिटिश सरकार को यह सोचना पड़ेगा कि किन को ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय सरकार की सत्ता सौंपी जाये और उस निश्चित तिथि को क्या यह पूरी की पूरी ब्रिटिश भारत के लिये किसी प्रकार की केन्द्रीय सरकार को या कुछ क्षेत्रों में वर्तमान प्रान्तीय सरकारों को या किसी अन्य प्रकार से जो बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण लगे और जो भारतीय जनता के सर्वोत्तम हितों में हो।" भारत से हटने की यह तैयारी कुछ वर्ष देर से आई। यदि ब्रिटिश सरकार 1930 या 1942 में भी हटने की उत्सुकता दिखाती तो विभाजन नहीं होता और खून खराबी से बचा जा सकता था।

फरवरी 1947 में भी भारत छोड़ने की इच्छा एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम था और जवाहरलाल नेहरू ने इसको इसी प्रकार से स्वीकार किया। ब्रिटिश सरकार ने स्वयं को एक दुविधा में डाल दिया। यदि उसने संविधान सभा को समाप्त किया तो यह भारत की एक क्रान्तिकारी संस्था हो जायेगी, जैसी कि फ्रान्स में स्टेट्स जनरल हुई थी। उसके लिये यह भी मुश्किल था कि मुस्लिम लीग के मंत्रियों से निकल जाने को कह दे। उसने भारत से हटना ही उचित समझा और उसे भारत के ऊपर थोप दिया। उसने यह भी स्वीकार किया कि वेवल ने गड़बड़ी की है और उन्हें वापस बुला लिया।[2]

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 135
2. Ibid, P- 136

४. लार्ड लुई माउण्टवेटन वाइसराय बने- राजनीतिक हल के लिये प्रयत्न व नेहरू का योगदान

लार्ड माउंटवेटन को उत्तराधिकारी बनाया कि वे फरवरी के निर्णय को लागू करें। एक सुन्दर सिपाही के, जो निष्ठावान और सदाशयी था, जिसकी कविता में दिलचस्पी थी, पर जिसकी राजनीति में कोई गति नहीं थी, स्थान पर एक बढ़िया नाविक आया जिसका व्यक्तित्व था और जिसमें निर्णय लेने की क्षमता थी, जिसका तौर–तरीका शानदार मगर कुशल था और जो काफी जवान था। ब्रिटिश सरकार के हाथ में अभी भी पहल थी, क्योंकि कोई नहीं जानता था कि यह किस प्रकार भारत से हटेगी, कहां से हटेगी और किस को केन्द्र या प्रान्तों में सत्ता का हस्तांतरण करेगी। पाकिस्तान निकट दिखाई दे रहा था, यद्यपि उससे बचा जा सकता था। चर्चिल ने कहा था कि भारत का विभाजन ही नहीं होगा, बल्कि उसके टुकड़े टुकड़े किये जायेंगे और उसे ऐसे पुतलों के हाथ में सौंपा जायेगा जिनमें भूसा भरा होगा।[1]

माउंटवेटन के भारत आने के समय विचारों में कड़ाई आ चुकी थी तथा अधिकारियों की भारी साजिश के प्रमाण थे। मुसलमानों के बहुमत का प्रान्त पंजाब संघर्ष क्षेत्र बना हुआ था– कारण यह था कि अधिकतर मुस्लिम सीटों पर विजयी होने के पश्चात भी मुस्लिम लीग के हाथों में प्रशासन की बागडोर नहीं थी। खिजर हयात खां के नेतृत्व में मिलीजुली यूनिपरिट सरकार थी। कांग्रेस और सिक्खों का विरोध हो रहा था तथा तीन प्रमुख समुदाय शक्ति संघर्ष के लिये निजी सेनाओं की भर्ती कर रहे थे। मुख्यमंत्री ने उन्हें गैरकानूनी घोषित करने में देर की और जब जनवरी, 1947 में मुस्लिम लीग ने सीधी कार्रवाई करने का प्रस्ताव स्वीकार किया तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया तो वे शिथिल पड़ गये थे। उन्होंने सार्वजनिक सभाओं पर से प्रतिबन्ध हटा लिया, मुस्लिम लीग के राजनेता बंदियों को रिहा कर दिया तथा ब्रिटिश सरकार की फरवरी की घोषणा के पश्चात पद से त्याग पत्र दे देना ही

---

1. चेलापति राव, एम० – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ० सं० 136

उचित समझा। पंजाब में मिली जुली सरकार के कारण धर्मनिरपेक्षता का जो वातावरण था सरकार के साथ ही वह भी समाप्त हो गया। वहां मुस्लिम लीग ने मंत्रिमण्डल बनाया। सिक्खों ने विशाल सभा आयोजित की जिसमें मास्टर तारासिंह ने कार्रवाई करने का आह्वान किया। पंजाब में अव्यवस्था फैल गई, अनेक स्थानों पर बड़े पैमाने पर दंगे हुये और गवर्नर ने प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। सर्वाधिक क्षति लाहौर की हुई।[1]

मार्च में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई। स्थिति पर गम्भीरता से विचार किया गया। कार्यकारिणी ने ब्रिटिश सरकार को स्पष्ट कर दिया था कि संविधान सभा द्वारा तैयार संविधान केवल उन क्षेत्रों पर ही लागू होगा, जो इसे स्वीकार करेंगे। कार्यकारिणी का मत था कि ब्रिटिश सरकार के निर्मम तरीकों के कारण स्थिति और खराब हुई है। यह मत कांग्रेस की नीति के अनुरूप ही था लेकिन, मुस्लिम लीग यदि अब भी बटवारा चाहती है तो इसका अर्थ यह होता है कि पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल जैसे गैर मुस्लिम बहुमत के क्षेत्रों को भी संविधान स्वीकार करने और भारतीय यूनियन में सम्मिलित होने से नहीं रोका जा सकता था। पंजाब और बंगाल के मिले हुये क्षेत्रों के अल्पसंख्यकों के लिये यह आश्वासन आवश्यक था।[2]

माउंटवेटन 22 मार्च को आ पहुंचे। राजनैतिक नेताओं, तरह–तरह के राजनेताओं से जिनमें प्रमुख तथा दूसरे भी थे, उन्होंने अनेक बार विचार–विमर्श किया। आरम्भ से ही उन्होंने जवाहरलाल नेहरू से, जिनसे वे मलाया में मिल चुके थे, निकट के सम्बन्ध स्थापित किये। बाद में ये सम्बन्ध मैत्री के रूप में विकसित हुये। इस समय तो माउंटवेटन को एक निराशाजनक स्थिति का सामना करना था। वे तेजी से निर्णय ले रहे थे जैसा कि बाद में स्पष्ट हुआ कि उनके निर्णय आवश्यकता से पूर्व ही हो गये थे। कैविनेट मिशन की योजना से कोई लाभ नहीं था तथा स्थिति को देखते हुये बंटवारा ही तर्क संगत लगता था। गांधीजी ने प्रस्ताव रखा कि अन्तरिम सरकार मुस्लिम लीग को सौंप दी जाये। कुछ माह पूर्व

---

1. चेलापति राव, एम० – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ० सं० 136, 137

2. **Ibid, P- 137**

तो ऐसे प्रस्ताव से शान्तिपूर्ण वातावरण तैयार हो सकता था, लेकिन अब यह एक खतरनाक कदम था। इसका अर्थ मुस्लिम लीग को जरूरत से अधिक महत्व देना होता। गांधीजी का प्रस्ताव भावनात्मक सद्भावना भले ही हो, परन्तु यह व्यावहारिक नहीं था। माउंटवेटन की दृष्टि में विभाजन ही व्यावहारिक कदम था। अगर मुस्लिम लीग पर एकता थोपी जाती तो इसका परिणाम ऐसा गृह युद्ध होता, जिस पर नियंत्रण नहीं हो पाता। जवाहरलाल और अन्य अधिकांश कांग्रेसी नेता मुस्लिम लीग को यदि वे चाहें, पाकिस्तान देने के लिये तैयार थे, लेकिन शर्त यह थी कि पाकिस्तान में भारत के उन भागों को जो पाकिस्तान में शामिल न होना चाहें तो भारतीय यूनियन में सम्मिलित होने की छूट मिले। पाकिस्तान का स्वरूप खण्डित होना था, यदि मुस्लिम लीग चाहे, तो यह ले सकती है। एक क्षीण आशा थी कि जिन्ना इसे स्वीकार न करें।[1]

माउंटवेटन का अगला प्रयास राजनेताओं से इस विषय में विचार–विमर्श करना था कि बंटवारे की सबसे अच्छी सूरत क्या हो सकती है। इसके लिये भी समझौते की आवश्यकता थी और उन्होंने समझौता कराने के लिये अपनी योग्यताओं का काफी हद तक उपयोग किया। बंटवारे की एक योजना पर शिमला सम्मेलन में विचार हुआ और इसे स्वीकृति प्रदान कर दी। बाद में इसमें संशोधन हुआ और जवाहरलाल नेहरू ने संशोधित योजना को अस्वीकार कर दिया। जवाहरलाल नेहरू आत्मनिर्णय के तर्क संगत आधार और संवैधानिक सिद्धान्त पर अड़े हुये थे। उनका कहना था कि पाकिस्तान भारतीय यूनियन के अनिच्छा हो अलग होने वाले क्षेत्रों से बनेगा तथा भारतीय सरकार ब्रिटिश की उत्तराधिकारी सरकार बनेगी जिसके पास स्वतंत्र औपनिवेशिक सरकार की प्रतिष्ठा और शक्ति होगी।[2]

---

1. चेलापति राव, एम० – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ० सं० 137, 138
2. Ibid, P- 138

९. भारत विभाजन का प्रस्ताव - नेहरू की प्रतिक्रिया।

राजनेताओं के साथ 2 जून के सम्मेलन में समझौता करा पाने से पूर्व माउंटवेटन के सामने और भी कठिनाइयां आई। गांधीजी के प्रार्थना सभाओं में दिये गये भाषणों से स्पष्ट था कि वे पाकिस्तान के लिये तैयार न थे, भले ही मुस्लिम लीग तलवार की नोंक पर इसकी मांग करे। जिन्ना को कांग्रेस अध्यक्ष, कृपलानी की उपस्थिति पर ऐतराज था, परन्तु जब इसमें एक ओर मुस्लिम लीगी नेता को शामिल कर लिया गया तो वह तैयार हो गये। जिन्ना अपने सहयोगियों और जनता से विचार–विमर्श किये बिना बंटवारा योजना को औपचारिक रूप से समर्थन देने को तैयार न थे। लेकिन जब माउंटवेटन ने यह घोषणा की कि श्री जिन्ना ने मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण पर सहमति का आश्वासन दिया है तब उन्हें भी इसके पक्ष में सिर हिलाना पड़ा। 2 जून के सम्मेलन में अनौपचारिक रूप से स्वीकृत प्रस्तावों को औपचारिक सहमति प्रदान की गई। 3 जून को राजनेताओं ने अपने समझौते की जनता में घोषणा की। जवाहरलाल नेहरू ने दुखी दिल से प्रस्तावों का समर्थन किया, परन्तु उनके दिमाग में स्पष्ट था कि सही रास्ता यही था। जिन्ना ने माउंटवेटन की निष्पक्षता की सराहना की; अपने सहयोग की पेशकश की तथा सीमान्त प्रदेशों में मुस्लिम लीग का आन्दोलन समाप्त करने का आह्वान किया। उन्होंने सभी समुदायों से हिंसा त्यागने की भी अपील की। पंजाब में सिक्खों का भी विभाजन होना था। उनकी ओर से सरदार बलदेव सिंह ने समझौते पर हस्ताक्षर किये।[1]

माउंटवेटन योजना में, या जैसा कि यह 3 जून योजना के नाम से प्रसिद्ध है; उस राजनैतिक प्रक्रिया की व्याख्या थी जिसके अनुसार बटवारे की रेखा बनाई जानी थी। बंगाल, पंजाब और सिंध में प्रान्तीय धारा सभाओं को इस बारे में निर्णय लेने थे। बंगाल और पंजाब में विधान सभायें दो पक्षों– मुस्लिम और गैरमुस्लिम जिलों में विभाजित होनी थीं तथा यदि एक भी पक्ष बंटवारे के पक्ष में हो तो बंटवारा होना था और यदि दोनों पक्ष मिलकर यह निर्णय करें कि पंजाब एक रहेगा तो विधान सभा में इस बात पर मतदान होगा कि वह किस

---

1. चेलापति राव, एम० – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ० सं० 138, 139

संविधान सभा के साथ रहना चाहती है। सीमा प्रदेश में जनमत संग्रह होना था। यदि बंगाल बंटवारे के पक्ष में हुआ तो असम के सिलहट जिले में जहां मुसलमानों की संख्या अधिक थी, जनमत संग्रह होना था। यदि वहां के लोग पाकिस्तान से मिलने के पक्ष में हुये तो इसे पूर्व बंगाल में जाना था। सत्ता जून 1948 से पूर्व हस्तान्तरित होनी थी और इस प्रकार दोनों सरकारों को जिन्हें प्रभुत्व सम्पन्न देश का दर्जा मिलना था, अपनी संविधान सभाओं के माध्यम से भी यह निर्णय करना था कि वे राष्ट्रमण्डल में शामिल होंगी अथवा नहीं। मुस्लिम लीग कांउसिल ने पंजाब और बंगाल के विभाजन का सिद्धान्त अस्वीकार करते हुये योजना स्वीकार करने के पूर्ण अधिकार श्री जिन्ना को दे दिये। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की 14–15 जून की बैठक में यह योजना 29 के मुकाबले 153 मतों से स्वीकार कर ली गई। 36 सदस्यों ने मत नहीं दिये। गांधीजी उपस्थित थे और वे बंटवारे के विरुद्ध थे, लेकिन उन्होंने न तो अपना विरोध प्रकट किया और न ही मत विभाजन को चुनौती ही दी। कांग्रेस सोशिलिस्टों ने इसका बहिष्कार किया। कांग्रेसी मुस्लिम और कुछ अन्य इसके विरुद्ध थे। अत्यन्त कष्ट और दुख के साथ यह निर्णय लिया गया। सरदार पटेल का स्पष्ट मत था कि बीमार अंग को काट देना ही बेहतर है। जवाहरलाल नेहरू और अन्य नेताओं के लिये ऐसा लगता था कि स्थिति ही कुछ ऐसी बन गई थी कि उन्हें आत्मनिर्णय का तर्क स्वीकार करना ही पड़ा,क्योंकि इसकी जड़ में 'सीधी कार्रवाई' और अनेक वर्ष से चला आ रहा साम्प्रदायिक अविश्वास भी तो था।[1]

15 अगस्त सत्ता के हस्तांतरण का दिन निश्चित किया गया। अन्तरिम सरकार की बंटवारा समिति बंटवारे और सत्ता के हस्तान्तरण के दुहरे काम के लिये प्रशासकीय व्यवस्थायें करने की उत्तरदायी थी। माउंटवेटन इसके अध्यक्ष थे। सरदार पटेल और डा0 राजेन्द्र प्रसाद कांग्रेस के प्रतिनिधि थे। दो वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों की एक संचालन समिति गठित की गई जिसे सशस्त्र सेनाओं और सम्पत्ति के विभाजन जैसे विषयों पर विचार करने वाले विशेषज्ञ समितियों और उप समितियों के काम का समन्वय करना था। सशस्त्र सेनाओं पर संयुक्त प्रशासकीय नियंत्रण अप्रैल, 1948 तक दूसरी बार कमांडर–इन–चीफ बने

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 139, 140

औचिनलेक के पास रहना था, लेकिन संचालन का नियंत्रण सत्ता के हस्तांतरण के साथ ही दोनों प्रभुत्व सम्पन्न सरकारों के हाथ में चला जाना था। औचिनलेक, समन्वयन के लिये, संयुक्त रक्षा–परिषद् के प्रति उत्तरदायी थे। इस रक्षा परिषद में माउंटवेटन तथा उत्तराधिकारी सरकारों के रक्षा मंत्री थे। कमांडर–इन–चीफ का नाम सुप्रीम कमांडर रखा गया वह भी रक्षा परिषद का सदस्य था। सेना के बंटवारे में सबसे कठिन काम प्रत्येक सदस्य का विकल्प जानना था।[1]

सीमा प्रदेश में कांग्रेस मंत्रिमण्डल कार्य कर रहा था, वह अनुभव कर रहा था कि उन को धोखा दिया गया है। कांग्रेस नेताओं के मन में यह था कि सीमा प्रान्त को हम ने धोखा दिया। सीमा प्रान्त भारत से बहुत दूर था और जनमत संग्रह से विस्फोटक सम्भावनायें थीं। सबसे अलग पड़े, खान बन्धुओं ने पठानिस्तान का प्रस्ताव रखा। पठानिस्तान एक अलग राज्य बनता जिसमें सीमा प्रान्त और उसके साथ लगे कबायली क्षेत्र शामिल होते। परन्तु माउंटवेटन योजना के अन्तर्गत विकल्प केवल दो ही थे भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित होना। लालकुर्ती दल ने जनमत संग्रह का बहिष्कार किया और उसका परिणाम यह निकला कि भारी बहुमत पाकिस्तान के पक्ष में रहा। आशा के अनुकूल पंजाब और बंगाल में निर्णय विभाजन के पक्ष में तथा सिन्ध, बुलोचिस्तान और सिलहट जिले में जनमत पाकिस्तान के पक्ष में रहा। सीमा प्रदेश की चिन्ता सदा जवाहरलाल नेहरू को सताती रही और वे कभी खान बन्धुओं की भावी स्थिति को भुला नहीं सके। खान बन्धुओं से उन्हें सदा प्रेम रहा।[2]

---

1. चेलापति राव, एम0 – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ0 सं0 140
2. Ibid, P- 141

६. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम और नेहरू

लार्ड माउन्टवेटन ने प्रमुख भारतीय राजनीतिक नेताओं जिनमें जवाहरलाल नेहरू और अन्य दलों के लोग थे उनसे मतैक्य प्राप्त कर लिया था और ब्रिटिश सरकार ने अपने बचनों का पालन करते हुये अपना विधेयक प्रस्तुत किया। भारतीय स्वतंत्रता विधेयक कामन्स सभा में प्रधानमंत्री एटली द्वारा 15 जुलाई,1947 को प्रस्तुत किया गया और लार्ड्स सभा में 16 जुलाई को। इसके पारित होने में कम से कम समय लगा और 18 जुलाई 1947 को इस पर शाही हस्ताक्षर भी हो गये। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में भारत और पाकिस्तान के लिये किसी नये संविधान का प्रावधान नहीं था। यह केवल ऐसा अधिनियम था जिसमें "भारत तथा पाकिस्तान के प्रतिनिधियों को अपना संविधान बनाने की अनुमति दी गई थी और संक्रमण के अति कठिन समय के लिये प्रावधान किये गये थे।" दूसरे शब्दों में इस अधिनियम के द्वारा केवल औपचारिकता पूरी की गई थी और 3 जून 1947 की योजना में श्री एटली द्वारा दिये गये वचनों को वैधानिक रूप दिया गया था। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में केवल बीस धारायें थीं जिनको निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है[1] :—

1. 15 अगस्त,1947 से भारत में दो उपनिवेश पाकिस्तान और हिन्दुस्तान स्थापित कर दिये जायेंगे।
2. हिन्दुस्तान प्रदेश में वे सभी प्रदेश सम्मिलित होंगे, सिवाय उस प्रदेश के जो अब पाकिस्तान कहलायेगा। पाकिस्तान के प्रदेश में सिन्ध, ब्रिटिश बलोचिस्तान, उत्तरपश्चिमी सीमा प्रान्त, पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगाल सम्मिलित होंगे। इन अन्तिम दो प्रान्तों की सुनिश्चित सीमायें एक सीमा आयोग द्वारा निश्चित की जायेंगी।
3. वे सभी संधियां तथा अनुबन्ध जो महामहिम की सरकार तथा भारतीय शासकों के बीच में है, उस दिन से समाप्त हो जायेंगे। शाही उपाधि से "भारत का सम्राट" शब्द समाप्त हो जायेगा। भारतीय राजाओं को इन दोनों नये भारत के एक ही व्यक्ति इन दोनों राज्यों

---

1. ग्रोवर, बी० एल० एवं यशपाल—भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, पृ०सं० 124, 125, 126

का गवर्नर–जनरल भी रह सकता है।

4. प्रत्येक राज्य के लिये एक–एक गवर्नर–जनरल होगा जो महामहिम द्वारा नियुक्त किया जायेगा और वह इस राज्य की सरकार के प्रयोजन के लिये महामहिम का प्रतिनिधित्व करेगा। इसमें यह भी प्रावधान था कि यदि दोनों राज्य चाहें तो वही व्यक्ति इन दोनों राज्यों का गवर्नर–जनरल भी रह सकता है।

5. इन दोनों नये राज्यों, भारत तथा पाकिस्तान के विधान मण्डलों को पूर्ण अधिकार होगा कि वे अपने राज्यों के लिये कानून बना सकें, जिसमें विदेश क्षेत्राधिकार अथवा अपरदेशीयता के प्रयोग के लिये भी कानून सम्मिलित होंगे।

6. संयुक्त राज्य की संसद द्वारा पारित अथवा सपरिषद राजा द्वारा दी गई, आज्ञा 15 अगस्त 1947 के पश्चात् इन दोनों राज्यों में वैध नहीं होगी। संक्षेप में 15 अगस्त,1947 के पश्चात अंग्रेजी संसद का भारत पर क्षेत्राधिकार समाप्त हो जायेगा।

7. 15 अगस्त,1947 के पश्चात् महामहिम की सरकार अंग्रेजी भारत सरकार के शासन अथवा रक्षा के लिये उत्तरदायी नहीं होगी।

8. केन्द्रीय विधान सभा और राज्य परिषद स्वयमेव भंग कर दी जायेंगी और इन नये दो राज्यों की संविधान सभायें अपने–अपने राज्यों के लिये विधान मण्डल की शक्तियों का प्रयोग करेंगी।

9. संक्रमण काल के लिये अर्थात जब तक कि नये संविधान प्रत्येक राज्य द्वारा नहीं अपना लिये जाते तब तक दोनों राज्यों का शासन यथासम्भव भारत सरकार अधिनियम 1935 के अनुरूप ही चलाया जायेगा जिसमें आवश्यकतानुसार उपेक्षा, जोड़, परिवर्तन इत्यादि किया जा सकेगा जो गवर्नर–जनरल की आज्ञा द्वारा होगा।

10. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिये गवर्नर जनरल को आवश्यक शक्ति दी गई।

11. इन नये राज्यों की सेवा में लगे उन पदाधिकारियों के लिये जिनकी नियुक्ति भारत सचिव ने की हुई थी, पूर्ण सुरक्षा दी गई। हां, भारत सचिव को भविष्य में इस प्रकार की नियुक्ति करने

का कोई अधिकार नहीं होगा।

12. महामहिम की भारतीय सेना के दोनों राज्यों में बंटवारे के लिये गवर्नर जनरल को आज्ञा देने का अधिकार होगा और जब तक यह बंटवारा पूरा न हो जाय वही इस सेना की कमान तथा शासन के लिये उत्तरदायी होगा। अपने–अपने भाग में आई सेना के शासन के लिये दोनों राज्य ही पूर्ण रूप से उत्तरदायी होंगे।

13. इसी प्रकार भारत सचिव तथा भारत गृह लेखा आयुक्त के कार्य को बनाये रखने के लिये भी संक्रमणीय प्रावधान बनाये गये।

14. अदन जिसका शासन उस समय तक भारत सरकार के पास था अब अंग्रेज सरकार के अधीन कर दिया गया। इसके उपरान्त इस अधिनियम का नाम "भारत स्वतंत्रता अधिनियम 1947" रखा गया।

15. इस अधिनियम के प्रावधान के अनुसार पाकिस्तान 14 अगस्त को तथा भारत 15 अगस्त,1947 को स्वतंत्र हो गये।

माउंटवेटन दोनों प्रभुत्व सम्पन्न राष्ट्रों के गवर्नर जनरल बनने थे और समन्वय का कार्य भी उनके जिम्मे था। कांग्रेस ने उन्हें भारत का गवर्नर जनरल बनाने का प्रस्ताव रखा और सोचा कि पाकिस्तान भी ऐसा ही करेगा। जिन्ना ने स्वयं गवर्नर जनरल का पद स्वीकार करने का निर्णय करके राजनीतिक और संवैधानिक कठिनाई उत्पन्न कर दी। ऐसा लगता था कि जिन्ना प्रधानमंत्री बनकर जवाहरलाल के समकक्ष नहीं रहना चाहते थे, बल्कि उनके कुछ ऊपर। वे यह दिखाना चाहते थे कि पाकिस्तान कांग्रेस की अपेक्षा ब्रिटेन के प्रभुत्व में कम है।[1]

---

1. चेलापति राव, एम० – आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, पृ० सं० 142

७. देश का विभाजन-भारत व पाकिस्तान के रूप में व नेहरू

अगस्त, 1947 तक लगभग एक करोड़ साठ लाख हिन्दुओं, सिक्खों और मुसलमानों को घरबार छोड़कर खून की प्यासी भीड़ से बचने के लिये भागना पड़ा। उसी अरसे में 6,00,000 मारे गये। नहीं, सिर्फ मारे नहीं गये, बच्चों की टाँग पकड़कर दीवारों पर पटक दिया गया, लड़कियों के साथ बलात्कार हुआ और उनकी छातियाँ काट ली गईं। गर्भवती औरतों के पेट चीर दिये गये। हिन्दुस्तान के इतिहास का यह ऐसा हिस्सा था जब पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार में औरतों को मुगलकालीन हरमों की याद दिलानी पड़ती थी कि गर्भ से बचने के लिये हमेशा छटपटाते रहो। इस समय लाशों से भरी गाड़ियां लाहौर आतीं और उन पर लिखा होता– भारत की आरे से उपहार। इसी तरह सिक्खों से भरी गाड़ी को क़त्ल कर उस पर लिख दिया गया– पाकिस्तान की ओर से उपहार। जिस देश में गांधी के नेतृत्व में पूरे देश ने अहिंसा का व्रत ले रखा था, ऐसी लूट, ऐसा बलात्कार और ऐसी खूंरेज़ी हुई जिसे चंगेज खां के बाद दुनिया ने देखा ही नहीं था। उस समय एक पत्रकार ने एक पुस्तिक लिखी थी 'फ्रीडम मस्ट नाट स्टिक' (आजादी में दुर्गन्ध नहीं होनी चाहिये) लेकिन सारा हिन्दुस्तान दुर्गन्ध से भर गया– अनगिनत लाशों, काले कारनामों, सुलगती हुई आग की दुर्गन्ध से।[1]

1947 भारत के चीलों और गीधों के लिये बड़ा ही शानदार वर्ष था। सड़ते हुये मांस की खोज नहीं करनी पड़ती थी। जानवरों और आदमियों की लाशें हर तरफ़ बिखरी हुई थीं। पश्चिमी पंजाब से आने वाले सिक्खों और हिन्दुओं के एक जत्थे की लम्बाई 74 मील थी। उन पर हमला करने वाले छिपे लोगों को आहट नहीं लेनी पड़ती थी। हैजा आदि खतरनाक बीमारियों के कारण उनकी दुर्गन्ध ही पहले बता देती थी और उनकी मानसिक स्थिति ऐसी थी कि दूसरी ओर से आते हुये मुसलमानों के जत्थे को देखकर उनमें से कुछ खुद थोड़ी बहुत खुंरेजी के लिये दौड़ पड़े।

अगर सिक्ख पहले चिढ़े हुये और गर्म थे तो अगस्त 1947 को

---

1. डी0 एफ0 कराका, फ्रीडम मस्ट नाट स्टिक,

बाउण्डरी कमीशन के फैसले के प्रकाशित होने पर गुस्से से पागल हो गये। उन्हें जिस बात का डर था उससे भी बुरी हालत थी। उनकी ज़मीन, नहरें, उपजाऊ और घनी इलाके के बीच उनका घर, सब कुछ पाकिस्तान की सरहद के भीतर चला गया। उन पर अजीब असर पड़ा। उन्होंने कसम खाई कि जो भी मुसलमान दिखाई पड़ेगा उसे मार डालेंगे और वह भी जल्दी नहीं। सिक्ख नेता और रजवाड़े उन्हें इस काम के लिये बढ़ावा देते रहे।[1]

दोनों ओर से 20 जुलाई को दस्तखत किये गये थे कि अल्पसंख्यकों की रक्षा की जायेगी। लेकिन माउण्टवेटन का शक ठीक ही था। उन्हें पता नहीं था कि इसका अर्थ क्या होता है। सिक्खों की नीति थी मुसलमानों को खतम कर देने की। मुसलमानों की नजर सिक्खों के उपजाऊ खेतों पर थी। वे उन्हें भगा देना चाहते थे। जो रह जाने पर आमादा होता था उसे ही मारते थे। यह दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि लिखित वादे के खिलाफ जानबूझकर ऐसे काम कराने में पश्चिमी पंजाब के अंग्रेज गवर्नर सर फ्रांसिस मुडी का बहुत बड़ा हाथ था। उसने जिन्ना को लिखा था :—[2]

"मैं तो सभी से कहता हूँ कि सिक्ख पाकिस्तान के बाहर किस तरह जाते हैं इसकी मुझे परवाह नहीं। बड़ी बात है उनसे छुटकारा पा जाना।"

600,000 मारे गये। 14,000,000 घर से निकाले गये। 100,000 जवान लड़कियों का अपहरण हुआ, या जबर्दस्ती उनका धर्म बदला गया या उनको नीलाम किया गया।

हिन्दुस्तान को आजादी देने की उपलब्धियों के मुकाबले यह त्याग आखिर बहुत बड़ा नहीं था।

माउण्टवेटन के हिमायती कहते हैं— इतने लोगों की मौत सरकार चुपचाप बर्दाश्त कर सकती है तो फिर 600,000 लोगों की मौत से स्वतन्त्र और मित्र भारत बन जाय तो उन्हें क्यों शिकायत हो ? कोई समझदार आदमी इससे इन्कार नहीं करेगा

---

1. मोसले, लिओनार्ड — भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 198, 199

2. Ibid, P- 199

कि ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान को आजादी देने का जो फैसला किया वह ठीक था— इसलिये नहीं कि उन्हें और अधिक समय तक मातहती में रखना नहीं सम्भव था बल्कि इसलिये कि ब्रिटिश जनता उन्हें मातहत रखना नहीं चाहती थी। प्रधान मन्त्री क्लेमेंट एटली ने जून, 1948 तक सभी नियन्त्रण हटा लेने का जो फैसला किया था वह भी ब्रिटिश जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति थी हालांकि चर्चिल सहित कुछ टोरियों ने इसका विरोध किया था और इसे जल्दबाजी कहा था। इसका भी कोई सबूत नहीं कि हिन्दू, मुसलमान या सिक्ख किसी ने भी एटली की घोषणा पर अविश्वास किया हो। उन लोगों ने इसे आज़ादी की तारीख के रूप में मान लिया।

फिर माउण्टवेटन के आने पर यह तारीख दस महीने पीछे क्यों खींच ली गई ? माउण्टवेटन कहेगा— दूसरा चारा ही नहीं था। स्थिति काबू से बाहर होती जा रही थी। गृहयुद्ध जैसी परिस्थिति तैयार होती जा रही थी। ऐसी स्थिति को यों ही छोड़ देने का मतलब होता काफ़ी बड़े पैमाने पर खून—खराबी और दंगे।

लेबर सरकार के सलाहकारों का विश्वास था कि जल्दी से स्वाधीनता नहीं दी गई तो कांग्रेस पार्टी टूट जायेगी और कम्युनिस्ट उनकी जगह ले लेंगे। आज जो बातें उन्हें मालूम हैं उनके आधार पर वे भी समझते होंगे कि यह सत्य से कितनी दूर था।

600,000 हिन्दुस्तानी मरे आजादी के लिये, 14,000,000 बेघरबार हो गये। आदमी जानवर हो गया। कम—से—कम एक पीढ़ी के लिये भारत—पाकिस्तान की सीमा की हवा खराब हो गई और सब बेजरूरत। इसकी कोई जरूरत नहीं थी। अगर आज़ादी देने की इतनी जल्दी नहीं मचाई जाती तो यह सब कुछ नहीं होता। 350,000,000 लोगों की जिन्दगी का फैसला कभी इतनी चुस्ती, इतनी मोहनी अदा से नहीं हुआ होगा लेकिन साथ ही साथ नतीजों के बारे में बिना कुछ सोच—विचार किये हुये भी नहीं हुआ होगा।

माउण्टवेटन की सफलता को छोटा नहीं किया जा रहा। नोएल कावर्ड के शब्दों में— "जब कोई काम असम्भव मालूम हो तो डिकी को बुलाओ। लेबर सरकार ने उसे इसीलिये इस काम पर लगाया था कि उन्हें रास्ता नहीं सूझ रहा था। उसे

आनन–फानन काम पूरा करने के लिये भेजा गया था। एक बदमज़ा काम को जल्दी–जल्दी पूरा करने के लिये उसे दोषी ठहराना ग़लत होगा खासकर जब उसका विश्वास (ग़लत ही सही) था कि जल्दी करने से जानें बच जायेंगी।[1]

जब यह खयाल आता है कि हिन्दुस्तान को आज़ादी देने के लिये ब्रिटेन में कितनी सदिच्छा थी तो तैयारी की कमी, गलतियों का अम्बार और योजना के खतरनाक अभाव की कितनी बड़ी सड़ी खाई उस सदिच्छा और सफलता के बीच नज़र आती है।

ग़लती पर ग़लती।

वेवेल, जिसकी योजना कम–से–कम हिन्दुस्तान का बंटवारा नहीं होने देती, निकाल दिया जाता है।

मुसलमानों के अलग अधिकार का जिन्ना का दावा मान लिया गया लेकिन उसके नतीजों का सामना करने की कोई तैयारी ही नहीं। इस बात का कोई खयाल ही नहीं कि पाकिस्तान होगा कहाँ। फ़ौज के विभाजन की कोई योजना नहीं।

ताश के पत्तों की तरह बंटवारा तय हो गया शिमला में। लेकिन इस फैसले के महत्व का कोई एहसास ही नहीं।

अगर लेबर सरकार संयुक्त हिन्दुस्तान को जून, 1948 तक आज़ादी देना चाहती थी तो यह कैसे सम्भव हुआ कि दस महीने पहले बंटे हुये हिन्दुस्तान को आज़ादी का वादा कर दिया गया ? यह तारीख माउण्टवेटन ने पत्रकारों के बीच घोषित की थी। क्या वह सच है कि अराजकता और भगदड़ के अलावा भी कुछ हासिल करने की उसने उम्मीद की थी। अगर यह मान भी लिया जाय कि उसे खून खराबी या तबाही की कोई आशंका ही नहीं थी ?

सचमुच, ग़लती पर ग़लती !

हिन्दुस्तान के बंटवारे की घोषणा मई, 1947 में कर दी गई

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 200

और जून तक फ़ौज के बंटवारे की कोई योजना ही नहीं। सिर्फ 6 सप्ताह का समय बाकी था।

बंटवारे की घोषणा मई में और दोनों उपनिवेशों की सीमा—रेखा तय करने वाले बाउण्डरी कमीशन की बहाली जून के अन्त में।

बंटवारा मई में, आज़ादी अगस्त में। लेकिन किस देश के वासी वे होंगे इसे जानने के लिये बेताब लोगों को आज़ादी के दो दिन बाद तक जानबूझकर अंधेरे में रखा गया।

निश्चय ही ये ग़लतियां ऐसी थीं जिन्हें बचाया जा सकता था और इनकी वजह से लाखों जानें गई।

जिन अंग्रेजों के हाथों हिन्दुस्तान की आज़ादी गढ़ी गई वे इन दलीलों को एक तरफ़ कर देंगे। माउण्टवेटन को विश्वास है कि उसकी सफलता इतिहास में स्थान पायेगी। इसमें शक नहीं कि स्थान पायेगी लेकिन शायद उस तरह नहीं जैसी उसने कल्पना की है। उसके प्रधान सहकारी लॉर्ड इस्में का भी यह विश्वास है कि न सिर्फ सबसे अच्छा काम हुआ बल्कि सबसे अच्छी तरह भी हुआ। इस्मे इस काम को दिल से नफ़रत करता था। जितनी जल्दी हो सके, काम पूरा कर वह भाग जाना चाहता था। नतीजों की परवाह नहीं थी। जब अंग्रेजों के नियन्त्रण से छूटकर उन लोगों ने खून—खराबी शुरू कर दी तो इस्मे को अचरज नहीं हुआ। हिन्दुस्तान के साम्राज्य के हाथ से निकल जाने का उसे इतना ग़म था कि इसे रोकने की उसे कोई इच्छा ही नहीं थी।[1]

लेकिन सभी हिन्दुस्तानी इस बात पर राजी नहीं होंगे कि इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता ही नहीं था। बहुत से ऐसे हैं जिनका यह विश्वास है कि उन्हें धोखा देकर आजादी दी गई जिसकी कीमत देश के बंटवारे से चुकानी पड़ी। और उनमें सभी गांधी के ही अनुयायी नहीं हैं। थोड़े से धैर्य से सभी झमेला खतम हो जाता। पाकिस्तान सिर्फ एक आदमी, मुहम्मदअली जिन्ना की उपलब्धि थी और पाकिस्तान बनने के एक साल बाद वह

---

1. मोसले, लिओनार्ड — भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 201

मर गया। थोड़ा सा धैर्य। जल्दबाजी से इन्कार। गांधी की यही सलाह थी और हिन्दुस्तानियों की दृष्टि से यह सलाह ठीक थी।

लेकिन जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल तथा अन्य कांग्रेसियों के लिये, जो सत्ता के लिये परेशान थे, माउण्टवेटन ने जो टुकड़ा दिखाकर ललचाया वह इतना मोहक था कि इन्कार नहीं किया जा सका। उन्होंने उसे निगल लिया। अपने जीवनी लेखक माइकेल ब्रेचर को 1960 में जवाहरलाल नेहरू ने कहा– "शायद मैं समझता हूँ कि वह घटनाओं की मजबूरी थी, इस बात की मजबूरी थी कि हम लोग जिस रास्ते पर चल रहे है उसके सहारे इस गतिरोध या जिच से निकल नहीं सकते। हालत बिगड़ती ही गई। फिर हमारा यह भी खयाल था कि अगर हिन्दुस्तान के लिये आज़ादी मिली भी तो वह हिन्दुस्तान बड़ा ही कमजोर होगा, ऐसा फेडरल हिन्दुस्तान जिसके टुकड़ों की बहुत ज्यादा सत्ता होगी। इस बड़े हिन्दुस्तान में हमेशा दिक्कत होगी, हमेशा अलग होने की शक्तियाँ ज़ोर लगायेंगी। यह भी बात थी कि निकट भविष्य में आज़ादी हासिल करने का और कोई दूसरा रास्ता हमें दिखाई नहीं पड़ रहा था। इसीलिये हम लोगों ने इसे मान लिया और कहा, हम लोग एक मज़बूत हिन्दुस्तान बनायेंगे और कुछ लोग इसमें नहीं रहना चाहते तो हम लोग किस तरह और क्यों उन्हें मज़बूर करें।

लेकिन लेखक के साथ जब 1960 में जवाहरलाल नेहरू ने बातचीत की तो शायद वह सत्य के अधिक निकट थे, जवाहरलाल नेहरू ने कहा–[1]

"सच्ची बात यह है कि हम लोग थक गये थे और बूढ़े भी हो चले थे। फिर जेल जाने की सम्भावना हममें से बहुत थोड़े बर्दाश्त कर सकते। अगर हम लोग संयुक्त हिन्दुस्तान के लिये अड़े रहते, जैसा कि हम चाहते थे, तो स्पष्ट है कि जेल के दरवाजे हमारा इन्तजार कर रहे थे। हम लोगों ने पंजाब में जलती हुई आग देखी, खूँरेजी की खबरें रोज़ मिलती रहीं। बँटवारे की योजना ने एक रास्ता सामने रखा और हमने उसे अपनाया। लेकिन अगर गांधी ने हमें मना किया होता तो हम लड़ाई जारी रखते और इन्तजार करते रहते। लेकिन

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ0सं0 201

हम लोगों ने मान लिया। हमें उम्मीद थी कि यह बँटवारा अस्थायी होगा और पाकिस्तान फिर हमसे मिल जायेगा। हममें से किसी ने भी यह कल्पना नहीं की थी कि यह खूँरेजी और कश्मीर की समस्या हमारे आपसी रिश्तों को इतना कड़ुवा बना देगी। उन घटनाओं के बारे में कोई शक नहीं जिन्होंने जवाहरलाल नेहरू की विचारधारा को जन्म दिया। एक बार जवाहरलाल नेहरू ने कहा था– 'हिन्दुस्तान का हर गाँव जल जाय, यह मैं बर्दाश्त कर सकता हूँ लेकिन ब्रिटिश फौज को अपनी रक्षा के लिये बुलाना नहीं।'[1]

लेकिन 15 अगस्त, 1947 को, भारत के प्रधान मन्त्री बनने के बाद वह हवाई जहाज से अमृतसर गये और उन्होंने पंजाब का दौरा किया। वहाँ जो कुछ देखा उससे वह पागल हो उठे। पहली बार उन्होंने देखा कि आजादी के लिये जल्दबाजी मचाने का इन्सान की जिन्दगी की कसौटी पर क्या नतीजा हुआ। गुस्से में क़ातिल सिक्खों और मुसलमानों के बीच कूदकर उन्होंने घूसेबाजी शुरु कर दी। उसी दिन उन्हें पता चला कि हिन्दुस्तान की आज़ादी ज़रा जल्दी आ गई। कुछ सप्ताह, कुछ महीने, शायद एक साल से बड़ा फर्क पड़ता और उतनी जानें बच जातीं। हमें यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं कि जवाहरलाल नेहरू को स्वतन्त्रता दिवस 15 अगस्त, 1947 पर नाज है।

लेकिन जो बीत गई वह बात गई। अब शोर मचाने का क्या फायदा ? हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो गया।

---

1. मोसले, लिओनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, पृ०सं० 202

सातवां अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

9. भारत की आजादी- नेहरू के योगदान का मूल्यांकन

जवाहरलाल नेहरू (1889—1964) का जन्म 14 नवम्बर,1889 को इलाहाबाद में हुआ था और 27 मई 1964 को दिल्ली में उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की। 18वीं शताब्दी में उनके पूर्वज पं0 राजकौल कश्मीर में निवास करते थे। मुगल बादशाह फर्रुखसियर के आमंत्रण पर वे देहली में जाकर निवास करने लगे थे। 1857 की उथल—पुथल ने उनके वंशजों को दिल्ली से उखाड़ दिया और पं0 गंगाधर (जो पं0 राजकौल के वंशज थे) देहली से भाग कर आगरा में आ गये परन्तु आगरा में आने के बाद पं0 गंगाधर अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे। 34 वर्ष की अल्पायु में 1861 में उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के तीन महीने के बाद उनकी पत्नी जियोरानी ने (6 मई 1861) एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम मोतीलाल नेहरू रखा गया।

कश्मीरी ब्राह्मणों के बीच बाल विवाह का नियम होने के कारण मोतीलाल का विवाह भी जल्द ही हो गया था और 20 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने से पहले ही उनके एक पुत्र भी हो गया था लेकिन इस विवाह का अन्त दुखद ढंग से हुआ। माँ और पुत्र दोनों की मृत्यु हो गई। मोतीलाल का दूसरा विवाह स्वरूपरानी के साथ हुआ। विवाह के कुछ समय बाद स्वरूपरानी ने एक पुत्र को जन्म दिया जो जीवित नहीं रहा और उसके कुछ समय बाद स्वरूपरानी ने (14 नवम्बर,1889) को फिर एक पुत्र को जन्म दिया जिन्हें हम जवाहरलाल नेहरू के नाम से जानते हैं।

अपनी बाल्यावस्था में जवाहरलाल ने घरेलू शिक्षक फर्डिनेंड टी0 ब्रुक्स से साहित्य, कविता, वस्तु विज्ञान और रसायन शास्त्र की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। उनकी स्कूली शिक्षा इंग्लैण्ड के हैरो पब्लिक स्कूल और फिर ट्रिनिटी और इनर टैम्पिल में हुई। उन पर अंग्रेजी शिक्षकों का अत्याधिक प्रभाव पड़ा था। ब्रिटिश संस्थाओं, संस्कृति और परम्पराओं से उनके प्रेम का यह एक महत्वपूर्ण कारण था और यही वह कारण भी था— जिसकी वजह से जवाहरलाल जीवन के प्रति स्वतन्त्र, उन्मुक्त, बुद्धिवादी और तार्किक दृष्टिकोंण रखते थे।

यद्यपि उनका स्कूली शैक्षणिक जीवन किसी भी दृष्टिकोंण से विशिष्ट न था। उन्होंने अपनी अन्तिम वकालत की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। उन्होंने अपनी वकालत इलाहाबाद हाईकोर्ट में प्रारम्भ की और उनका मन वकालत के व्यवसाय में नहीं लगा और उन्होंने देश सेवा के लिये राजनीति में प्रवेश लिया। यद्यपि अपनी शिक्षा के दौरान ही जवाहरलाल नेहरू में राजनीति के प्रति दिलचस्पी उत्पन्न हो गई थी। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों ने जवाहरलाल नेहरू को भारतीय राजनीति की ओर आकर्षित किया।

इसी के परिणाम स्वरूप जवाहरलाल नेहरू ने बांकीपुर के कांग्रेस अधिवेशन से अपनी राजनीतिक यात्रा आरम्भ की।

1916 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में उनकी भेंट महात्मा गाँधी से हुई और सन् 1917 में जवाहरलाल नेहरू ने होमरूल आन्दोलन में भी भाग लिया। महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व का जवाहरलाल नेहरू के जीवन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि जवाहरलाल नेहरू ने राजसी जीवन को त्याग कर सादा जीवन शैली अपना ली।

कभी–कभी जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गाँधी के बीच वैचारिक मतभेद हो जाते थे यद्यपि भारतीय राजनीति में जवाहरलाल नेहरू को आभूषण के रूप में सजाने और संवारने का काम महात्मा गाँधी ने ही किया।

जलियाँवाला बाग काण्ड की बर्वरता का जवाहरलाल नेहरू पर गहरा मानसिक तथा नैतिक प्रभाव पड़ा था– और इसके बाद से उनकी राजनीति उत्तरोत्तर उग्र होती चली गई थी। जलियाँवाला बाग काण्ड की बर्वरता की जाँच करने के लिये कांग्रेस की जो समिति बनाई गई थी– जवाहरलाल उसके सेक्रेटरी थे। सेक्रेटरी के रूप में जवाहरलाल ने तर्क पूर्ण ढंग से गवाहों के बयानों की व्याख्या कर अपनी योग्यता और कुशलता का अभूतपूर्व परिचय दिया।

इस घटना के बाद अमृतसर कांग्रेस (1919) में अपने भाषण में जवाहरलाल नेहरू ने पंजाब में ब्रिटिश शासन द्वारा किये गये अत्याचारों की कटु निन्दा की थी और ब्रिटिश शासन को चेतावनी दी थी कि "अत्याचार और आतंक आज तक किसी भी राष्ट्र

के जीवन को नष्ट नहीं कर पाये हैं।

इसके बाद जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्रता आन्दोलन में किसानों का समर्थन प्राप्त करने के लिये अवध के गाँवों का दौरा भी किया और उनके बीच रहे और उनके ऊपर हो रहे अत्याचारों की कहानी भी सुनी।

एक असहयोगी के रूप में जवाहरलाल की भूमिका भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अत्यधिक भव्य थी। गाँधी जी द्वारा आरम्भ किये गये असहयोग आन्दोलन में जवाहरलाल ने अत्यधिक सक्रिय रूप से भाग लिया था और उनके परिवार ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर और स्वदेशी अपना कर त्याग और बलिदान का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया था।

इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में जवाहरलाल नेहरू ने इलाहाबाद नगर की अनेक समस्याओं जैसे– सफाई, पेयजल और यात्रीकर, नलकूप खुदवाने और स्वास्थ्य की देखभाल के लिये समितियां गठित कर और स्वयं उनका निरीक्षण कर बड़ी योग्यता और कुशलता से इन समस्याओं का निदान किया। उनके इस काम की प्रशंसा इलाहाबाद के तत्कालीन कमिश्नर ने भी की थी।

जवाहरलाल नेहरू को पहली बार कोकनाडा के कांग्रेस अधिवेशन में महामंत्री नियुक्त किया गया। महामंत्री के रूप में अपने भाषण में जवाहरलाल ने कौमी एकता पर बल दिया और एक सिपाही के रूप में देश की सेवा करने का आह्वान किया।

सन् 1927 में जवाहरलाल ने ब्रसेल्स में उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध सम्मेलन में कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया और इसकी एक विस्तृत रिपोर्ट कांग्रेस कार्य समिति को भेजी।

सन् 1927 में ही ब्रिटिश सरकार ने संवैधानिक सुधारों के लिये एक कमीशन की घोषणा की जो इसके अध्यक्ष के नाम पर साईमन कमीशन कहलाया। इस कमीशन का कोई भी सदस्य भारतीय नहीं था। इसे श्वेतशाही आयोग भी इसी कारण कहा जाता है। इस कमीशन के विरोध का नेतृत्व करते हुये जवाहरलाल को लखनऊ में पुलिस की

लाठी का शिकार होना पड़ा।

जब वरकन हेड ने भारतीयों को चुनौती दी कि वे अपना संविधान स्वयं बनाकर सुझाव दें। इसके लिये कांग्रेस ने मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की, कमेटी में जवाहरलाल नेहरू ने भी महत्वपूर्ण सुझाव दिये। इस सुझावों को हम नेहरू रिपोर्ट के नाम से जानते हैं। जब यह रिपोर्ट आयी तो उपनिवेशवाद के प्रश्न को लेकर मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू के बीच असन्तोष उत्पन्न हो गया। इस असंतोष ने नेहरू परिवार को ही नहीं प्रभावित किया वरन् भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की दिशा में अत्यधिक प्रभाव डाला।

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में स्वयं कहा है कि– "मैं नहीं समझता कि (हमारे बीच) इससे कभी पहले या इसके बाद इतना अधिक तनाव रहा।"

अन्ततः दिसम्बर,1928 के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में गाँधी जी की मध्यस्थता से नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया गया।

दिसम्बर,1929 के ऐतिहासिक लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू को अध्यक्ष चुना गया। इस अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में जवाहरलाल नेहरू ने देश की आज़ादी के लिये लोगों का आह्वान किया।

जवाहरलाल नेहरू ने 1 जनवरी 1930 को रावी नदी के तट पर पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा ली और इसी परिप्रेक्ष्य में 26 जनवरी को पूर्ण स्वाधीनता दिवस मनाया गया। इसी समय गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने का निर्णय लिया। उन्होंने नमक कानून तोड़ने के वास्ते अहमदाबाद में अपने आश्रम से पश्चिमी समुद्र तट पर स्थिति डांडी ग्राम तक 388 किलोमीटर की पद–यात्रा की। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण देश में राजनीतिक परिवर्तन शुरू हो गया। साम्राज्यवाद के विरुद्ध इस आन्दोलन में जवाहरलाल नेहरू ने गाँधी जी का उसी प्रकार पूरा साथ दिया जैसा दस वर्ष पहले उन्होंने किया था। नमक सत्याग्रह ने सारे नेहरू परिवार को अपनी लपेट में ले लिया। सबसे पहले जवाहरलाल नेहरू जेल गये, उसके बाद उनके पिता, बहन तथा पत्नी जेल गईं। गाँधी जी की

अपील पर भारतीयों, विशेष रूप से महिलाओं की प्रतिक्रिया से जवाहरलाल नेहरू पुलकित हो उठे। परन्तु एक वर्ष बाद मार्च 1931 में जब गाँधी जी वाइसराय लार्ड इरविन से बातचीत के बाद सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त कर दिया तथा द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में शामिल होने के लिये लन्दन जाने को तैयार हो गये तो जवाहरलाल को बड़ी निराशा हुई। उन्होंने कड़वा घूंट पीकर कुछ दिन बाद कांग्रेस के करांची के वार्षिक अधिवेशन में गाँधी – इरविन समझौते के समर्थन का प्रस्ताव रखा। इसके पीछे उनका उद्देश्य पार्टी में खुले मतभेद को रोकना तथा गाँधी जी के हाथ मजबूत करना था, जो द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के लिये एक मात्र प्रतिनिधि के रूप में लंदन जा रहे थे।

गाँधी जी ने इस सम्मेलन में भाग लिया तथा भारत ब्रिटेन के बीच शक्ति पर नहीं बल्कि स्नेह पर आधारित सम्मानपूर्ण एवं समान साझेदारी पर जोर दिया। परन्तु उनकी दलीलों का कोई असर न हुआ। इस सम्मेलन की रचना तथा कार्य प्रणाली पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण होने के कारण यह सम्मेलन अपेक्षाकृत कम महत्व के मामलों में ही उलझ कर समाप्त हो गया।

अगस्त 1932 में ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक समझौते की घोषणा की। इस समझौते की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि मुसलमान, ईसाई, एंग्लोइंडियन अल्पसंख्यकों की ही भाँति हिन्दू समाज के दलित वर्ग को भी पृथक चुनाव प्रणाली के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार दिया गया। गाँधी जी ने जो इस समय यरवदा कारागार में थे और जवाहरलाल नेहरू देहरादून कारागार में थे। गाँधी जी ने इस समझौते का विरोध किया और कारागार में ही उन्होंने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। जब जवाहरलाल को इस निर्णय की जानकारी मिली तो वे बेचैन हो उठे। बाद में हिन्दू समाज के उच्च्च जातियों और दलित वर्ग के प्रतिनिधियों के बीच पूना समझौता हो गया जब जवाहरलाल को इस समझौते की जानकारी मिली तो उन्होंने राहत की सांस ली।

सन् 1936 में यूरोप से वापस आकर जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन कीअध्यक्षता की। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सरकार ने

पार्टी पर करारी चोट की थी जिससे वह अब सम्भलने लगी थी। वर्ष के अन्त में नये संविधान के अधीन आम चुनाव होने वाले थे। नेहरू चाहते थे कि सरकार तथा देश के स्वार्थी तत्वों के विरुद्ध उग्र नीति अपनाई जाये परन्तु उनके अधिकतर सहयोगी सावधानी बरतने के पक्ष में थे। ऐसी स्थिति में पार्टी ने गाँधी जी के कुशल नेतृत्व में बीच का रास्ता अपनाया।

यद्यपि नेहरू स्वयं किसी भी प्रकार की संसदीय गतिविधि अपनाने के विरुद्ध थे, परन्तु उन्होंने पार्टी में बहुमत का साथ दिया तथा चुनाव अभियान में तन–मन से जुट गये। कांग्रेस की शानदार विजय हुई तथा उसने 1937 में ग्रीष्म ऋतु में ग्यारह में से आठ प्रांतों में अपनी सरकार बनाई। इससे नेहरू जी की सूझबूझ और सहन शक्ति की परीक्षा हो गई।

सितम्बर, 1939 में दूसरा विश्व युद्ध शुरू हो गया, जिससे भारत की राजनीतिक स्थिति जो पहले से ही जटिल थी, जटिलतर बन गई। कांग्रेस ने वह नीति अपनाई जिसकी वकालत नेहरू कर रहे थे। भारत के लोग हिटलर के विरुद्ध लड़ाई में पूरा सहयोग करने को तैयार थे लेकिन तभी भारत को युद्धरत देश घोषित कर दिया गया। इसके विरोध स्वरूप कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया अब कांग्रेस के सदस्य बड़े पैमाने पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने के लिये जोर देने लगे। गाँधी जी ने यथा सम्भव इस दबाव को रोका तथा बाद में इसे हानि न पहुंचाने वाले व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन की दिशा में मोड़ दिया। इस आन्दोलन के प्रथम सत्याग्रही विनोवा भावे थे और द्वितीय जवाहरलाल नेहरू थे। सरकार ने एक–एक कर सभी सत्याग्रही नेताओं को जेल में बन्द कर दिया। पहले विनोवा भावे गिरफ्तार हुये उसके तत्पश्चात 31 अक्टूबर 1940 को जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार कर गोरखपुर की जेल में बन्द कर दिया गया और जवाहरलाल नेहरू को चार वर्ष की कैद की सजा सुनाई गई मगर सरकार ने दिसम्बर 1941 में जवाहरलाल को रिहा कर दिया।

जब तक द्वितीय विश्व युद्ध ने राष्ट्रीय भावनाओं की उपलब्धि के लिये नवीन आशायें उत्पन्न कर दीं थीं। इस समय जवाहरलाल नेहरू ने कहा था पश्चिमी लोकतंत्र का फासिज्म तथा नाजिज्म के साथ कुछ विशेष प्रकार का सैद्धान्तिक गठबन्धन है।

भारत की स्थिति द्वितीय विश्व युद्ध के समय बड़ी गम्भीर होती जा रही थी। जापानी सेना ने अमरीकी, अंग्रेजी, चीनी तथा डच सेनाओं को अति तीव्र गति से, जो लगभग हिटलर की जर्मन सेना जैसी ही तीव्र गति से आगे बढ़ रही थी, बहुत क्षति पहुंचाई। जापान का सिंगापुर, रंगून पर कब्जा हो गया और अब युद्ध भारत के दरवाजे पर दस्तक देने लगा। जवाहरलाल नेहरू ने बड़ी सक्रियता से काम किया और नेहरू जी ने कहा था " द्वितीय विश्व युद्ध वास्तव में दो विरोधी साम्राज्यवादों के बीच युद्ध था। यह तो सरासर मूर्खता तथा असम्भव था कि हम उसी साम्राज्यवाद की रक्षा के हेतु लड़े जिसका हम इतने दिनों से विरोध करते आ रहे थे।"

युद्धकाल में ही ब्रिटिश सरकार ने स्ट्रेफोर्ड क्रिप्स मिशन को भारत भेजने का निश्चय किया इसका उद्देश्य यह था कि भारतीयों की युद्ध में सहायता प्राप्त की जा सके। क्रिप्स मिशन एक शुद्ध भावना से किया हुआ भारतीय समस्या का हल नहीं था। क्रिप्स मिशन के बारे में जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "समकालीन सरकार का ढाँचा उसी प्रकार रहेगा और वाइसराय की निरंकुशता बनी रहेगी, और हम में से कुछ लोग वर्दी पहनकर उसके सेवक तथा अल्पाहार गृहों इत्यादि की देखभाल करना आरम्भ कर देंगे।

द्वितीय विश्वयुद्ध, असहयोग आन्दोलन तथा व्यक्तिगत सत्याग्रह और क्रिप्स मिशन की असफलता ने 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन को जन्म दिया। इसी सम्बन्ध में 7 अगस्त को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इस अधिवेशन पर न केवल भारत वरन् सम्पूर्ण संसार की निगाहें लगी हुई थीं। भविष्य के इतिहास तथा घटनाओं ने इस अधिवेशन को ऐतिहासिक अधिवेशन की संज्ञा प्रदान की। इसी ऐतिहासिक अधिवेशन को सम्बोधित करते हुये जवाहरलाल नेहरू ने कहा था— यदि ब्रिटिश सरकार प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है तो इससे आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में हर तरह से सुधार होगा। चीन की स्थिति सुधर जायेगी। उन्होंने कहा कि मुझे विश्वास है कि भारत में जो कुछ भी परिवर्तन आयेगा वह बेहतरी के लिये होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को मालूम है कि महात्मा गाँधी भारत में रहने वाले अंग्रेजों को और सशस्त्र सेनाओं को रहने देने की बात पर सहमत हो गये हैं, ताकि भारतीय सीमा पर जापान की कार्रवाई सुगम न बन पाये। जो लोग परिवर्तन लाना चाहते हैं उन्हें यह बात मान लेनी चाहिये।

अमेरिका में यह आलोचना हो रही है कि कांग्रेस ब्लैकमेल कर रही है; इस बात की चर्चा करते हुये पण्डित नेहरू ने कहा कि यह विचित्र और अद्भुत आरोप हैं। यह आश्चर्य की बात है कि जो लोग अपनी स्वतन्त्रता की बात करते हैं वे उन लोगों पर ऐसा आरोप लगा रहे हैं जो स्वतन्त्र होने के लिये जूझ रहे हैं। यह उन लोगों के प्रति लगाया गया एक अनोखा आरोप है जो पिछले 200 वर्षों से दुःख झेल रहे हैं। यदि यह ब्लैकमेल है तो "अंग्रेजी भाषा की हमारी समझ दोषपूर्ण है।"

अन्त में उन्होंने कहा कि मैं अब और खतरा मोल नहीं ले सकता और अब हमें आगे बढ़ना होगा, भले ही इसमें कितने ही विघ्न और बाधायें क्यों न हों।

सरकार का दृष्टिकोंण पराजयवादी है। अब मैं इसे सहन नहीं कर सकता। उन्होंने कहा कि मेरा एकमात्र उद्देश्य पराजयवादियों के स्थान पर वीर योद्धाओं को आगे जाने का है। इसी अधिवेशन में भारत छोड़ो आन्दोलन का ऐतिहासिक प्रस्ताव पास हुआ था। अगले ही दिन 9 अगस्त को प्रातःकाल ही जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गाँधी को गिरफ्तार कर लिया गया। गाँधी जी को पूना के आगा खाँ महल में रखा गया और जवाहरलाल नेहरू को अहमद नगर के किले में रखा गया। शासन द्वारा भारतीय नेताओं को कारावास में डाल दिये जाने से जनता अवाक्–सी रह गयी और जनता ने जैसे बना सरकार की नीतियों का विरोध किया। सरकार ने कठोरता पूर्वक आन्दोलन का दमन किया। मगर छिपे हुये रूप से आन्दोलन जारी रहा। यह आन्दोलन अब तक किये गये आन्दोलनों में सबसे भीषण और भारतीय स्वतन्त्रता के लिये किया गया महानतम प्रयास था।

सन् 1944 से 1946 तक जवाहरलाल नेहरू की भूमिका भारतीय राजनीति में अत्यधिक भव्य थी। 1944 में गाँधी जी को जेल से रिहा कर दिया गया। उस समय जवाहरलाल नेहरू अहमदनगर के किले में नजरबन्द थे। 1944 में ही चक्रवर्ती राजगोपालाचारी फार्मूला गाँधी जी की पूर्ण सहमति से बनाया गया मगर मु0 अली जिन्ना ने इसे नामंजूर कर दिया और पाकिस्तान की माँग की बात दोहराई। इसके बाद 1945 में गवर्नर जनरल लार्ड वेवल ने युद्ध प्रयत्न में भारत का सहयोग प्राप्त करने और गतिरोध दूर करने के लिये

जवाहरलाल नेहरू को जेल से रिहा कर दिया और वेवल ने व्यापक विचार विमर्श के बाद अपनी योजना प्रस्तुत की जो निम्न प्रकार थी—

(1) वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद का पुनर्गठन किया जायेगा और सभी दलों को प्रतिनिधित्व दिया जायेगा। सैन्य प्रमुख के अतिरिक्त शेष सभी सदस्य भारतीय होंगे तथा प्रतिरक्षा विभाग वाइसराय के अधीन होगा।

(2) कार्यकारिणी में मुसलमान सदस्यों की संख्या सवर्ण हिन्दुओं के बराबर होगी।

(3) कार्यकारिणी परिषद एक अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार के समान होगी। गवर्नर जनरल बिना कारण निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं करेंगे।

4) कांग्रेस के नेता रिहा कर दिये जायेंगे तथा शीघ्र ही शिमला में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया जायेगा।

(5) युद्ध समाप्त होने के उपरान्त भारतीय स्वयं ही अपना संविधान बनायेंगे।

इसी परिप्रेक्ष्य में शिमला में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में जिन प्रमुख लोगों ने भाग लिया उनमें जवाहरलाल नेहरू, जिन्ना, इस्माइल खाँ, सरदार पटेल, अब्दुल गफ्फार खाँ, तारा सिंह, मौलाना आजाद, गाँधी जी आदि ने भाग लिया। इस सम्मेलन में मुस्लिम लीग के इस दावे को अस्वीकार कर दिया कि वाइसराय की परिषद के समस्त मुस्लिम सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार उसी का है और निराशाजनक स्थिति में यह सम्मेलन समाप्त हो गया।

सन् 1945—1946 के मध्य में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान मण्डलों के चुनाव हुये। इसमें कांग्रेस पार्टी को भारी सफलता मिली। इसका कारण यह था कि जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेसी उम्मीदवारों के लिये चुनाव प्रचार किया और कांग्रेस ने लगभग सभी प्रान्तों में प्रायः सभी गैर—मुस्लिम स्थानों पर विजय प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उत्तर—पश्चिम सीमा प्रान्त में भी मुसलमानों के स्थानों की बहुसंख्या तथा इसके अतिरिक्त यू0पी0, सी0पी0, बिहार तथा आसाम में कुछ मुस्लिम स्थान भी जीत लिये।

सन् 1945 में ही देश की स्वतंत्रता के लिये सुभाष चन्द्र बोस

ने आजाद हिंद फौज (आई.एन.ए.) की स्थापना की। सन् 1945 के मध्य में जापान में हिरोशिमा पर बम वर्षा के बाद ध्रुवीय सेनाओं का प्रतिरोध विखर गया था। जापानी सेना ने हथियार डाल दिये थे और उसके साथ आजाद हिंद फौज के सैनिकों और अफसरों ने भी समर्पण कर दिया। इनमें कुछ को मार डाला गया और कुछ को कड़ी सजायें दी गयीं और अधिकांश अन्य अफसरों और सैनिकों को भारत लाया गया और जिन प्रमुख तीन अफसरों पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया गया वे थे– पहला हिंदू– प्रेम कुमार सहगल, दूसरा मुस्लिम– शाह नवाज खान और तीसरा सिक्ख– गुरबक्श सिंह ढिल्लों। इन अफसरों के साथ सम्पूर्ण राष्ट्र की सहानुभूति थी और इन अफसरों को बचाने के लिये कांग्रेस पार्टी ने सक्रिय भूमिका निभाई। कुछ जाने माने वकीलों की एक उच्च स्तरीय समिति बनाई गई जिसमें जवाहरलाल नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू श्री आसफ अली इत्यादि शामिल थे। इन लोगों ने अपनी कुशलता, क्षमता और विस्तृत और प्रमाणिक कानूनी ज्ञान तथा गहन तार्किक क्षमता के कारण तीनों अफसरों को अंग्रेजी अदालत को रिहा करना पड़ा।

इसके बाद मार्च, 1946 को क्लेमेंट एटली ने हाउस ऑफ कॉमन्स में यह घोषणा की कि लेबर सरकार ब्रिटेन और हिन्दुस्तान तथा कांग्रेस और मुस्लिम लीग के गतिरोध को खतम करने के लिये एक कैविनेट मिशन हिन्दुस्तान भेज रही है। इस मिशन के तीन सदस्य थे– सर स्टैफोर्ड क्रिप्स, भारत के सेक्रेटरी लार्ड पेथिक लारेंस और मि0 ए0बी0 अलेक्जेण्डर ने भारतीय नेताओं से बातचीत कर अपनी योजना सामने रखी। मूलतः यह आजाद के प्रस्ताव पर आधारित थी। पूरे देश की इकाई की एक स्वतंत्रत सरकार तो होगी, पर उसके अधीन सिर्फ तीन विभाग होंगे– सुरक्षा, विदेश और संचार–साधन बाकी के लिये देश तीन अनुशासकीय भागों में बँटा होगा। पहला भाग (ग्रुप ए) वह होगा जहाँ हिन्दू बहुमत में हैं यानी हिन्दुस्तान का अधिकांश हिस्सा। दूसरे भाग में होंगे पंजाब, सिंध, उत्तर–पश्चिम सीमांत प्रदेश और ब्रिटिश बलूचिस्तान जहाँ मुसलमानों का बहुमत है (ग्रुप बी)। तीसरे भाग में होगा बंगाल और आसाम जहाँ मुसलमानों का हल्का बहुमत है (ग्रुप सी)। इस तरह अल्पसंख्यक मुसलमान घरेलू मामले में खुदमुख्तार होंगे और हिन्दुओं के आधिपत्य से बच जायेंगे।

दोनों पक्षों ने यह योजना मान ली। कांग्रेस का सभापति बदला

और जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के सभापति हो गये। जवाहरलाल नेहरू ने कैबिनेट मिशन की योजना के पक्ष में वोट दिया था क्योंकि गाँधी जी इसके पक्ष में थे और यदि जवाहरलाल नेहरू विरोध करते तो हार जाते। कांग्रेस सभापति की हैसियत से जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि कांग्रेस पर समझौते का कोई बन्धन नहीं है और वह हर स्थिति का जिस तरह वह सामने आती हैं, सामना करने के लिये स्वतन्त्र हैं।

जवाहरलाल नेहरू के भाषण का बड़ा ही गहरा और अफसोसनाक नतीजा निकला। 27 जुलाई, 1946 को मुस्लिम लीग की बैठक में जिन्ना के कहने पर कैबिनेट मिशन की योजना की स्वीकृति रद्द कर दी गई। कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार ही प्रान्तीय विधान सभाओं के द्वारा संविधान सभा के सदस्यों का निर्वाचन सम्भव हो सका।

16 अगस्त ,1946 डायरेक्ट एक्शन डे (सीधी कार्रवाई दिवस) के रूप में मनाने का निश्चय मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की माँग का प्रदर्शन करने के लिये किया गया। उसी दिन जवाहरलाल नेहरू, मु0 अली जिन्ना से डायरेक्ट ऐक्शन भूलने के लिये राजी करने और लीग को सरकार बनाने में सहायता देने के लिये मिले लेकिन जवाहरलाल नेहरू जिन्ना को अपने विचार बदलने के लिये राजी न कर सके। इस दिन हिंसा का ऐसा ताण्डव हुआ जिसमें हजारों स्त्रियाँ, पुरुष और बच्चे काल के गाल में समा गये और इस दिन ने पराधीन भारत के इतिहास को रक्त रंजित कर दिया।

अगले ही माह सितम्बर 1946 में जवाहरलाल नेहरू ने पुनः अन्तरिम सरकार को गठन के सम्बन्ध में मु0 अली जिन्ना से बातचीत की, पर उनमें कोई समझौता न हो सका और वाइसराय ने जवाहरलाल नेहरू को सरकार गठन का निमंत्रण दे दिया जिसे जवाहरलाल ने स्वीकार कर लिया और वे 2 सितम्बर,1946 को कार्य परिषद के उपाध्यक्ष और परराष्ट्र तथा राष्ट्र मंडलीय सम्बन्ध विभाग के मंत्री बन गये।

वाइसराय के अनुरोध पर मुस्लिम लीग अक्टूबर 1946 में अन्तरिम सरकार में शामिल हो गयी और इसके नेता लियाकत अली खाँ को वित्त विभाग मिला। लीगी मंत्रियों का उद्देश्य ऐसी प्रत्येक वस्तु का विरोध करना था जो पाकिस्तान की माँग के

विरुद्ध हो, उन्होंने ऐसा ही किया और प्रत्येक कार्य में रोड़े अटकाये।

मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का भी बहिष्कार किया क्योंकि इसमें लीग के सदस्यों की संख्या कम थी और वे एक अलग राष्ट्र पाकिस्तान की माँग कर रहे थे। इसके बावजूद 9 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा की प्रथम बैठक हुई। 13 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये जवाहरलाल नेहरू ने अवसर के अनुकूल दृढ़ता और उपयुक्त भाषा में व्याख्या की जो निराशा थी वह दूर हो गई और उन्होंने कहा यह प्रस्ताव एक घोषाणा है, एक संकल्प है, एक प्रतिज्ञा है और एक दायित्व है जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्रान्ति लाने का मार्ग प्रशस्त करता है।

लार्ड लुई माउण्टवेटन को नया उत्तराधिकारी बनाया गया इन्होंने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार जवाहरलाल नेहरू और अन्य भारतीय नेताओं से विचार विमर्श कर और मु0 अली जिन्ना से सहमति का आश्वासन प्राप्त कर 3 जून, 1947 को अपनी योजना प्रस्तुत की जिसे जवाहरलाल नेहरू ने दुखी दिल से स्वीकार किया। उनके दिमाग में स्पष्ट था कि सही रास्ता यही है।

3 जून, 1947 की योजना के अनुसार ही भारतीय स्वतंत्रता विधेयक कॉमन्स सभा में प्रधानमंत्री एटली द्वारा 15 जुलाई, 1947 को प्रस्तुत किया गया और लार्ड्स सभा में 16 जुलाई को। इसके पारित होने में कम से कम समय लगा और 18 जुलाई,1947 को इस पर शाही हस्ताक्षर भी हो गये। इसके साथ भारत और पाकिस्तान नाम के दो स्वतंत्र राष्ट्र अपने अस्तित्व में आ गये। लेकिन आपसी मन–मुटाव ने अगस्त 1947 में हिंसा का ऐसा नंगा नाच किया जिसने सम्पूर्ण मानव गरिमा को तार–तार कर दिया। अनगिनत लाशों, काले कारनामों, सुलगती हुई आग की दुर्गन्ध के बीच 15 अगस्त 1947 को हम स्वतन्त्र हो गये और जवाहरलाल नेहरू प्रथम प्रधान मंत्री बने और जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद देश की अटूट सेवा की और भारतीय स्वतंत्रता के सन्देशवाहक बने रहे।

संदर्भ ग्रन्थसूची

BIBLIOGRAPHY

1. All parties conference, 1928 report of the committes appointed by the conferences to determine the principles of the constitution for India. Allahabad, All India Congress Committes - 1928.

2. All parties conference, 1928, summary of proceeding Vol.-IV, Lucknow, August 28th to 31st 1928.

3. All parties conference, supplemantary report of the (Nehru) committes, 1928.

4. Bose, S.C. Indian Struggle (1934-42), - 1952

5. Bahadur, D. Lal The Muslim League (Agra University Library, Agra).

6. Bose, S.C. India Struggle (1920-34)

7. Chatargee, A.C. India's Struggle for freedom 1941.

8. Chirol, V. Indian Unzast.

9. Civil disobediance enquiry committes report, 1922, Published by N.M. Mayat, Sec retary Enquiry Committes.

10. Dutta, R. Palm India Today - 1947.

11. Dutta, D.M. The Philosophy of Mahatma Gandhi

12. Fisher, L. The life of Mahatma Gandhi

13. Jayakar, M.R. The story of my life, Vol. II

14. Leader (Allahabad) 1923 to 1928

15. Morass, Frank — Jawahar Lal Nehru, (Bombay Times of India Press - 1956

16. Munshi, K.M. — The master

17. Majumdar, A.C. — Indian National Evolution.

18. Mookarjee, G.K. — History of Indian National congress.

19. Nehru, J.L. — An Autobiography - 1958

20. Nanda, B.R. — Mahatma Gandhi - 1958

21. Nehru, Motilal — The Struggle for Swaraj

22. Nehru, J.L. — A Bunsh of Old Letters - 1960

23. Nehru J.L. — The Discovery of India

24. Nehru J.L. — The Unity of India

25. Pal. B.C. — The New Spirit

26. Prasad, I. — History of Modern India

27. Pannikar & prasad — The voice of freedom - 1962

28. Report of the Indian Statutory (Simon) Commission, Vols. I & II, Govt.of India Cal,1930.

29. Report of the Commissionors appointed by the Punjab sub committes of the Indian National congress (1920)

30. Report of the Reforme Enquiry Committes (1924-25).

31. Raghubansi (Dr.) Indian National Movement and Thought

32. Sharma, J.S. A Discriptive Biography of Nehru- 1955

33. Sinha, S. A Short life skotch of Jawaharlal Nehru - 1936

34. Sri Prakash Annie Besant - 1954

35. Varma, V.P. Modern Indian Political Thought

36. Zakaria, R.(Ed.) A study of Nehrus (Bombay) 1960.

37. लाल, प्यारे महात्मा गाँधी: दि लास्ट फेज खण्ड I और II, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद

38. वुडरफ, फिलिप दि मेन हू रूल्ड इण्डिया, दो खण्ड, जोनेथन केप 1953 और 1954

39. दत्त, के0के0 इण्डियाज मार्च टु फ्रीडम: ओरिटएण्ड लौंग मैन्स, कलकत्ता

40. कोलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

41. एलेक्जेण्डर, होरेक इण्डिया सिन्स क्रिप्स, वेंगुइन 1944

42. कूपलैण्ड, आर0 दि क्रिप्स मिशन, आक्सफोर्ड, 1942

43. ईवान्स हम्फ्री थिमैया ऑफ इण्डिया, हाइकोर्ट ब्रेस, न्यूयार्क

44. सिंह, खुशवन्त ट्रेन टु पाकिस्तान, चेटो एण्ड विंडस 1956

45. मेसन, मैडेसिन एडवीना, राबर्ट हेल 1958

46. शीन, विन्सेण्ट नेहरू, गोलेंकज 1961

47. रसेल, विल्फ्रेड इण्डियन समर, थेकर बम्बई

48. खोसला, गोपालदास स्टर्न रेकनिंग, भवनानी एण्ड सन, नई दिल्ली

49. मेनन, वी0पी0 दि इंटीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स, लांगमैक्स, 1956

50. जानसन, ए0 कैम्बेल मिशन विथ माउण्टवेटन, राबर्ट हेल 1951

51. मेनन, वी0पी0 द ट्रांसफर ऑफ पावर इन इण्डिया, लांगमैन्स 1957

52. मसानी ब्रिटेन इन इण्डिया : ऑक्सफोर्ड 1961

53. चौधरी, नीरद — दि ऑटो बायोग्राफी ऑफ एन अननोन इण्डियन, मैकमिलन 1951

54. पामदत्त — भारत वर्तमान और भावी (1950)

55. विधावाचस्पति, इन्द्रा — भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास

56. कश्यप, डा0 सुभाष — सांविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष — 1972

57. सिंह, गुरूमुख निहाल — भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास

58. सिंह, अयोध्या — राष्ट्रीय आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास — 1973

59. गॉधी एम0के0 — सत्य के मेरे प्रयोग खण्ड II

60. रघुवंशी एवं लालबहुदर — राष्ट्रीय विकास तथा भारतीय संविधान — 1960

61. दिनकर, रामधारी सिंह — लोकदेव नेहरू, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1965

62. ग्रोवर, बी.एल. यशपाल — आधुनिक भारत का इतिहास, एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0 नई दिल्ली 1992

63. ग्रोवर, बी.एल. यशपाल — भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली 2003

64. नंदा, बी0 आर0 — जवाहरलाल नेहरू, सचित्र जीवनी, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार 1985

65. चॉंद, एम0 एस0 — स्वाधीनता संघर्ष और साम्प्रदायिक फासिज्म, राष्ट्रीय एकता प्रकाशन, राजस्थान 1993

66. सिंह, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद — भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1988

67. श्री शरण — महामानव नेहरू, विक्रम प्रकाशन, नई दिल्ली 1989

68. अग्रवाल, बालमुकुन्द — आजादी के मुकदमे, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली 1995

69. नेहरू, जवाहरलाल — मेरी कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली 2002

70. गाँधी जी के पत्र नेहरू के नाम   लाईब्रेरी बुक सेन्टर दिल्ली

71. चन्द्र, बिपिन   भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 1998

72. भटनागर, राजेन्द्र मोहन   भारतीय कांग्रेस का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 1986

73. शरण, गिरिराज   नेहरू ने कहा था, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली 1982

74. पालीवाल,डॉ0 नारायणदत्त   आनन्द भवन से संसद तक, सचिन प्रकाशन नई दिल्ली 1989

75. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय खण्ड छिहत्तर प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

76 सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय खण्ड सतहत्तर प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

77. जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय खण्ड 2   जवाहरलाल नेहरू–स्मारक निधि तथा सस्ता साहित्य मण्डल का संयुक्त प्रकाशन, नई दिल्ली 1974

78. गोपाल, एस0   जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय खण्ड 4, जवाहरलाल नेहरू–स्मारक निधि तथा सस्ता साहित्य मण्डल का संयुक्त प्रकाशन, नई दिल्ली 1975

79. शर्मा, डॉ0 शंकरदयाल   पं0 जवाहरलाल नेहरू, प्रवीण प्रकाशन नई दिल्ली

80. दुर्गादास   कर्जन टू नेहरू, विकास पब्लिसर्स नई दिल्ली

81. चेलापतिराव, एम0   आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशन विभाग भारत सरकार (1982) नई दिल्ली

82. क्लैमा, कैथरीन   एडविना और नेहरू, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

83. लैपियर डी0 तथा लैटी कॉलिस   फ्रीडम ऐट मिड नाइट, लामपोर्ट राबर्ड (1975)

84. गोपाल, एस0   नेहरू की जीवनी

85. अकबर, एम0जे0   नेहरू द मेकिंग ऑफ इण्डिया, वाइकिंग (1988) नई दिल्ली

86. नंदा, बी0आर0 (1962)   द नेहरूस मोतीलाल एण्ड जवाहरलाल– 1962

87. पाण्डे, बी0 एन0 — नेहरू, मैकमिलन लंदन (1976)

88. मेहरोत्रा, लखन लाल — विक नैक्स फ्रॉम नेहरू, श्री लंका इण्डिया सोसॉयटी

89. सोनिया गाँधी द्वारा प्रकाशित (1992) — टो एलोन एण्ड टो टुगैदर

90. डॉ0 पट्टाभि सीता रमैया — कांग्रेस का इतिहास

91. गोपाल, राम — भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, सुलभ प्रकाशन लखनऊ

92. मोसले, लिओनार्ड — भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन, आत्माराम एण्ड सन्स नई दिल्ली

93. ब्रेसर, माइकिल — नेहरू, ऑक्सफोर्ड (1959)

94. आजाद, मौ0 अबुल कलाम — इण्डिया विन्स फ्रीडम

95. बिन्सेंट, सी0एन0 — नेहरू, गोलवेज (1961)

96. मेनन, वी0 पी0 — द ट्रान्सफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया

97. नम्बूदरी पाद, ई0एम0एस0 — द महात्मा एण्ड हिज इज्म

98. सिंह, अयोध्या — भारत का मुक्ति संग्राम

99. शरद, ओंकार — नेहरू

100. उपाध्याय, देवेन्द्र — जवाहरलाल नेहरू बहुआयामी व्यक्तित्व, सामायिक प्रकाशन नई दिल्ली

101. कश्यप, सुभाष — जवाहरलाल नेहरू, जीवन, कृति एवम कृतित्व, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0 नई दिल्ली

102. केम्पबल, एलन — भारत विभाजन की कहानी

103. चन्द्र, डॉ0 तारा — फ्रीडम मूवमेंट ऑफ इण्डिया भाग 1,2,3

104. मजूमदार, आर0सी0 — फ्रीडम मूवमेंट ऑफ इण्डिया

105. जवाहरलाल नेहरू एण्ड डिस्कवरी ऑफ इण्डिया — एलाईट पब्लिसर्स प्राइवेट लिमिटेड (1962) नई दिल्ली

106 इनडिपैन्डेन्स एण्ड ऑफटर स्पीच ऑफ जवाहरलाल नेहरू (1945—49) पब्लिकेशन डिवीजन ऑफ इण्डिया पब्लिकेशन नई दिल्ली

107. विल, इनटस्टामैन्ट

108. दैनिक समाचार पत्र,
पाईनियर, अमृत बाजार पत्रिका,
नेहरू की डायरी